कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष : 64★ मासिक अंक : 1★ पृष्ठ : 80 ★ कार्तिक–अग्रहायण 1939★ नवंबर 2017

प्रधान संपादक
दीपिका कच्छल
वरिष्ठ संपादक
ललिता खुराना

संपादकीय पत्र–व्यवहार
संपादक
कमरा नं. 655, प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
सूचना भवन, सी.जी.ओ. काम्पलेक्स,
लोधी रोड, नई दिल्ली–110003
दूरभाष : 011–24365925
वेबसाइट : publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : kuru.hindi@gmail.com

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
विनोद कुमार मीना

व्यापार प्रबंधक
दूरभाष : 011–24367453
ई–मेल : pdjucir@gmail.com

आवरण
आशा सक्सेना
सज्जा
मनोज कुमार

मूल्य एक प्रति	:	22 रुपये
विशेषांक	:	30 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	230 रुपये
द्विवार्षिक	:	430 रुपये
त्रिवार्षिक	:	610 रुपये

इस अंक में

	प्रति बूंद अधिक फसल : सिंचाई के लिए जल का दक्षतापूर्वक प्रयोग	एस. के. सरकार	5
	प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना : किसानों की आय दोगुनी करने की दिशा में एक बड़ा कदम	भरत शर्मा	9
	सिंचाई प्रणालियों की आवश्यकता और उनके प्रकार	वासुदेव मीणा	13
	जल उपयोग दक्षता बढ़ाने हेतु सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली	डॉ. वीरेन्द्र कुमार	17
	बाढ़ और सूखे से किसानों को बचाने की चुनौती	चंद्रभान यादव	23
	वर्षा जल संग्रह से हर खेत को पानी	डॉ. जगदीप सक्सेना	30
	भारत में सिंचाई परियोजनाओं का आकलन	गजेन्द्र सिंह 'मधुसूदन'	35
	गांधी जयंती पर स्वच्छता पुरस्कार	---	40
	वैज्ञानिक सोच पर खरी प्राचीन जलसंचय प्रणालियां	निमिष कपूर	42
	जल क्रांति अभियान	---	48
	वाटरशेड से जल संरक्षण एवं जल प्रबंधन	देवाशीष उपाध्याय	50
	भूजल का गिरता स्तर : सरोकार एवं समाधान	डॉ. प्रदीप कुमार मुखर्जी	56
	जल-संचयन एवं सिंचाई प्रबंधन में संरक्षित खेती का योगदान	डॉ. अवनि कुमार सिंह, डॉ. नवेद साबिर	61
	संवहनीय खेती: फसल स्वरूप का पानी की उपलब्धता के अनुरूप निर्धारण	डॉ. वाई.एस. शिवे और डॉ. टीकम सिंह	64
	जल संरक्षण एवं सिंचाई में महिलाओं की भूमिका	डॉ. शशिकला पुष्पा, डॉ. बी. रामास्वामी	69
	जल संरक्षण हेतु जन भागीदारी जरूरी	प्रभांशु ओझा, प्रेम कुमार	71
	भारतीय संविधान में जल	---	74
	जल संरक्षण में भागीदारी के अहम किरदार	आशुतोष कुमार सिंह	75
	ग्राम संवाद एप और दिशा पोर्टल की शुरुआत	---	77

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, कमरा नं. 48–53, सूचना भवन, सी.जी.ओ. काम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली – 110003 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रभाग, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, कमरा नं. 48–53, सूचना भवन, सी.जी.ओ. काम्पलेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली – 110003 से संपर्क करें। दूरभाष : 011–24367453

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो। पाठकों से आग्रह है कि कैरियर मार्गदर्शक किताबों/संस्थानों के बारे में विज्ञापनों में किए गए दावों की जांच कर लें। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषय–वस्तु के लिए 'कुरुक्षेत्र' उत्तरदायी नहीं है।

संपादकीय

भारत अलग–अलग भौगोलिक स्थितियों, जलवायु और वनस्पतियों वाला विभिन्न जैव विविधताओं से भरा देश है। देश में कुल कृषि योग्य भूमि लगभग 18.5 करोड़ हेक्टेयर है। मौजूदा समय में इसमें से लगभग 17.2 करोड़ हेक्टेयर जमीन पर खेती होती है। देश की विशाल आबादी का 70 प्रतिशत हिस्सा अपनी आजीविका के लिए कृषि पर सीधे तौर से निर्भर है। लिहाजा, भारत में कृषि हमेशा मुख्य उद्यम रही है और भविष्य में भी रहेगी।

देश में कृषि मुख्य तौर से वर्षा पर निर्भर है। इसलिए भारत में पानी का वितरण बेहद असमान है। देश में वर्षा का वितरण असमान और अनिश्चित होने की वजह से अकाल और सूखा पड़ते रहते हैं। देश में वर्षा आमतौर पर साल के चार महीनों में ही होती है। इस दौरान पूरे पानी का इस्तेमाल नहीं हो पाता और अप्रयुक्त पानी बह जाता है। दूसरी ओर बाकी मौसमों में पानी की भयानक तंगी रहती है। देश में एक ओर तो नदी प्रणालियों के रूप में बड़े जल संसाधन हैं और दूसरी तरफ विशाल प्यासे भूखंड। इस तरह प्रकृति ने ही देश में सिंचाई के विकास को जरूरी बना दिया है। कम पानी और सूखे की समस्याओं से सिंचाई के जरिए ही निपटा जा सकता है। विभिन्न फसलों के लिए पानी की जरूरतें अलग–अलग होती हैं जिन्हें सिंचाई सुविधाओं से ही पूरा किया जा सकता है।

सिंचाई का मतलब वर्षा के सिवा किसी और तरीके से खेतों में पानी पहुंचाना है। दूसरे शब्दों में, यह जमीन या मिट्टी को कृत्रिम ढंग से सिंचित करना है। सिंचाई वास्तव में वर्षा जल का विकल्प या पूरक है। इसकी जरूरत सूखे क्षेत्रों में और अपर्याप्त वर्षा के समय पड़ती है। भारत आबादी के लिहाज से चीन के बाद विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है। भारत में विश्व की 16 प्रतिशत आबादी है जबकि भू–संसाधन मात्र विश्व के दो प्रतिशत है। देश की करोड़ों की आबादी का पेट भरने के लिए ज्यादा खाद्यान्न उपजाने की जरूरत है जिसके लिए सिंचाई सुविधाएं आवश्यक हैं।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना सरकार का फ्लैगशिप कार्यक्रम है जिसका लक्ष्य 'हर खेत तक पानी' पहुंचाना है। हमारी कई सिंचाई योजनाएं जो बरसों से अटकी पड़ी थी, उनसे इस कार्यक्रम के तहत तेजी आई है और किसानों के हित में नई परियोजनाएं भी शुरू की गई हैं।

देश में पानी की कमी की समस्या से निपटने के लिए केवल सिंचाई की क्षमता बढ़ाना पर्याप्त नहीं है, इसके लिए हमें जीवन के हर क्षेत्र में जल के उपयोग की दक्षता बढ़ानी होगी। आधुनिक जीवन शैली और बढ़ती आबादी के चलते ऐसा करना बहुत जरूरी हो गया है चूंकि देश के सीमित प्राकृतिक संसाधनों पर लोगों की जीवनशैली बेहद भारी पड़ रही है। समय की मांग है कि वर्तमान जल और भूमि संसाधनों का बेहद विवकेपूर्ण ढंग से उपयोग किया जाए। अगर हम अब भी इस दिशा में प्रयास नहीं करेंगे तो हमारी आने वाली पीढ़ियों का भविष्य खतरे में पड़ जाएगा। भूजल के अनियंत्रित शोषण से देश के कई हिस्सों में भूमिगत जलस्तर में चिंताजनक गिरावट आई है। इस स्थिति को सुधारने के लिए हमें अपने दैनिक जीवन में और सिंचाई में जल का बेहद दक्षता से उपयोग करना होगा। इसी के मद्देनजर माननीय प्रधानमंत्री ने 'प्रति बूंद अधिक फसल' का आह्वान किया जिससे तात्पर्य सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों को बढ़ावा देने से है ताकि सिंचाई में न केवल पानी की बर्बादी को रोका जा सके; साथ ही सूखाग्रस्त या कम पानी वाले क्षेत्रों में कम पानी में पैदा होने वाली किस्मों/तकनीकों को बढ़ावा दिया जाए।

जल संरक्षण से हमारा तात्पर्य पानी की बर्बादी तथा प्रदूषण को रोकने से है। जल संरक्षण एक अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि वर्षा जल हर समय उपलब्ध नहीं रहता। अतः पानी की कमी को पूरा करने के लिए पानी का संरक्षण आवश्यक है।

यदि हमारे देश में वर्षा जल के रूप में प्राप्त पानी का पर्याप्त संग्रहण व संरक्षण किया जाए, तो यहां जल संकट को समाप्त किया जा सकता है। एक अनुमान के अनुसार एक टपकते नल से प्रति सेकेंड एक बूंद बर्बाद होने से एक माह में 760 लीटर पानी व्यर्थ में ही बह जाता है; सीधे नल से नहाने पर 90 लीटर पानी खर्च होता है और हाथ धोकर नल ठीक प्रकार से न बंद करने पर एक मिनट में 30 बूंद पानी तथा वर्ष में 46 हजार लीटर पानी व्यर्थ चला जाता है। यह आंकड़े यह बताने के लिए पर्याप्त हैं कि पानी की एक–एक बूंद कितनी कीमती है।

हमें अपनी प्रकृति से मिले पानी की हर बूंद की कीमत समझनी होगी और इसके दुरुपयोग को रोकने में अपना योगदान देना होगा इसके लिए हमें वाटरशेड प्रबंधन से लेकर रेनवॉटर हार्वेस्टिग की तकनीकों को अपनाना होगा ताकि बारिश के पानी का इस्तेमाल हम अपनी रसोई और बागवानी में कर सकें। इस प्रक्रिया में हम अपने पूर्वजों से बहुत कुछ सीख सकते हैं जिनसे हमें कई परंपरागत जल संरक्षण तकनीकें विरासत में मिली हैं।

वर्षा जल का संग्रहण, संरक्षण तथा समुचित प्रबंधन आवश्यक है। यही एकमात्र विकल्प भी है। यह तभी संभव है, जब पूरा समाज जोहड़ों, तालाबों को पुनर्जीवित करे, खेतों में सिंचाई के लिए पक्की नालियों का निर्माण हो, पी.वी.सी. पाइपों का इस्तेमाल हो। बहाव क्षेत्र में पानी को संचित किया जा सकता है। इसके लिए बांध बनाए जा सकते हैं ताकि यह पानी समुद्र में न जा सके। इसके साथ ही साथ बोरिंग, ट्यूबवेल पर नियंत्रण लगाया जाए। उन पर भारी कर लगाया जाए ताकि पानी की बर्बादी रोकी जा सके। जरूरी यह भी है कि पानी की उपलब्धता के गणित को समाज भी समझे। यह आम–जन की जागरूकता तथा सहभागिता से ही सम्भव है। भूजल संरक्षण के लिए देशव्यापी अभियान चलाया जाना अति आवश्यक है, ताकि भूजल का समुचित नियमन हो सके। भविष्य में हमें इतना पानी नहीं मिल पाएगा जितना कि हमारी मांग होगी। अकेली सरकार इसमें कुछ नहीं कर सकती है। यह काम आम आदमी के सहयोग से संभव है। भारतीय संस्कृति में जल को जीवन का आधार माना जाता है। इसी कारण जल को संचित करने की परंपरा हमारे देश में शुरू से ही रही है। अतः समाज ही इस अभियान में सहयोग दे सकता है। अतः समाज के हर व्यक्ति को अपने–अपने स्तर व सामर्थ्य के अनुसार जल संरक्षण अभियान में सहयोग करना चाहिए।

इस प्रकार जल संरक्षण में पूरे समाज को अपनी ओर से नई पहल करनी चाहिए। केवल सरकारी सहायता पर निर्भर नहीं होना चाहिए। समय की मांग है कि पूरा समाज इस अभियान से जुड़े तथा पंरपरागत जल स्रोतों को पुनर्जीवित करने का प्रयास करे। हम सभी को अपनी जिम्मेदारी समझनी होगी। जल संरक्षण को हमारे दैनिक जीवन का हिस्सा बनाना जरूरी है। इसे एक जन–आंदोलन का रूप देकर जनमानस के भीतर जल संरक्षण की अलख जगानी होगी तभी हम अपनी आने वाली पीढ़ियों के साथ न्याय कर पाएंगे।

प्रति बूंद अधिक फसल
सिंचाई के लिए जल का दक्षतापूर्वक प्रयोग

–एस. के. सरकार

सिंचाई समेत सभी क्षेत्रों में जल की मांग बढ़ रही है किंतु जल संसाधनों की आपूर्ति सीमित है। इसके अलावा जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से भी खतरा है क्योंकि उनसे जल संसाधनों की उपलब्धता और भी कम हो जाएगी। जल स्रोतों, भूमिगत जल और सतही जल के दूषित होने से इस्तेमाल के लायक जल की उपलब्धता और कम हो जाती है। बढ़ती मांग पूरी करने के लिए जल का संरक्षण करने और सभी क्षेत्रों में जल को दूषित होने से बचाने की आवश्यकता है। इसके अलावा सभी क्षेत्रों में जल के प्रयोग की दक्षता बढ़ाने की भी जरूरत है।

पृथ्वी पर मौजूद कुल जल का केवल 0.4 प्रतिशत ही पूरी दुनिया में हमारी जरूरतें पूरी करने के लिए उपलब्ध है। दुनिया की 14 प्रतिशत जनसंख्या के पास कुल जल संसाधनों का 53 प्रतिशत है, जबकि 86 प्रतिशत आबादी (भारत और चीन को मिलाकर) को 47 प्रतिशत वैश्विक जल संसाधन से ही काम चलाना पड़ता है। विश्व की 17 प्रतिशत आबादी भारत में रहती है, लेकिन केवल 4 प्रतिशत जल–संसाधन उसके हिस्से में आते हैं।

जीवन, आजीविका और पारिस्थितिकी के लिए जल संसाधन हमेशा से आवश्यक हैं, आर्थिक विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं और खाद्य सुरक्षा, राष्ट्रीय सुरक्षा एवं ऊर्जा सुरक्षा के लिए भी आवश्यक हैं। हर वर्ष 4,000 अरब घनमीटर वर्षा (हिमपात समेत) के अनुमानों को देखते हुए विभिन्न उद्देश्यों के लिए केवल 1,123 अरब घन मीटर जल का इस्तेमाल किया जा सकता है, जिसमें से 61 प्रतिशत जल भूमि के ऊपर है और बाकी भूमिगत जल है। एक अनुमान (एनसीआईडब्ल्यूआरडी 1999)[1] बताता है कि 2050 तक जल की मांग सिंचाई क्षेत्र में 73 प्रतिशत हो जाएगी और उसके बाद उद्योग तथा घरेलू क्षेत्रों की बारी आएगी। इस समय इसकी करीब 80 प्रतिशत हिस्सेदारी है।

स्थान तथा काल के अनुसार जल की उपलब्धता भी अलग–अलग होती है। उदाहरण के लिए भारत में लगभग 75 प्रतिशत वर्षा 4 महीनों में होती है और सबसे अधिक वर्षा पूर्वोत्तर क्षेत्र में तथा सबसे कम राजस्थान में होती है। जल संसाधनों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता वर्ष–दर–वर्ष घटती जा रही है और माना जा रहा है कि 2050 तक यह पानी की कमी वाला क्षेत्र बन जाएगा। आज भी ब्राजील, आस्ट्रेलिया, अमेरिका, ब्रिटेन, बांग्लादेश और चीन जैसे देशों की तुलना में भारत की प्रति व्यक्ति जल उपलब्धता कम है।

1.7 अरब की आबादी (2050) की जरूरत पूरी करने के लिए भारत को 45 करोड़ टन अनाज की जरूरत होगी। सिंचाई विकास की स्थिति बताती है कि सिंचाई की अनुमानित क्षमता लगभग 14 करोड़ हेक्टेयर है, लेकिन वास्तव में सिंचित क्षेत्र बहुत कम है, जिससे पता चलता है कि विभिन्न उपायों का प्रयोग कर इसे सुधारने की संभावना है। इसके अतिरिक्त जल की प्रत्येक इकाई के प्रयोग से उत्पादकता कम होने के कारण भारत की बढ़ती आबादी को लेकर चिंता उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए चावल उत्पादन के लिए 10 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में 3.48 अरब घन मीटर जल की आवश्यकता होती है, जबकि म्यांमार में केवल 1.90 अरब घन मीटर जल की जरूरत पड़ती है। आमतौर पर फसल का उत्पादन बहुत कम है; वर्षा से सिंचित क्षेत्र में लगभग 1 टन/हेक्टेयर और सिंचित क्षेत्रों में 2.5 टन/हेक्टेयर।

भारत के लगभग 80 प्रतिशत जल संसाधनों का प्रयोग करने के बाद भी कृषि क्षेत्र में जल के उपयोग की दक्षता बहुत कम (लगभग 38 प्रतिशत) है। यह खासतौर पर इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि भारत कृषि–प्रधान अर्थव्यवस्था है और अपनी बुनियादी

जरूरतें पूरी करने के लिए आमतौर पर खेत में होने वाले उत्पादन पर निर्भर करता है। वास्तव में खेती में सिंचाई सबसे बड़ी लागत में शामिल है और सामान में होने वाले कुल खर्च में इसकी लगभग 70 प्रतिशत हिस्सेदारी है। जल का अधिक दक्षता के साथ इस्तेमाल करने से जल बचेगा और इनपुट लागत कम हो जाएगी।

कुल मिलाकर लगभग 8 करोड़ हेक्टेयर सिंचित क्षेत्र है, जो दुनिया में सबसे बड़ा सिंचित क्षेत्र है। विशेषकर गांवों में सिंचाई के जल की अधिकाधिक आवश्यकता भूजल से ही पूरी होती है। भारत में 70 प्रतिशत से अधिक आबादी गांवों में रहती है और प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से खेती पर निर्भर है, इसीलिए मानसून की अर्थव्यवस्था में बड़ी भूमिका है। अक्सर कहा जाता है कि मानसून ही असली वित्त मंत्री है।

सिंचाई के जल को यहां से वहां पहुंचाने के दौरान अंतिम बिंदु तक पहुंचते–पहुंचते बहुत जल नष्ट हो जाता है क्योंकि परिवहन प्रणाली में ढेरों खामियां हैं। नहरों और नालियों के जरिए सिंचाई का जल इस्तेमाल करने पर 55 से 60 प्रतिशत जल ही मिल पाता है, जबकि बिंदु एवं सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों का प्रयोग करने वाली बेहतर सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों से 90 प्रतिशत से अधिक जल का उपयोग हो जाता है। नहरों तथा नालियों में ढेर सारा जल वाष्पीकरण, रिसाव तथा मिट्टी द्वारा सोखे जाने के कारण नष्ट हो जाता है। इसके उलट बंद पाइप के नेटवर्क से जल की बरबादी बहुत कम हो जाती है।

परिभाषाएं

लगाई गई सामग्री (इनपुट) और उत्पादन या परिणाम का अनुपात दक्षता या सामर्थ्य कहलाता है और उसे प्रतिशत में बताया जाता है। दक्षता के सिद्धांत का उद्देश्य यह दिखाना है कि सुधार किए जा सकते हैं, जिनसे अधिक बेहतर सिंचाई होगी। विभिन्न प्रकार की सिंचाई दक्षता प्रयोग की जाती हैं। पहली, जल के परिवहन की दक्षता होती है, जो परिवहन तथा मार्ग में होने वाली बर्बाद से निर्धारित होती है और उसे नदी अथवा जलाशय से लाए गए जल और खेत अथवा सिंचित भूखंड तक पहुंचे जल के अनुपात के रूप में व्यक्त किया जाता है। दूसरी, जल के प्रयोग की दक्षता होती है, जिसमें यह देखा जाता है कि फसल में जल के प्रयोग का कौन–सा तरीका अनुकूल है और इसे खेत में छोड़े गए जल तथा फसल की जड़ों में जमा जल की मात्रा के अनुपात से मापा जाता है। अच्छी संरचना वाली सतह सिंचाई प्रणाली में जल के प्रयोग की दक्षता कम से कम 60 प्रतिशत होती है और फव्वारा सिंचाई प्रणाली में लगभग 75 प्रतिशत होती है। जल के प्रयोग की दक्षता कम होने के कारणों में जमीन की अनियमित सतह, सिंचाई के गलत तरीके, ढलवां जमीन आदि शामिल हैं। चौथी, जल के प्रयोग की दक्षता आपूर्ति किए गए जल की मात्रा एवं खपत किए गए जल की मात्रा के अनुपात से मापी जाती है। पांचवीं, जल भंडारण की दक्षता बताती है कि सिंचाई के दौरान आवश्यक जल कितनी जड़ों में कितना अधिक समा गया है। यह सिंचाई से पहले जड़ों में आवश्यक जल तथा सिंचाई के दौरान जड़ों में एकत्र हुए जल का अनुपात होता है। अंत में जल वितरण की दक्षता बताती है कि जड़ों में जल का एक समान वितरण कितनी अच्छी तरह से हुआ है। जल का जितना एक समान वितरण होगा, फसल उतनी ही अच्छी होगी।

जल संरक्षण के उपाय

सिंचाई समेत सभी क्षेत्रों में जल की मांग बढ़ रही है किंतु जल संसाधनों की आपूर्ति सीमित है। इसके अलावा जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से भी खतरा है क्योंकि उनसे जल संसाधनों की उपलब्धता और भी कम हो जाएगी। जल स्रोतों, भूमिगत जल और सतही जल के दूषित होने से इस्तेमाल के लायक जल की उपलब्धता और कम हो जाती है। बढ़ती मांग पूरी करने के लिए जल का संरक्षण करने और सभी क्षेत्रों में जल को दूषित होने से बचाने की आवश्यकता है। इसके अलावा सभी क्षेत्रों में जल के प्रयोग की दक्षता बढ़ाने की भी जरूरत है। सिंचाई के क्षेत्र में जल संरक्षण के लिए कई तरीके आजमाए जा सकते हैं। इनमें से कुछ हैं:

1. प्रणाली का उचित एवं समय से रखरखाव।
2. क्षतिग्रस्त एवं गाद भरी नहरों का पुनर्वास एवं नवीनीकरण ताकि जल सही तरीके से जा सके।
3. सतह पर उपलब्ध जल तथा भूमिगत जल का मिला–जुला प्रयोग, विशेषकर उन क्षेत्रों में, जहां जल जमाव का खतरा हो।
4. जहां उचित हो, वहां फसल की सिंचाई के लिए 'बिंदु एवं फव्वारा' प्रणाली अपनाना।
5. जल की उपलब्धता में परिवर्तन होने पर फसल का पैटर्न बदलना।
6. जल उपयोगकर्ता संघ बनाना और प्रबंधन उनके हाथ में सौंप देना।

7. जल के विविध प्रयोगों को बढ़ावा देना।
8. रात में सिंचाई आरंभ करना ताकि वाष्पीकरण के कारण कम से कम जल व्यर्थ हो।
9. समय से एवं अभीष्टतम सिंचाई सुनिश्चित करना ताकि जल की बर्बादी और भराव कम से कम हो।
10. नदियों में मानसून के बहाव का संरक्षण करना क्योंकि उसका अधिकतर हिस्सा बेकार जल के रूप में समुद्र में चला जाता है।

वैश्विक कार्यक्रम

विश्व जल परिषद (2000) का अनुमान है कि 2025 तक बढ़ी हुई कृषि मांग का लगभग 50 प्रतिशत हिस्सा जल की उत्पादकता बढ़ाकर पूरा किया जाना चाहिए। संयुक्त राष्ट्र जल मूल्यांकन कार्यक्रम भी आपूर्ति के नए स्रोतों अथवा कृषि के लिए बढ़ते जल आवंटन की मांग कम करने के लिए फसल जल की उत्पादकता बढ़ाने की अपील करता है। भारत सरकार के राष्ट्रीय जल मिशन ने जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्ययोजना के तहत जल के प्रयोग की दक्षता 20 प्रतिशत तक बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित किया है। भारत सरकार ने जल की बर्बादी घटाने, सटीक सिंचाई ('मोर क्रॉप पर ड्रॉप') अपनाने को बढ़ावा देने तथा भूमिगत जलीय परतों में जल के एकत्रीकरण एवं जल संरक्षण के टिकाऊ तरीकों को बढ़ावा देने के लिए कृषि जल के प्रयोग की दक्षता बढ़ाने के लक्ष्य के साथ प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना भी आरंभ की है।

सर्वश्रेष्ठ तरीकों के उदाहरण

भारत में जैन इरिगेशन सिस्टम लिमिटेड 1990 से ही 'बिंदु एवं फव्वारा' सिंचाई तकनीक के क्षेत्र मे काम कर रही है। बिंदु सिंचाई के साथ चावल उत्पादन में उनके प्रयोग से कई आर्थिक लाभ दिखे हैं, जैसे चावल की उपज में 40 प्रतिशत तक की वृद्धि, 70 प्रतिशत तक जल की बचत, 50 प्रतिशत तक ऊर्जा संरक्षण, जल एवं उर्वरक के प्रयोग में 80 प्रतिशत तक दक्षता, मृदा स्वास्थ्य संरक्षण आदि। इसके अलावा त्वचा, श्वसन एवं मच्छर काटने जैसी बीमारियां घटने से कृषि भूमि का स्वास्थ्य भी सुधरा है। साथ ही, मीथेन के कम उत्सर्जन के कारण पर्यावरण प्रदूषण में कमी आई है, ग्लोबल वार्मिंग कम हुई है। सूक्ष्म सिंचाई के साथ गेहूं की फसल, सटीक कृषि के साथ गन्ने, बिंदु सिंचाई के साथ कपास के उत्पादन में भी वृद्धि के साथ ऐसे ही परिणाम आए हैं। वर्ष–दर–वर्ष जैन इरिगेशन ने 'मोर क्रॉप पर ड्रॉप' को बढ़ावा देने के लिए कई उपाय किए हैं।

निष्कर्ष

भारत में कृषि क्षेत्र में जल का दक्षतापूर्ण प्रयोग चुनौती भरा काम है क्योंकि इससे कई लोग जुड़े हुए हैं। इस प्रयास में ऐसे लोगों की सहभागिता के लिए सरकारों, नागरिक समाजों, कंपनियों, वित्तीय संस्थाओं तथा अन्य के गठबंधन की आवश्यकता होगी। हितधारकों की मानसिकता बदलने की भी आवश्यकता है। सिंचाई प्रणाली के लिए एकीकृत समाधान भी होना चाहिए, जैसे सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियां (उदाहरण के लिए 'बिंदु एवं फव्वारा') आरंभ करना, सूचना प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल, जल परिवहन एवं खेतों में प्रयोग के लिए सेंसर का प्रयोग, सौर–पंप की तकनीकें अपनाना तथा जल संरक्षण के अन्य तरीके (जैसे भूमिगत जल रिचार्ज) अपनाना। शून्य जुताई की तकनीक[2] प्रयोग करने की भी जरूरत है, जिससे मिट्टी में नमी बनी रहेगी। इसके अलावा लेसर[3] के जरिए मिट्टी समतल करने की तकनीक का प्रयोग होना चाहिए क्योंकि इससे सिंचाई का जल बच सकता है। इस विषय पर भारत में कई अच्छे तरीके हैं, लेकिन उन्हें व्यापक बनाया जाना चाहिए। सरकारों के वर्तमान प्रयास सही दिशाओं में हैं।

फुटनोट

1 एनसीआईडब्ल्यूआरडी राष्ट्रीय एकीकृत जल संसाधन विकास आयोग है।

2 शून्य जुताई तकनीक से किसान खेत में मिट्टी की संरचना को कम से कम छेड़कर जरूरी गहराई पर बीज बो पाता है। विशेष संरचना वाली कृषि मशीनरी के कारण जुताई की आवश्यकता ही नहीं रहती और पौध लगाने के लिए जुताई की आवश्यकता भी कम से कम हो जाती है।

3 खेती में लेसर से कामगारों को पौधरोपण के लिए जमीन की रेखा ठीक से खींचने अथवा प्रमुख फसलों की सिंचाई के लिए उसे ठीक से तैयार करने में मदद मिल सकती है। इस प्रणाली से बड़ी जमीन में मिट्टी तैयार करने में पारंपरिक तरीकों की तुलना में कम समय लगता है।

(लेखक जल संसाधन मंत्रालय में सचिव रह चुके हैं और एनर्जी एंड रिसोर्सेज इंस्टीट्यूट (टेरी), नई दिल्ली में प्राकृतिक संसाधन एवं जलवायु कार्यक्रम के वरिष्ठ निदेशक हैं।)

ई–मेल : sk.sarkar@teri.res.in

भारत जल सप्ताह–2017

राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद ने 10 अक्तूबर, 2017 को नई दिल्ली में भारतीय जल सप्ताह–2017 के पांचवे सत्र का उद्घाटन किया। इस अवसर पर राष्ट्रपति ने कहा कि जल का बेहतर और अधिक प्रभावी इस्तेमाल भारतीय कृषि और उद्योग के लिए एक चुनौती है। हमारे लिए यह आवश्यक कर देता है कि हम अपने गांवों और शहरों में नए मानदंड स्थापित करें।

राष्ट्रपति ने कहा कि वर्तमान में भारत में 80 प्रतिशत जल का इस्तेमाल कृषि के लिए और केवल 15 प्रतिशत उद्योग द्वारा किया जाता है। आने वाले वर्षों में यह अनुपात बदलेगा। जल की कुल मांग बढ़ेगी। जल के इस्तेमाल और उसके दोबारा इस्तेमाल की क्षमता को औद्योगिक परियोजनाओं का खाका तैयार करते समय उसमें शामिल किया जाना चाहिए। व्यवसाय और उद्योग को इस समाधान का हिस्सा बनना चाहिए। राष्ट्रपति ने कहा कि शहरी भारत में हर वर्ष 40 अरब लीटर बेकार पानी निकलता है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि इस पानी के जहरीले तत्वों को कम करने के लिए प्रौद्योगिकी अपनाई जाए और इसका इस्तेमाल सिंचाई और अन्य कार्यों के लिए किया जाए। यह किसी भी शहरी योजना कार्यक्रम का हिस्सा होना चाहिए। राष्ट्रपति ने ऐसा जल प्रबंधन दृष्टिकोण अपनाने का आग्रह किया जो स्थानीय लोगों के अनुकूल हो। उन्होंने कहा कि यह गांवों और पड़ोसी समुदाओं को शक्ति सम्पन्न बनाए और उनमें ऐसी क्षमता का निर्माण करे कि वे अपने जल संसाधनों का प्रबंधन, उनका आंवटन और मूल्यांकन कर सकें। 21वीं सदी की किसी भी नीति में पानी के मूल्य की संकल्पना के तत्व को शामिल किया जाना चाहिए। यह समुदाओं सहित सभी साझेदारी को प्रोत्साहित करे कि वे अपनी सोच का दायरा बढ़ाएं और जल की मात्रा से लेकर लाभों के परिमाण को आवंटित करने का क्रम चिन्हित करें।

राष्ट्रपति ने कहा कि जल तक पहुंच मनुष्य के गौरव का पर्याय है। सरकार ने सभी गांवों में 2022 तक पीने के पानी की आपूर्ति सुनिश्चित करने की एक रणनीतिक योजना तैयार की है। जब भारत आज़ादी के 75 वर्ष पूरे कर लेगा, तब तक इस लक्ष्य के अंतर्गत 90 प्रतिशत गांवों में रहने वाले परिवारों को पाइप लाइन के जरिए पानी की आपूर्ति मिलने लगेगी। हम विफल नहीं हो सकते। इस सम्मेलन में हुए विचार–विमर्श में यह सुनिश्चित करना होगा कि हम विफल नहीं हो। भारत के जल संसाधनों पर केंद्रित यह वार्षिक अंतर्राष्ट्रीय आयोजन भारत सरकार के जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण मंत्रालय द्वारा किया जाता है। भारत और 13 अन्य देशों के लगभग 1500 प्रतिनिधियों ने इस पांच दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय आयोजन में हिस्सा लिया। संबद्ध मंत्रालयों के मंत्रियों ने भी सम्मेलन को संबोधित किया। भारत जल सप्ताह 2017 का विषय 'समावेशी विकास के लिए जल एवं ऊर्जा' था जिस पर सम्मेलन के दौरान महत्वपूर्ण विचार सामने आए।

राष्ट्रपति श्री राम नाथ कोविंद ने 10 अक्तूबर, 2017 को नई दिल्ली में आयोजित भारत जल सप्ताह 2017 का उद्घाटन दीप प्रज्जवलित करके किया। साथ में केंद्रीय जल संसाधन, नदी विकास एवं गंगा संरक्षण, सड़क परिवहन और राजमार्ग व शिपिंग मंत्री श्री नितिन गडकरी; केंद्रीय पेयजल एवं स्वच्छता मंत्री सुश्री उमा भारती; जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण राज्यमंत्री श्री अर्जुन राम मेघवाल और सत्यपाल सिंह भी मौजूद हैं।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना
किसानों की आय दोगुनी करने की दिशा में एक बड़ा कदम

–भरत शर्मा

भारत में परिष्कृत प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल कम होने के कारण अधिकतर फसलों की पैदावार का स्तर वैश्विक औसत की तुलना में कम रहा है। सिंचाई और प्रौद्योगिकी विषयक प्रगति तक किसानों की पहुंच का विस्तार करना खेती की उत्पादकता बढ़ाने का सर्वाधिक कारग़र उपाय है। पुख्ता सिंचाई व्यवस्था से फसल सघनता, जिसे तकनीकी भाषा में 'वर्टिकल इंटेंसिफिकेशन' कहा जाता है, बढ़ाई जा सकती है।

अधिकतर किसानों का यह विचार है कि ''बिन पानी सब सून''। आज से सदियों पहले 371 ईसा पूर्व में कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कहा था कि ''खेती को पूरी तरह वर्षा पर नहीं छोड़ा जा सकता, ऐसा करना प्रकृति के साथ जुआ खेलना है।'' उसके बाद सभ्यता के करीब 2400 वर्षों और आज़ादी के बाद योजनाबद्ध विकास के 70 वर्षों में भारत में मात्र 45 प्रतिशत खेती योग्य भूमि के लिए सिंचाई की पुख्ता व्यवस्था हो पाई है। उत्पादन के उच्चतर और सुनिश्चित–स्तर के लिए सिंचाई का महत्व स्वयंसिद्ध है। जिला–स्तर के आंकड़ों से पता चलता है कि 2011 और 2012 के दो वर्षों में व्यापक वर्षा–आधारित स्थितियों की तुलना में व्यापक सिंचित स्थितियों वाले जिलों में सभी फसलों की उत्पादकता 1.6 गुना अधिक थी। भारत आज खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया है, परंतु भारतीय खेती के लिए ''अत्यधिक भूमि और अत्यधिक जल का इस्तेमाल किया जा रहा है, बल्कि अक्षम उपयोग किया जा रहा है''। भारत में परिष्कृत प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल कम होने के कारण अधिकतर फसलों की पैदावार का स्तर वैश्विक औसत की तुलना में कम रहा है। सिंचाई और प्रौद्योगिकी विषयक प्रगति तक किसानों की पहुंच का विस्तार करना खेती की उत्पादकता बढ़ाने का सर्वाधिक कारग़र उपाय है। पुख्ता सिंचाई व्यवस्था से फसल सघनता, जिसे तकनीकी भाषा में 'वर्टिकल इंटेंसिफिकेशन' कहा जाता है, बढ़ाई जा सकती है। फसल की जरूरत के मुताबिक सिंचाई जल उपलब्ध न हो पाने के कारण फिलहाल, देश की कृषि भूमि का 76 प्रतिशत हिस्सा उत्पादक अवधि में बंजर रहता है। सिंचित क्षेत्रों में भी, पर्याप्त और वहनीय सिंचाई व्यवस्था वर्ष भर उपलब्ध नहीं रहती है। सिंचाई की पुख्ता व्यवस्था होने पर, किसान अधिक मूल्य देने वाली फसलें उगाने की ओर प्रवृत्त होंगे, जिससे उनकी आमदनी बढ़ेगी। नीति आयोग के आंकड़ों के अनुसार एक हेक्टेयर प्रमुख फसल क्षेत्र को फलों, सब्जियों, फूलों, वाणिज्यिक फसलों आदि अधिक मूल्य देने वाली फसलों में रूपांतरित करने से सकल आमदनी को 1,01,608 रुपये तक बढ़ाया जा सकता है। इसकी तुलना में प्रमुख फसलों के उत्पादन से सकल आमदनी मात्र रुपये 41,169 प्रति हेक्टेयर होती है। इस तरह किसानों की आय में 2.47 गुना बढ़ोतरी की जा सकती है।

कृषि पैदावार में कम और अस्थिर वृद्धि गंभीर चिंता का विषय है और इससे किसानों की आय पर विपरीत असर पड़ता है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन–एनएसएसओ के वर्ष 2011–12 के आंकड़ों से पता चलता है कि प्रमुख व्यवसाय के रूप में कृषि कार्यों में लगे 20 प्रतिशत से अधिक ग्रामीण परिवारों की आमदनी गरीबी–रेखा से भी नीचे थी और झारखंड जैसे कुछ राज्यों में तो 45.3 प्रतिशत परिवार ऐसे थे जिनकी आमदनी गरीबी–रेखा से नीचे थी। पिछली कृषि क्रांति की प्रौद्योगिकियां निवेश–आधारित थी, जिनका लाभ भारत में समूचे कृषि परिदृश्य को नहीं पहुंचा। इसके अलावा खेतों का औसत आकार घट रहा है, कृषकों में 67

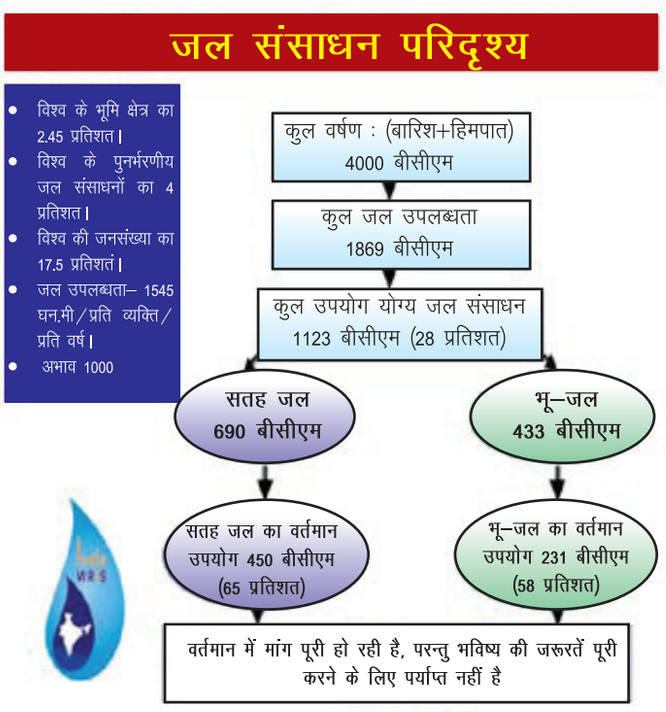

आकृति–1

प्रतिशत सीमांत किसान हैं, खेती और गैर–खेती आय के बीच अंतराल बढ़ता जा रहा है, ग्रामीण युवाओं की आकांक्षाएं बढ़ रही हैं, जोखिम कम करने और सूखा, बाढ़, लू/शीत लहर और अन्य प्राकृतिक आपदाओं से होने वाली फसल हानि की भरपाई के लिए संस्थागत व्यवस्थाएं पर्याप्त नहीं हैं। सरकार इस बात का निरंतर संज्ञान ले रही है कि कृषक समाज में निरंतर असंतोष बढ़ रहा है और वह एक प्रभावकारी प्रशामक नीति तैयार करने की इच्छुक है।

भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने 28 फरवरी, 2016 को बरेली में एक किसान रैली में कहा था कि उनका सपना है कि 2022 तक, जब देश आज़ादी की 75वीं वर्षगांठ मना रहा होगा, किसानों की आमदनी को दो गुना किया जा सके। इसके लिए यह जरूरी है कि अगले 7 वर्षों में वार्षिक वृद्धि दर 10.4 प्रतिशत पर पहुंचाई जाए, जो एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। इतनी ऊंची विकास–दर हासिल करने के लिए अनिवार्य महत्वपूर्ण घटकों में फसल और मवेशी उत्पादकता में वृद्धि करना, उत्पादन की लागत में कमी लाने के लिए संसाधनों का अधिक सक्षम इस्तेमाल करना, फसल सघनता को वर्तमान 140 प्रतिशत से बढ़ाकर 153 प्रतिशत पर पहुंचाना और साथ ही उच्च मूल्य वाली फसलों का क्षेत्र 1.675 करोड़ हेक्टेयर से बढ़ाकर 2.640 करोड़ हेक्टेयर तक पहुंचाना, आदि शामिल हैं। इन सभी उपायों को एक मुकाम तक पहुंचाने में अधिकाधिक खेतों को सिंचाई की कवरेज के अंतर्गत लाने की महत्वपूर्ण भूमिका है और अनुमानों से पता चलता है कि सकल सिंचित क्षेत्र वर्तमान 9.26 करोड़ हेक्टेयर से 2022 में बढ़कर 11.04 करोड़ हेक्टेयर पर पहुंचाने की आवश्यकता होगी, अर्थात् इसमें हर वर्ष 25 लाख हेक्टेयर की वृद्धि करनी होगी। सिंचित क्षेत्र कवरेज में ऐसी अभूतपूर्व बढ़ोतरी के लिए 'वर्तमान गति से काम करना' पर्याप्त नहीं होगा और बेहतर समाभिरूपता तथा अधिक धन आवंटन के साथ कुछ नए कार्यक्रम अमल में लाने होंगे।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई)

बावजूद इसके कि भारत में राष्ट्रीय–स्तर पर प्रचुर मात्रा में जल संसाधन उपलब्ध हैं (आकृति–1), देश की सिंचाई व्यवस्था अनेक समस्याओं से घिरी हुई है, जिनमें सृजित सिंचाई क्षमता (इरिगेशन पोटेंशियल क्रिएटिड–आईपीसी) और इस्तेमाल की गई सिंचाई क्षमता (इरिगेशन पोटेंशियल यूटिलाइज्ड–आईपीयू) (आकृति 2) के बीच भारी अंतर; भूमिगत जल पर अत्यधिक निर्भरता (आकृति 3), जिसकी परिणति भूमिगत संसाधनों के अत्यधिक दोहन और ज्यादातर भू–भागों में भू–जल–स्तर में गिरावट के रूप में होती है; जल संसाधनों के विकास का अभाव; और गांवों में बिजली न होने की समस्या; तथा मानसून के दौरान पूर्वी क्षेत्र में आने वाली बाढ़; खेती और अन्य सभी क्षेत्रों में पानी के किफायती उपयोग/जल उत्पादकता में कमी; कानूनी कमजोरियां और जल नीतियों का आधे–अधूरे मन से कार्यान्वयन; और जल संसाधनों से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों के बीच समाभिरूपता का अभाव शामिल है।

कृषि सिंचाई क्षेत्र में ऊपर वर्णित अनेक समस्याओं का समाधान करने और 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करने के लिए **''प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना''** नाम का एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम भारत सरकार ने शुरू किया है। इस कार्यक्रम के दो प्रमुख लक्ष्य हैं–''हर खेत को पानी'' और ''प्रति बूंद अधिक फसल'', ताकि जल की उत्पादकता बढ़ाई जा सके। इस योजना की प्रमुख विशेषताएं आगे दी गई हैं (आकृति–4)।

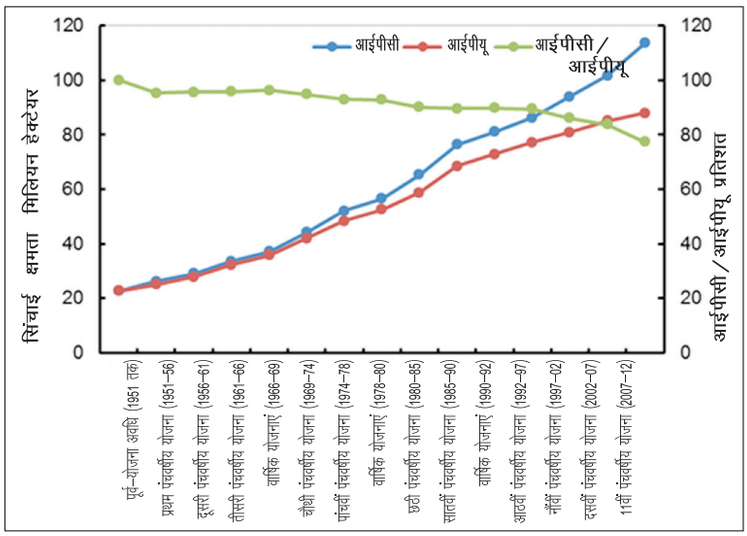

आकृति–2 : भारत में सृजित सिंचाई क्षमता (इरिगेशन पोटेंशियल क्रिएटिड–आईपीसी) और इस्तेमाल की गई सिंचाई क्षमता (इरिगेशन पोटेंशियल यूटिलाइज्ड–आईपीयू) के बीच बढ़ता अंतराल–वर्तमान में उपयोग केवल करीब 80 प्रतिशत हो रहा है।

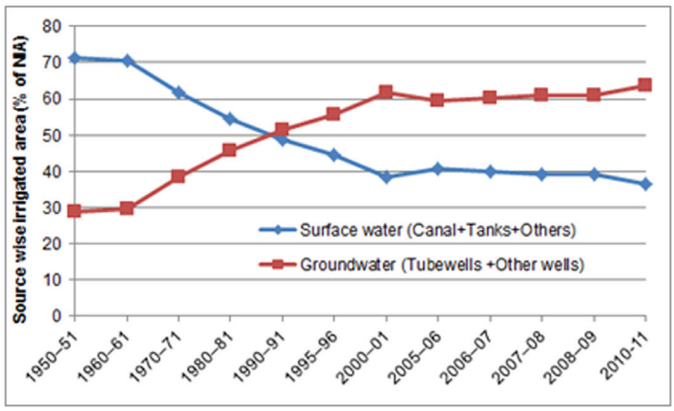

आकलित इकाईयां	**6584**
अत्यधिक दोहन	**1034 (16%)**
संकटपूर्ण	253 (4%)
अर्ध–विकट	681 (10%)
सुरक्षित	4520 (69%)
खाद्य	96 (1%)

आकृति–3 : भू–जल अब सिंचाई का प्रमुख स्रोत (60%) है जिससे संसाधनों का अत्यधिक दोहन हो रहा है, विशेष रूप से सघन सिंचित क्षेत्रों में संसाधनों पर दबाव बढ़ गया है।

इस कार्यक्रम के प्रमुख लक्ष्य हासिल करने के लिए नदी संपर्क परियोजना का तीव्र कार्यान्वयन, प्रत्येक गांव में कम से कम एक जल–संग्रह ढांचे का निर्माण, लंबित सिंचाई परियोजनाओं को तेजी से पूरा करना और 'प्रति बूंद अधिक फसल' का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए सूक्ष्म सिंचाई प्रणालियों का व्यापक विस्तार करना, जैसे कार्यों को आधार बनाया गया है। पीएमकेएसवाई का स्वरूप और उससे संबंधित प्रमुख घटक तालिका–1 में दिए गए हैं।

पीएमकेएसवाई का दृष्टिकोण

एआईबीपी के अंतर्गत राष्ट्रीय परियोजनाओं सहित पहले से जारी बड़ी और मध्यम आकार की सिंचाई परियोजनाओं को तेजी से पूरा करना।

वर्षा जल का कारगर प्रबंधन और जलसंभर–आधारित परिष्कृत मृदा एवं जल संरक्षण गतिविधियां।

सूक्ष्म सिंचाई कार्यक्रमों, जल निकायों की मरम्मत, अनुरक्षण और जीर्णोद्धार तथा नवीकरण के जरिए नए जल संसाधन विकसित करना और हर खेत को पानी के अंतर्गत वर्षा जल संरक्षण के अतिरिक्त ढांचों का निर्माण।

'प्रति बूंद अधिक फसल' का लक्ष्य हासिल करने के लिए ड्रीप्स, स्प्रिंगलर्स, पिवट्स, रेन–गंस जैसे सक्षम जलवाहक और सटीक जल अनुप्रयोगों का इस्तेमाल।

इस कार्यक्रम के अंतर्गत सिंचाई आपूर्ति श्रृंखला के एक सिरे से दूसरे सिरे तक समाधान पर ध्यान केंद्रित किया जाता है और यह कार्य जल–संसाधनों के विकास, सक्षम वितरण नेटवर्क और खेत–स्तरीय प्रबंधन में सुधार एवं पानी के किफायती इस्तेमाल के जरिए पूरा किया जाता है। कार्यक्रम का कार्यान्वयन अत्यंत महत्वाकांक्षी तरीके से किया जा रहा है। इसके अंतर्गत (i) आईएएस और आईएफएस अधिकारियों में पीएमकेएसवाई और ''जिला सिंचाई योजना'' तैयार करने संबंधी दिशा–निर्देशों के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए कार्यशालाएं आयोजित की गईं, (ii) क्षमता निर्माण और प्रयोगात्मक प्रशिक्षण के लिए भारत के विभिन्न क्षेत्रों में आईसीएआर, एनआईआरडी, सीडब्ल्यूसी/एनडब्ल्यूडीए जैसे संगठनों और अन्य स्वयंसेवी संगठनों के साथ ज्ञान भागीदारी विकसित की गई, (iii) जिला सिंचाई योजना (डीआईपी)–जो इस कार्यक्रम का मूलाधार है, को विकसित करने के लिए कृषि मंत्रालय ने एक प्रारूप तैयार किया और उसे विभिन्न पक्षों के साथ साझा किया। इन जिला सिंचाई योजनाओं पर राज्य और केंद्रीय–स्तर पर समन्वय समिति द्वारा विचार किया जाएगा ताकि उनका अनुमोदन और समीक्षा की जा सके, (vi) प्रथम चरण में मार्च 2020 तक पूरी किए जाने के लिए 99 एआईबीपी परियोजनाओं की पहचान की गई, (v) कार्यक्रम के लिए धन की व्यवस्था नाबार्ड के जरिए उपलब्ध कराई जाएगी, लघु सिंचाई के लिए 500 करोड़ रुपये की अतिरिक्त धनराशि निर्धारित की गई है।

प्रधानमंत्री कार्यालय और नीति आयोग द्वारा कार्यक्रम के कार्यान्वयन की नियमित रूप से समीक्षा की जाती है और 30 मार्च, 2017 को पिछली समीक्षा के दौरान प्रधानमंत्री ने विभिन्न सरकारी विभागों, कृषि विज्ञान केंद्रों और कृषि विश्वविद्यालयों के बीच समाभिरूपता की आवश्यकता पर बल दिया था ताकि इन परियोजनाओं के कमान क्षेत्रों में कारगर फसल पद्धतियां और पानी के किफायती इस्तेमाल की व्यवस्था का विकास किया जा सके। उन्होंने अधिकारियों का आह्वान किया था कि वे पीएमकेएसवाई के लिए एक व्यापक और समग्र विज़न तैयार करने के लिए काम करें। उन्होंने अंतरिक्ष अनुप्रयोगों सहित नवीनतम उपलब्ध प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल की आवश्यकता पर भी बल दिया ताकि सिंचाई परियोजनाओं की प्रगति पर निगाह रखी जा सके।

केंद्र सरकार की नेक नीयत और युक्तिसंगत धन आवंटन और नाबार्ड के ज़रिए संवितरण के बावजूद यह कार्यक्रम कुछ अधिक प्रगति नहीं कर पाया है। इसके पीछे अनेक

तालिका–1 : पीएमकेएसवाई के घटक और आवंटन (2016–17)

पीएमकेएसवाई के घटक	मंत्रालय/विभाग	भौतिक लक्ष्य (लाख हेक्टेयर)		लक्षित परिव्यय (करोड़ रुपये में)	
		2015-20	2015-16	2015-20	2015-16
त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम	जल संसाधन मंत्रालय–आरडी और जीआर	7.5	1.2	11,060	1000
हर खेत को पानी		21.0	2.8	9050	1000
प्रति बूंद अधिक फसल	ए एंड सी विभाग	100.0	5.0	16300	1800
जलसंभर विकास	भूमि सुधार विभाग	11.5	4.4	13590	1500
कुल				**50,000**	**5300**

आकृति–4 पीएमकेएसवाई के लक्ष्य, कार्यनीति और संभावित परिणाम का चित्रण

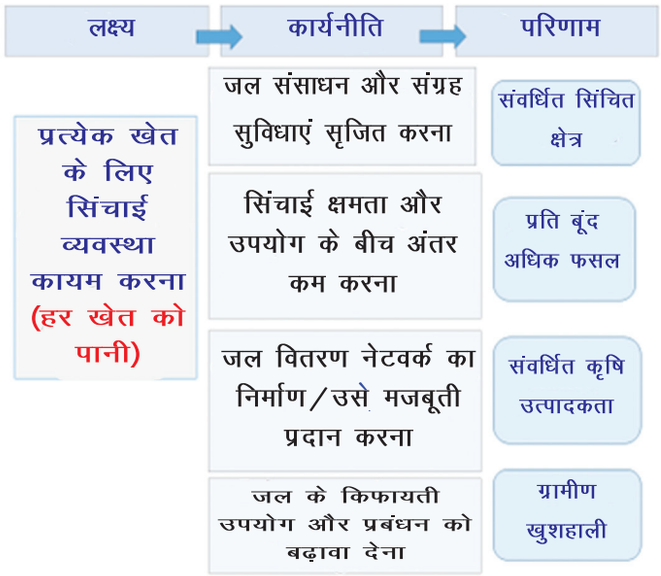

कारण हैं जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं : (i) जिला और राज्य–स्तर पर रुचि कम होना, (ii) जिला–स्तर पर एक ऐसी नवीन और किफायती जिला सिंचाई योजना तैयार करने में अक्षमता, जो वास्तव में जिले से संबंधी मुद्दों का समाधान कर सके (iii) विभिन्न संबद्ध विकास विभागों के बीच तालमेल और समाभिरूपता का अभाव, (iv) जिला/राज्य–स्तर पर कार्यक्रम के अंतर्गत उपलब्ध धन से अधिक धन आवंटन की आकांक्षाएं।

अतः यह अनिवार्य है कि राज्य और जिले सर्वाधिक नवीन और संभावनाशील उपायों का चयन करें, जो अगले 5–7 वर्षों में उस समय वांछित परिणाम दे सकें, जहां प्रधानमंत्री ने किसानों की आय दो गुना करने का वायदा किया है। अंतर्राष्ट्रीय जल प्रबंधन संस्थान और कई अन्य संबद्ध पक्षों ने पीएमकेएसवाई की जिला सिंचाई योजनाओं में निम्नांकित संभावनाशील उपायों की पहचान की है:

पीएमकेएसवाई के सफल कार्यान्वयन और किसानों की आय दुगुनी करने के लिए प्रस्तावित उपाय

(1) भू–जल के विकास और लिफ्ट–सिंचाई कार्यक्रमों के लिए सहायता। उपेक्षित किसान परिवारों को लक्षित सहायता उपलब्ध कराना ताकि वे कुओं/ट्यूबवैल और लिफ्ट सिंचाई योजनाओं का निर्माण कर सकें।

(2) मध्यप्रदेश, गुजरात और आंध्र प्रदेश की नीतियों का अनुसरण करते हुए व्यस्तता के समय अर्थात फसल मौसम के अवसर पर वहनीय लागत पर विद्युत आपूर्ति सुनिश्चित करना।

(3) उच्च या छिछले जल–स्तर वाले इलाकों में विशेषकर ग्रिड–रहित इलाकों में सौर ऊर्जा सिंचाई सहकारी संस्थाओं को सहायता प्रदान करना।

(4) विशेष रूप से पानी की कमी वाले क्षेत्रों में लघुसिंचाई परियोजनाओं को सहायता देना ताकि ड्रिप्स और स्प्रिंगलर्स की संस्थापना की जा सके।

(5) मौजूदा बड़ी और मध्यम सिंचाई स्कीमों में आईपीसी–आईपीयू यानी सृजित सिंचाई क्षमता और प्रयुक्त सिंचाई क्षमता के बीच अंतराल कम करना, वैज्ञानिक रोस्टरों के ज़रिए सिंचाई आवंटन करना और स्थगित मरम्मत कार्यों को तत्काल पूर्ण करना।

(6) पानी की क्षति रोकने और एक समान आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए भूमिगत पाइप्ड संप्रेषण नेटवर्क में रूपांतरण के लिए सहायता करना।

(7) तेलंगाना के काकातिया मिशन का अनुसरण करते हुए – तालाबों की गाद नियमित रूप से साफ करने, अतिक्रमण हटाने और आपूर्ति चैनलों को भूमि में दबाते हुए तालाबों और भूमिगत जलवहन प्रणालियों का संयुक्त प्रबंधन।

(8) भूमिगत जल संरक्षण और पुनर्भरण, शॉफ्ट पुनर्भरण, ट्यूबवैलों के पुनर्भरण, कुओं और तालाबों के अंतःस्रवण, ''सिंचाई के लिए बाढ़ के पानी का भूमिगत संग्रह'' जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से सामान्य और मौसमी बाढ़ का उपयोग पुनर्भरण के लिए करने जैसी गतिविधियों को प्रोत्साहित करना।

(9) परिसंपत्ति विकास, स्वामित्व और दीर्घकालिक रखरखाव के लिए समुदायों के समावेशन के ज़रिए जलसंभर उपचार।

(10) कृषि वानिकी, चारा, सब्जियों और पुष्प खेती के लिए उप–नगरीय गंदे जल से सिंचाई को बढ़ावा देना।

(11) सिक्किम के 'धर्म विकास' कार्यक्रम का अनुसरण करते हुए –उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, सिक्किम और पूर्वोत्तर राज्यों जैसे पर्वतीय क्षेत्रों में झरनों के जीर्णोद्धार पर विशेष बल देना।

(12) परंपरागत पर्वतीय जल प्रबंधन प्रणालियों और प्रमाणित पद्धतियों जैसे बहूउद्देश्यीय जल उपयोग प्रणालियों, जिनमें जल का इस्तेमाल घरेलू और लघु कृषि/मवेशी के लिए संयुक्त रूप से होता है, उच्च–वर्षा वाले क्षेत्रों में जल्लींद प्रणाली, बांस ड्रिप प्रणाली, जाबो प्रणाली और देशी ज्ञान आधारित अन्य पद्धतियों को बहाल करने में मदद करना।

(13) महिलाओं और बालिकाओं पर विशेष बल देते हुए, जो परंपरागत रूप से जल उपलब्ध कराने के लिए जिम्मेदार होती हैं, सभी कार्यक्रमों में सामुदायिक भागीदारी और सामाजिक समावेशन सुनिश्चित करना।

(14) पहले से जारी कार्यक्रमों जैसे मनरेगा, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन, राष्ट्रीय कृषि विकास योजना, पूर्वोत्तर भारत में हरित क्रांति लाना और राष्ट्रीय लघु सिंचाई मिशन के साथ समाभिरूपता और तालमेल कायम करना।

(लेखक अंतर्राष्ट्रीय जल प्रबंधन संस्थान, नई दिल्ली में वैज्ञानिक एमेरिटस (जल संसाधन) हैं।)

ई–मेल : b.sharma@cgiar.org

सिंचाई प्रणालियों की आवश्यकता और उनके प्रकार

–वासुदेव मीणा

सिंचाई सूखी जमीन को वर्षा जल के पूरक के तौर पर पानी की आपूर्ति की तकनीक है। इसका मुख्य लक्ष्य कृषि है। भारत के अलग–अलग हिस्सों में सिंचाई की विभिन्न प्रकार की प्रणालियों को इस्तेमाल में लाया जाता है। देश में सिंचाई कुओं, जलाशयों, आप्लावन और बारहमासी नहरों तथा बहु–उद्देशीय नदी घाटी परियोजनाओं के जरिए की जाती है। सिंचाई प्रणाली के समुचित इस्तेमाल के लिए इससे संबंधित इंजीनियर को मिट्टी की प्रकृति, नमी, पानी की गुणवत्ता और सिंचाई की आवृत्ति के बारे में जानकारी होनी चाहिए।

कृषि पर निर्भर देश होने के नाते सिंचाई भारत की रीढ़ की हड्डी है। भारत अलग–अलग भौगोलिक स्थितियों, जलवायु और वनस्पतियों वाला विभिन्न जैव विविधताओं से भरा देश है। देश में कुल कृषि योग्य भूमि लगभग 18.5 करोड़ हेक्टेयर है। मौजूदा समय में इसमें से लगभग 17.2 करोड़ हेक्टेयर जमीन पर खेती होती है। देश की विशाल आबादी का 70 प्रतिशत हिस्सा अपनी आजीविका के लिए कृषि पर सीधे तौर से निर्भर है। लिहाजा, भारत में कृषि हमेशा मुख्य उद्यम रही है और भविष्य में भी रहेगी। देश में कृषि मुख्य तौर से वर्षा पर निर्भर है। वर्षा के समय और परिमाण के बारे में अनुमान लगाना आमतौर पर नामुमकिन है। इसलिए भारत में पानी का वितरण बेहद असमान है। देश में वर्षा आमतौर पर साल के चार महीनों में ही होती है। इस दौरान पूरे पानी का इस्तेमाल नहीं हो पाता और अप्रयुक्त पानी बह जाता है। दूसरी ओर, बाकी मौसमों में पानी की भयानक तंगी रहती है। देश में एक ओर तो नदी प्रणालियों के रूप में बड़े जल संसाधन हैं और दूसरी तरफ विशाल प्यासे भूखंड। इस तरह प्रकृति ने ही देश में सिंचाई के विकास को जरूरी बना दिया है।

भारत में सिंचाई मुख्य तौर से भूमिगत जल के कुओं पर आधारित है। इस तरह की विश्व की सबसे बड़ी सिंचाई प्रणाली भारत की ही है। देश में कुल सिंचित क्षेत्र के 67 प्रतिशत हिस्से यानी 3.9 करोड़ हेक्टेयर जमीन पर सिंचाई इसी प्रणाली से होती है। इस प्रणाली से सिंचाई करने वाले देशों में चीन (1.9 करोड़ हेक्टेयर) दूसरे और अमेरिका (1.7 करोड़ हेक्टेयर) तीसरे स्थान पर है। भारत अपने संसाधनों की पूरी क्षमता का इस्तेमाल करे तब भी 11.5 करोड़ हेक्टेयर जमीन पर ही सिंचाई की सुविधा मुहैया कराई जा सकती है। इसमें से 8 करोड़ हेक्टेयर धरातल के पानी से और 3.5 करोड़ हेक्टेयर जमीन भूमिगत जल से सिंचित होगी। बहुफसली प्रणाली के इस्तेमाल और परती जमीन को उपजाऊ बनाए जाने की वजह से अगले दो दशकों में कुल फसल क्षेत्र के बढ़ कर लगभग 20 करोड़ हेक्टेयर हो जाने की उम्मीद है। कृषि के उपयोग में आने वाली सामग्रियों में बीज, उर्वरक, पादप संरक्षण, मशीनरी और ऋण के अलावा सिंचाई की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। सिंचाई का मतलब वर्षा के सिवा किसी और तरीके से खेतों में पानी पहुंचाना है। दूसरे शब्दों में, यह जमीन या मिट्टी को कृत्रिम ढंग से सिंचित करना है। सिंचाई वास्तव में वर्षा जल का विकल्प या पूरक है। इसकी जरूरत सूखे क्षेत्रों में और अपर्याप्त वर्षा के समय पड़ती है।

सिंचाई की आवश्यकता

- भारत विशाल और आबादी के लिहाज से चीन के बाद विश्व का दूसरा सबसे बड़ा देश है। देश की करोड़ों की आबादी का पेट भरने के लिए ज्यादा खाद्यान्न उपजाने की जरूरत है जिसके लिए सिंचाई सुविधाएं आवश्यक हैं।
- देश में वर्षा का वितरण असमान और अनिश्चित होने की वजह से अकाल और सूखा पड़ते रहते हैं। हम इन समस्याओं से सिंचाई के जरिए निपट सकते हैं।
- विभिन्न फसलों के लिए पानी की जरूरतें अलग–अलग होती हैं जिन्हें सिंचाई सुविधाओं से ही पूरा किया जा सकता है।
- भारत जैसे उष्ण–कटिबंधीय देश में तापमान ज्यादा होने की वजह से वाष्पीकरण भी तेजी से होता है। लिहाजा, पानी की पर्याप्त आपूर्ति तथा सर्दी के लंबे और सूखे मौसम में इसकी तंगी को दूर करने के लिए कृत्रिम सिंचाई जरूरी है।

भारत में सिंचाई के स्रोत

2010–11 की कृषि गणना के अनुसार भारत में कुल सिंचित क्षेत्र 6.47 करोड़ हेक्टेयर का है। इसमें से सबसे ज्यादा 45 प्रतिशत क्षेत्र में सिंचाई ट्यूबवेल से होती है जिसके बाद नहरों और कुओं का स्थान है।

सरकार 1950–51 से ही नहरों का सिंचित क्षेत्र बढ़ाने के काम को काफी महत्व दे रही है। 1950–51 में नहरों का सिंचित क्षेत्र 83 लाख हेक्टेयर था जो अब 1.7 करोड़ हेक्टेयर हो चुका है। इसके बावजूद कुल सिंचित क्षेत्र में नहरों का हिस्सा 1951 में 40 प्रतिशत से घट कर 2010–11 में 26 प्रतिशत रह गया है। दूसरी ओर कुल सिंचित क्षेत्र में कुओं और ट्यूबवेल का हिस्सा 29 प्रतिशत से बढ़ कर 64 प्रतिशत तक पहुंच चुका है।

सिंचाई प्रणाली के प्रकार

धरातल या भूमिगत जल की उपलब्धता, भौगोलिक स्थिति, मिट्टी की प्रकृति और नदियों को ध्यान में रखते हुए देश में निम्नलिखित सिंचाई प्रणालियां इस्तेमाल की जा रही हैं:

1. **जलाशय जल सिंचाई प्रणाली:** प्रायद्वीपीय भारत के असमतल और पथरीले पठार में यह प्रणाली लोकप्रिय है। दक्कन के पठार, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश के पूर्वी हिस्से, छत्तीसगढ़, ओडिशा और महाराष्ट्र में आमतौर पर जलाशयों का इस्तेमाल किया जाता है। कुल सिंचित क्षेत्र के लगभग 8 प्रतिशत हिस्से में जलाशयों से सिंचाई होती है। देश में लगभग 5 लाख बड़े और 50 लाख छोटे जलाशय हैं जिनसे 25.24 लाख हेक्टेयर से ज्यादा कृषि भूमि पर सिंचाई की जाती है। ज्यादातर जलाशय छोटे हैं जिन्हें व्यक्तियों या किसानों के समूहों ने मौसमी झरनों पर बांध बना कर निर्मित किया है।
   - अधिकतर जलाशय प्राकृतिक हैं जिनके निर्माण पर ज्यादा खर्च नहीं आता। यहां तक कि कोई किसान खुद का जलाशय भी बना सकता है।
   - सामान्यतः जलाशय पथरीली सतह पर बनाए जाते हैं और उनका लंबे समय तक इस्तेमाल किया जा सकता है।
   - कई जलाशयों में मत्स्य पालन भी किया जाता है। इससे किसानों के खाद्य संसाधनों और आमदनी में भी इजाफा होता है।

   लेकिन जलाशय के जरिए सिंचाई की कुछ सीमाएं भी हैं। कृषि की जमीन का एक बड़ा हिस्सा जलाशय में चला जाता है। जलाशय उथले और बड़े क्षेत्र में फैले होने के कारण इनमें पानी के वाष्पीकरण की प्रक्रिया तेज होती है। इनसे बारहों महीने पानी की आपूर्ति सुनिश्चित नहीं की जा सकती। जलाशय से पानी निकालना और उसे खेत तक पहुंचाना भी मेहनत का और खर्चीला काम है। इस वजह से किसान जलाशय को सिंचाई के साधन के तौर पर अपनाने से कतराते हैं।
2. **कुआं जल सिंचाई प्रणाली:** मैदानी, तटीय और प्रायद्वीपीय भारत के कुछ क्षेत्रों में यह प्रणाली ज्यादा अपनाई गई है। यह कम खर्चीली प्रणाली है। कुएं से पानी जब भी जरूरत पड़े, निकाला जा सकता है। इसमें वाष्पीकरण कम होता है और जरूरत से ज्यादा सिंचाई का भय भी नहीं रहता।
   - 1950–51 में देश में लगभग 50 लाख कुएं थे जिनकी संख्या

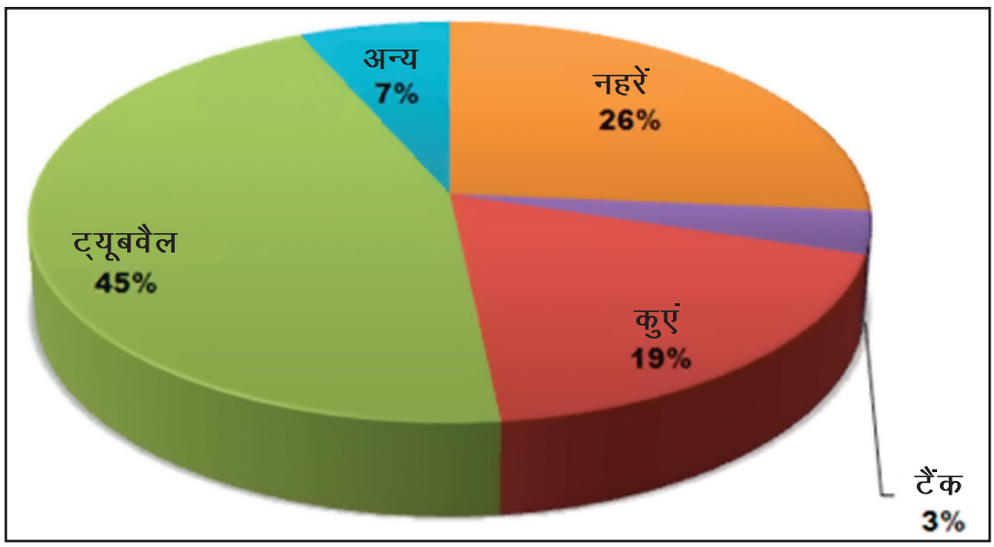

भारत में सिंचाई के स्रोत

अब 1.2 करोड़ तक पहुंच गई है। देश के कुल सिंचित क्षेत्र में से 60 प्रतिशत से ज्यादा में सिंचाई कुओं से ही होती है। नहरों से 29.2 प्रतिशत और जलाशयों से सिर्फ 4.6 प्रतिशत सिंचित क्षेत्र में सिंचाई होती है। वर्ष 1950–51 और 2000–01 के बीच कुओं से सिंचित क्षेत्र में पांच गुना से ज्यादा की वृद्धि हुई है। 1950–51 में कुओं से 59.78 लाख हेक्टेयर जमीन पर सिंचाई होती थी जो 2000–01 में बढ़ कर 332.77 लाख हेक्टेयर हो गई।

- भारत में कुओं से सिंचित क्षेत्र का सबसे बड़ा यानी 28 प्रतिशत हिस्सा उत्तर प्रदेश में है। उसके बाद राजस्थान (10 प्रतिशत), पंजाब (8.65 प्रतिशत), मध्य प्रदेश (8 प्रतिशत), गुजरात (7.3 प्रतिशत), बिहार, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु का स्थान है।
- गुजरात में कुल सिंचित क्षेत्र के 82 प्रतिशत हिस्से में कुएं से सिंचाई होती है। पंजाब (80 प्रतिशत), उत्तर प्रदेश (74 प्रतिशत), राजस्थान (71 प्रतिशत), महाराष्ट्र (65 प्रतिशत), मध्य प्रदेश (64 प्रतिशत) और पश्चिम बंगाल (60 प्रतिशत) में भी कुआं प्रणाली सिंचाई में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।
- भारत में कुएं से सिंचित क्षेत्र का तीन चौथाई हिस्सा उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, मध्य प्रदेश, गुजरात, बिहार और आंध्र प्रदेश में है।

महत्वपूर्ण नदी घाटी परियोजनाएं और उनसे लाभान्वित होने वाले राज्य

क्र. सं.	परियोजना	नदी	लाभान्वित राज्य
1.	भाखड़ा नंगल परियोजना	सतलुज	पंजाब, हिमाचल प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान
2.	दामोदर घाटी परियोजना	दामोदर	बिहार और पश्चिम बंगाल
3.	हीराकुंड बांध	महानदी	ओडिशा
4.	तुंगभद्रा परियोजना	तुंगभद्रा	आंध्र प्रदेश और कर्नाटक
5.	नागार्जुन सागर परियोजना	कृष्णा	आंध्र प्रदेश
6.	कोसी परियोजना	कोसी	बिहार
7.	फरक्का परियोजना	गंगा भागीरथी	पश्चिम बंगाल
8.	गंडक परियोजना	गंडक	बिहार, उत्तर प्रदेश और नेपाल
9.	व्यास परियोजना	व्यास	राजस्थान और पंजाब
10.	राजस्थान नहर	सतलुज	राजस्थान, पंजाब और हरियाणा
11.	चंबल परियोजना	चंबल	मध्य प्रदेश और राजस्थान
12.	उकाई परियोजना	ताप्ती	गुजरात
13.	तवा परियोजना	नर्मदा	मध्य प्रदेश
14.	श्रीराम सागर परियोजना	गोदावरी	आंध्र प्रदेश
15.	मलप्रभा परियोजना	मलप्रभा	कर्नाटक
16.	माही परियोजना	माही	गुजरात
17.	महानदी परियोजना	महानदी	ओडिशा
18.	इडुक्की परियोजना	पेरियार	केरल
19.	कोयना परियोजना	कोयना	महाराष्ट्र
20.	अपर कृष्णा परियोजना	कृष्णा	कर्नाटक
21.	रामगंगा परियोजना	रामगंगा	उत्तर प्रदेश
22.	टेहरी बांध	भीलन गंगा और भागीरथी	उत्तर प्रदेश
23.	नर्मदा सागर	नर्मदा	मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात और महाराष्ट्र
24.	मसानजोर (कनाडा) बांध	मयूराक्षी	पश्चिम बंगाल

सिंचाई प्रणालियों के प्रकार

कुएं दो प्रकार के होते हैं:

क. **खुले कुएं:** खुले कुएं कम गहरे होते हैं। पानी की उपलब्धता सीमित होने के कारण इनसे छोटे क्षेत्र में ही सिंचाई हो सकती है। खुष्क मौसम में इनमें पानी का स्तर नीचे चला जाता है।

ख. **ट्यूबवेल:** ट्यूबवेल गहरे और खेती के ज्यादा अनुकूल होते हैं जिनसे अधिक पानी निकाला जा सकता है। इनमें बारहों महीने पानी रहता है। किसी खुले कुएं से आधा हेक्टेयर जमीन ही सिंचित हो सकती है जबकि बिजली से चलने वाला एक गहरा ट्यूबवेल लगभग 400 हेक्टेयर भूमि पर सिंचाई कर सकता है। हाल के बरसों में ट्यूबवेल की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। ट्यूबवेल को खेत के नजदीक ही वैसी जगह लगाया और इस्तेमाल किया जा सकता है जहां भूमिगत जल आसानी से उपलब्ध हो।

ट्यूबवेल का इस्तेमाल मुख्यतौर पर उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब, बिहार और गुजरात में किया जाता है। राजस्थान और महाराष्ट्र में खेतों को अब उत्स्रुत कूपों से भी पानी दिया जा रहा है। इन कूपों में उच्च दबाव के कारण पानी के नैसर्गिक प्रवाह की वजह से जलस्तर हमेशा ऊंचा बना रहता है।

3. **आप्लावन नहर सिंचाई प्रणाली:** सिंचाई का प्रमुख स्रोत होने के कारण नहरें भारतीय कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं। कुल सिंचित भूमि के लगभग 42 प्रतिशत हिस्से में नहरों से ही सिंचाई होती है। तकरीबन 1.58 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर सिंचाई नहरों से ही की जाती है। कई स्थानों पर बारिश के मौसम में नदियों में बाढ़ आ जाती है। बाढ़ के पानी को नहरों के जरिए खेतों तक पहुंचाया जाता है। इस तरह की नहरें पश्चिम बंगाल, बिहार, ओडिशा, इत्यादि में पाई जाती हैं। वे नदी में बाढ़ होने पर ही पानी की आपूर्ति करती हैं। इसलिए वे खुष्क मौसम में काम नहीं आतीं जब पानी की जरूरत सबसे ज्यादा रहती है।

पश्चिमी यमुना नहर, सरहिंद नहर, ऊपरी बारी दोआब नहर और भाखड़ा नहर समेत इन नहरों की बदौलत ही पंजाब और हरियाणा खाद्यान्न उत्पादन में देश में सबसे आगे हो गए हैं। उत्तर प्रदेश की नहरों में ऊपरी और निचली गंगा नहर, आगरा नहर तथा शारदा नहर प्रमुख हैं। राजस्थान नहर परियोजना की बदौलत राजस्थान देश का तीसरा प्रमुख खाद्यान्न उत्पादक राज्य बन गया है। तमिलनाडु में बकिंघम नहर और पेरियार नहर दो प्रमुख नहरें हैं।

4. **बारहमासी नहर सिंचाई प्रणाली:** बारहमासी नहरों को पानी सीधे नदियों से या नदी परियोजनाओं के जलाशयों से मिलता है। बारहों महीने पानी की आपूर्ति के लिए जल स्रोतों पर बांधों के जरिए जलाशय बनाए जाते हैं। जब भी जरूरत हो, इन जलाशयों से पानी नहरों के जरिए खेतों तक पहुंचाया जा सकता है। इस प्रणाली से हर मौसम में पानी की आपूर्ति सुनिश्चित होती है। तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, इत्यादि में इस प्रणाली का बखूबी इस्तेमाल किया गया है। उत्तर भारत में इस तरह की बारहमासी नहरें ज्यादातर पंजाब और उत्तर प्रदेश में हैं।

पंजाब में रावी और व्यास नदियों को जोड़ने वाली ऊपरी बारी दोआब नहर और सतलुज से निकलती सरहिंद नहर काफी मशहूर है। उत्तर प्रदेश में ऊपरी और निचली गंगा नहरें तथा आगरा नहर और शारदा नहर महत्वपूर्ण हैं। तमिलनाडु में बकिंघम नहर और पेरियार नहर सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। कई स्थानों पर वर्षा जलसंग्रह प्रणाली लगाई गई है जिसके जरिए बारिश के पानी को खेती में इस्तेमाल के लिए बड़े कृत्रिम जलाशयों में इकट्ठा किया जाता है।

5. **बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाएं:** हाल के वर्षों में बहुउद्देश्यीय नदी घाटी परियोजनाएं सिंचाई और कृषि के विकास में मदद कर रही हैं।

(लेखक भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के भोपाल, (मध्य प्रदेश) स्थित भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान में वैज्ञानिक हैं।)
ई–मेल: vdmeena@iiss.res.in

जल उपयोग दक्षता बढ़ाने हेतु सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली

–डॉ. वीरेन्द्र कुमार

सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली सामान्य रूप से बागवानी फसलों में उर्वरक व पानी देने की सर्वोत्तम एवं आधुनिक विधि है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली के द्वारा कम पानी से अधिक क्षेत्र की सिंचाई की जा सकती है। इस प्रणाली में पानी को पाइप लाइन के द्वारा स्रोत से खेत तक पूर्व–निर्धारित मात्रा में पहुंचाया जाता है। इससे एक तरफ तो जल की बर्बादी को रोका जा सकता है, तो दूसरी तरफ यह जल उपयोग दक्षता बढ़ाने में सहायक है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली अपनाकर 30–37 प्रतिशत जल की बचत की जा सकती है। साथ ही इससे फसलों की गुणवत्ता और उत्पादकता में भी सुधार होता है। सरकार भी 'प्रति बूंद अधिक फसल' के मिशन के अंतर्गत फव्वारा व टपक सिंचाई पद्धति को बढ़ावा दे रही है।

भारत केवल 4 प्रतिशत जल संसाधनों के साथ दुनिया की 16 प्रतिशत आबादी को खाद्य व पोषण सुरक्षा प्रदान करता है। आने वाले समय में बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण कृषि के लिए पानी की उपलब्धता काफी कम हो जाएगी। इस प्रकार बढ़ती आबादी के खाद्य व पोषण के लिए पर्याप्त खाद्यान्न उत्पादन करना हमारे देश के प्रबंधकों एवं शोधकर्ताओं के लिए एक चुनौतीपूर्ण लक्ष्य होगा। दुनिया के लगभग सभी देशों मे तेजी से बढ़ते औद्योगिकीकरण एवं जनसंख्या वृद्धि के कारण पानी की आपूर्ति फसल उत्पादन हेतु एक प्रमुख समस्या बनती जा रही है। इस संबंध में सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली सामान्य रूप से बागवानी फसलों में उर्वरक व पानी देने की सर्वोत्तम एवं आधुनिक विधि है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली के द्वारा कम पानी से अधिक क्षेत्र की सिंचाई की जा सकती है। इस प्रणाली में पानी को पाइप लाइन के द्वारा स्रोत से खेत तक पूर्व निर्धारित मात्रा में पहुंचाया जाता है। इससे एक तरफ तो जल की बर्बादी को रोका जा सकता है, तो दूसरी तरफ यह जल उपयोग दक्षता बढ़ाने में सहायक है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली अपनाकर 30–37 प्रतिशत जल की बचत की जा सकती है। साथ ही इससे फसलों की गुणवत्ता और उत्पादकता में भी सुधार होता है। सरकार भी 'पर ड्राप मोर क्राप' के मिशन के अंतर्गत फव्वारा व टपक सिंचाई पद्धति को बढ़ावा दे रही है। फव्वारा सिंचाई से सतही सिंचाई की अपेक्षा 10 से 35 प्रतिशत जल की बचत व 10–30 प्रतिशत तक फसल उत्पादन में वृद्धि होती है। टपक सिंचाई विधि से पेड़–पौधों का जड़ क्षेत्र नम रहता है जिससे लवण की सांद्रता अधिक नहीं होती है। खेतों में सिंचाई के लिए ज्यादातर कच्ची नालियों का प्रयोग किया जाता है जिससे लगभग 30–40 प्रतिशत जल रिसाव के कारण बेकार चला जाता है। साथ ही खरपतवारों व जलमग्नता की समस्या पैदा होती है। बदलते परिदृश्य में किसानों व ग्रामीणों को खेत का पानी खेत में और गांव का पानी गांव में संरक्षित करने का संकल्प लेना चाहिए। गत कई वर्षों से फसलोत्पादन में जल उपयोग दक्षता बढ़ाने के लिए सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली का प्रयोग किया जा रहा है। केन्द्र सरकार ने 'हर खेत को पानी' के लक्ष्य के साथ प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना की शुरुआत की है। इसके तहत देश के हर जिले में समस्त खेतों तक सिंचाई के लिए पानी पहुंचाने की योजना है। इस योजना को लागू करने की जिम्मेदारी कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के साथ–साथ ग्रामीण विकास मंत्रालय और जल संसाधन मंत्रालय को दी गई है।

बरानी क्षेत्र और कृषि उत्पादन

जल संरक्षण आज सबसे बड़ी चुनौती है क्योंकि उपलब्ध जल का 80 प्रतिशत केवल सिंचाई में ही खर्च हो जाता है। इसे देखते हुए सूक्ष्म सिंचाई तकनीक को प्रचलन में लाया गया है। पिछले कई दशकों से खेतीबाड़ी, विकास कार्यों व अन्य उपयोगों में जल पर हमारी निर्भरता बढ़ती जा रही हैं। इस कारण जल के

अंधाधुंध दोहन से जल स्रोतों की मात्रा और गुणवत्ता निरंतर तेजी से घटती जा रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपनी वार्षिक वर्ल्ड वॉटर डवलपमेंट रिपोर्ट में कहा है कि पानी के उपयोग के तरीकों और प्रबंधन में कमियों के कारण 2030 तक दुनिया को जल संकट का सामना करना पड़ सकता है। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के 'हर बूंद ज्यादा फसल' के नारे के महत्व को ध्यान में रखते हुए जल संरक्षण और उसके सही इस्तेमाल के लिए किसानों को प्रोत्साहित करना चाहिए। हमारे देश की कुल 14.3 करोड़ हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि का लगभग 55 प्रतिशत वर्षा–आधारित तथा बरानी खेती के अंतर्गत आता है। देश में लगभग 95 प्रतिशत ज्वार व बाजरा तथा 90 प्रतिशत मोटे अनाजों का उत्पादन वर्षा–आधारित क्षेत्रों से ही आता है। इसके अलावा 91 प्रतिशत दालों और 85 प्रतिशत तिलहनों की पैदावार भी बरानी क्षेत्रों में होती है। परंतु दुर्भाग्यवश इन बरानी क्षेत्रों से कुल उत्पादन का मात्र 45 प्रतिशत ही प्राप्त होता है। इसका प्रमुख कारण वर्षा का असमय, अल्पवृष्टि या अतिवृष्टि है। साथ ही इन क्षेत्रों में वर्षा जल का सही प्रबंध न होना है। हमारे देश में औसत वर्षा 1190 मिलीमीटर है। देश में अधिकांश फसलें वर्षा के भरोसे होती हैं। इसलिए किसान भाई बड़ी बेसब्री से मानसून का इंतजार करते हैं। देश में वर्षा–आधारित खेती करने योग्य पर्याप्त क्षेत्रफल है। यह क्षेत्र शुष्क खेती या बारानी खेती कहलाता है जो कुल खाद्यान्न उत्पादन में लगभग 44 प्रतिशत योगदान करता है। इसके साथ–साथ 40 प्रतिशत मानव एवं 60 प्रतिशत पशुपालन में सहयोग करता है। इन क्षेत्रों में आधुनिक प्रौद्योगिकियों मुख्यतः सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली को अपनाकर पौष्टिक व स्वास्थ्यवर्धक खाद्यान्न उत्पन्न किया जा सकता है। इन क्षेत्रों में थोड़ी वर्षा और पर्याप्त प्राकृतिक संसाधन प्रकृति की ओर से दिया गया निःशुल्क उपहार है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली द्वारा बारानी क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने की काफी संभावनाएं हैं। बरानी क्षेत्रों में साधारणतः वर्षा का अभाव तथा अत्यधिक वाष्पोत्सर्जन दो सबसे बड़ी समस्या हैं। इन भूमियों की उपजाऊ शक्ति में कमी विशेषतौर पर मृदाक्षरण के कारण होती है। इसीलिए इन भूमियों में नमी धारण करने की क्षमता भी कम होती है। अतः इस क्षेत्रों में सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली द्वारा समुचित रूप से मृदा में नमी बनाए रखना नितांत आवश्यक है। वर्षा के पानी का संरक्षण और उसे जमा करना बारानी खेती की सफलता का मूल आधार हैं। इन क्षेत्रों में नमी संरक्षण की तकनीकें जैसे फव्वारा सिंचाई, टपक सिंचाई और उन्नत सस्य विधियां अपनाकर उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है। एक अनुमान के अनुसार यदि इन क्षेत्रों में फव्वारा सिंचाई व टपक सिंचाई तकनीकें अपनाई जाएं तो हम आजीविका सुरक्षा के साथ–साथ खाद्य एवं पौष्टिक सुरक्षा में भी सफल हो जाएंगे। इन क्षेत्रों की अधिकांश भूमियां छोटे किसानों के पास हैं जो समाज के अनुसूचित जाति, जनजाति या आर्थिक रूप से पिछड़े व उपेक्षित वर्गों से ताल्लुक रखते हैं। इन क्षेत्रों में फसलोत्पादन की आधुनिक प्रौद्योगिकियों को अपनाकर गरीबी उन्मूलन के साथ–साथ समाज में समानता की भावना भी पैदा की जा सकती है।

सरकारी प्रयास व योजनाएं

कृषि को बढ़ावा देने और किसानों की सुविधा के लिए भारत सरकार अनेक योजनाएं चला रही है। इन योजनाओं के माध्यम से किसानों को आर्थिक व तकनीकी सहायता प्रदान की जाती है। कृषि व किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा किसानों को सूक्ष्म सिंचाई उपकरणों पर सब्सिडी मिलने से कृषि क्षेत्र में युवाओं का रुझान भी बढ़ा है। आज सूक्ष्म सिंचाई पर सरकारी सहायता पाकर अधिक से अधिक किसान खेती से अच्छा मुनाफा प्राप्त कर रहे हैं। फव्वारा सिंचाई व टपक सिंचाई की स्थापना हेतु सरकार सब्सिडी भी देती है। केंद्र सरकार के अलावा राज्य सरकारें भी अपने किसानों को सब्सिडी देती है। यद्यपि केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा कुल खर्च पर दी जा रही सब्सिडी 90 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। यदि किसान सूक्ष्म सिंचाई सेट ऋण लेकर लगवाना चाहता है तो सब्सिडी का चैक सीधे ऋणदाता बैंक के नाम जाता है। प्रत्येक किसान के खेत को सिंचाई का पानी पहुंचाने के उद्देश्य से व सूखे की समस्या को स्थाई रूप से दूर करने के लिए प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई.) की शुरुआत की गई है। इस योजना को वित्तीय मंत्रीमंडलीय समिति ने एक जुलाई, 2015 को 5 वर्ष (2015–16 से 2019–20) के लिए 50,000 करोड़ रुपये की राशि अनुमोदित की है। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना द्वारा देश की कृषि भूमि को सिंचाई का संरक्षित स्रोत उपलब्ध कराना सुनिश्चित करना है ताकि पानी की प्रत्येक बूंद से अधिक से अधिक कृषि उत्पादन लिया जा सके। साथ ही सिंचित क्षेत्र बढ़ाकर ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक समृद्धि लाई जा सके। पीएमकेएसवाई की नीति के अंतर्गत जल स्रोतों, वितरण प्रणाली, खेत–स्तर पर बेहतर नीति का उपयोग और नई तकनीकी पर आधारित कृषि प्रसार एवं सूचना का व्यापक रूप से संपूर्ण सिंचाई आपूर्ति करने के लिए जिला व राज्य–स्तर पर प्रयोग करना है। बूंद–बूंद सिंचाई प्रणाली के अंतर्गत गैर डीपीएपी/डीडीपी क्षेत्रों के लघु एवं सीमांत किसानों के लिए कुल स्थापना लागत का 45 प्रतिशत एवं अन्य किसानों के लिए 35 प्रतिशत की सहायता दी जाती है। डीपीएपी/डीडीपी/उत्तर–पूर्वी एवं हिमालयी राज्यों के अंतर्गत लघु एवं सीमांत किसानों के लिए कुल स्थापना लागत का 60 प्रतिशत एवं अन्य किसानों के लिए 45 प्रतिशत की सहायता राशि दी जाएगी। अधिक अंतराल वाली फसलों के लिए मानक स्थापना लागत का 23,500 रुपये से लेकर 58,400 रुपये प्रति हेक्टेयर और कम अंतराल वाली फसलों के लिए 85,400 रुपये से 100,000 प्रति हेक्टेयर होगी। अधिकतम सहायता प्रति लाभार्थी/समूह 5 हेक्टेयर तक सीमित होगी। छोटे स्प्रिंकलर के लिए मानक स्थापना लागत 58,900 रुपये प्रति हेक्टेयर, मिनी स्प्रिंकलर के लिए 85,200 रुपये प्रति हेक्टेयर, पोर्टेबल स्प्रिंकलर के लिए 19,000 रुपये प्रति हेक्टेयर होगी। उपरोक्त योजनाओं के बारे में विस्तृत जानकारी के लिए जिला कृषि अधिकारी/

जिला मृदा संरक्षण अधिकारी/परियोजना निदेशक (आत्मा)/जिला बागवानी अधिकारी से संपर्क किया जा सकता है। इस योजना को मिशन मोड में लागू किया जाना है। सिंचाई के अधीन 28.5 लाख हेक्टेयर क्षेत्र लाया जाएगा जिसके लिए केंद्रीय बजट 2016–17 के लिए 5717 करोड़ रुपये का आवंटन किया गया है। इससे सूक्ष्म सिंचाई तथा जल संरक्षण के कार्य किए जाएंगे। सहकारी समितियां, स्वयंसहायता समूह और हितधारक कंपनियां भी उपरोक्त योजनाओं का लाभ ले सकती हैं। सहायता लेने के लिए टपक सिंचाई सेट पंजीकृत डीलर से ही खरीदा जाना चाहिए। टपक सिंचाई का सेट लगवाने पर होने वाला खर्च पानी के मुख्य स्रोत की खेत से दूरी और खेत में पौधों के बीच खाली छूटे स्थान पर निर्भर करता है।

सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली

बदलते परिदृश्य में सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली को जल उपयोग दक्षता बढ़ाने वाली तकनीक के रूप में देखा जा रहा है। सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली एक उन्नत विधि है जिसके प्रयोग से सिंचाई जल की पर्याप्त बचत की जा सकती है। इसमें मुख्य रूप से दो विधियां–फव्वारा सिंचाई व टपक सिंचाई अधिक प्रचलित हैं। टपक सिंचाई को बूंद–बूंद सिंचाई या ड्रिप सिंचाई के नाम से भी जाना जाता है।

फव्वारा सिंचाई पद्धति

फव्वारा सिंचाई को स्प्रिंकलर सिंचाई के नाम से भी जाना जाता है। फव्वारा सिंचाई एक ऐसी पद्धति है, जिसमें पानी का हवा में छिड़काव किया जाता है जो कृत्रिम वर्षा का एक रूप है। पानी का छिड़काव दबाव द्वारा छोटी नोजल से प्राप्त होता है। इसमें न तो कही पर पानी का जमाव और न बहाव होता है। साथ ही बीजों का अंकुरण भी जल्दी होता है। फव्वारा सिंचाई विधि में पानी महीन बूंदों में बदलकर वर्षा की फुहार के समान पौधों के ऊपर गिरता है। स्प्रिंकलर को फसलों के अनुसार उचित दूरी पर लगाकर पम्प की सहायता से चलाते हैं जिससे पानी तेज बहाव के साथ निकलता है। स्प्रिंकलर में लगी नोजल पानी को फुहार के रूप में बाहर फेंकती है। स्प्रिंकलर हमेशा घूमता रहता है जिससे उसके क्षेत्र में आने वाली फसलों की सिंचाई की जा सकती है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों में फव्वारा सिंचाई विधि बहुत ही प्रचलित है जिसके द्वारा पानी की लगभग 30–50 प्रतिशत तक बचत की जा सकती है। वर्तमान में लगभग 30 लाख हेक्टेयर भूमि में फव्वारा सिंचाई का प्रयोग हो रहा है। सामान्यतः फव्वारा सिंचाई सूखाग्रस्त, बलुई मृदा, ऊंची–नीची जमीन तथा पानी की कमी वाले क्षेत्रों के लिए उपयोगी है। इस विधि द्वारा गेहूं, चना, मूंगफली, तम्बाकू, कपास व अन्य अनाज वाली फसलों में आसानी से सिंचाई की जा सकती है। इसके अलावा घास के मैदानों, पार्कों व सजावटी पौधों में भी फव्वारा विधि द्वारा सिंचाई की जा सकती है। स्प्रिंकलर को खेत में इधर–उधर भी ले जाया जा सकता है। शुरुआती दौर में केवल चाय, कॉफी, सौंफ व ढालू क्षेत्रों मे उगाई गई फसलों में पूरक सिंचाई के रूप में फव्वारा विधि का प्रयोग किया जाता था। वर्तमान में अनियमित वर्षा वाले क्षेत्रों व सूखाग्रस्त इलाकों में इस विधि का बहुतायत में प्रयोग किया जा रहा है। स्प्रिंकलर सिंचाई विधि में पहले एल्युमिनियम पाइपों का ज्यादा प्रयोग होता था। परंतु आजकल अधिक मजबूती व कम दाब हानि के कारण एचडीईपी. व पीवीसी पाइपों का प्रयोग भी किया जा रहा है।

सारणी 1. फव्वारा सिंचाई प्रणाली के अंतर्गत पानी की बचत एवं पैदावार में बढ़ोतरी

क्र. सं.	फसल का नाम	पानी की बचत (प्रतिशत में)	पैदावार बृद्धि (प्रतिशत में)
1.	गेहूं	35	24
2.	जौ	56	16
3.	बाजरा	56	19
4.	कपास	36	50
5.	चना	69	57
6.	ज्वार	55	34
7.	सूर्यमुखी	33	20

फव्वारा सिंचाई विधि के लाभ

1. इस विधि में सतही सिंचाई विधियों की अपेक्षा जल प्रबंधन आसान होता है।
2. फव्वारा सिंचाई विधि में लगभग 10 प्रतिशत अधिक क्षेत्रफल फसल उत्पादन हेतु उपलब्ध होता है क्योंकि इस विधि में नालियां बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।
3. फव्वारा सिंचाई विधि में दिए गए जल का लगभग 80–90 प्रतिशत भाग पौधों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है जबकि पारंपरिक विधि में सिर्फ 30 प्रतिशत पानी का ही उपयोग हो पाता है।
4. इस विधि में जमीन को समतल करने की जरूरत नहीं पड़ती है। ऊंची–नीची और ढलान वाली मृदाओं में भी आसानी से खेती की जा सकती है।
5. फव्वारा सिंचाई विधि में खेत की उचित समय पर जुताई और फसल की बुवाई का कार्य किया जा सकता है।
6. फसलों में कीटों व बीमारियों का कम प्रकोप होता है। क्योंकि फव्वारा सिंचाई प्रणाली के द्वारा कीटनाशी व रोगनाशी दवाइयों का छिड़काव बेहतर ढंग से किया जा सकता है।
7. इस विधि द्वारा फसलों की पोषक तत्व संबंधित आवश्यकताओं

को पूरा करने के लिए घुलनशील उर्वरकों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

फव्वारा सिंचाई में बाधाएं

1. हवा की गति तेज होने के कारण पानी का वितरण समान नहीं हो पाता है। चिकनी मिट्टी और गर्म हवा वाले क्षेत्रों में इस प्रणाली से सिंचाई नहीं की जा सकती है।
2. इस विधि के सही उपयोग के लिए लगातार जलापूर्ति की आवश्यकता होती है। साथ ही अधिक ऊर्जा की जरूरत होती है। पानी साफ–सुथरा, रेत व कंकड़ रहित व खारा नहीं होना चाहिए।

ड्रिप सिंचाई पद्धति

टपक या ड्रिप सिंचाई एक ऐसी पद्धति है, जिसमें प्लास्टिक के पाइप द्वारा पौधे के तने के चारों ओर भूमि पर या जड़ विकास क्षेत्र में ड्रिप की सहायता से बूंद–बूंद कर पानी दिया जाता है जिससे पानी की प्रत्येक बूंद पौधों के उपयोग में आ सके। इसमें 1.2–2.0 सेंटीमीटर मोटाई की लंबवत पाइपों के साथ पानी निकालने की उपयुक्त युक्ति लगी होती है जिसको ड्रिपर कहते हैं। यह पौधों के जड़ क्षेत्र के पास लगी होती है। इसमें मुख्य पाइप के समानांतर उप–मुख्य पाइप बिछाते हैं एवं उसी में ड्रिपर लगा देते हैं। पानी के लिए एक प्लास्टिक या सीमेंट का बना मुख्य टैंक होता है जिससे प्लास्टिक का मोटा मुख्य पाइप जुड़ा होता है। इसी में पानी खींचने की मोटर लगी होती है जो पानी को ड्रिप लाइन में दबाव से पहुंचाती है।

सारणी–2 सिंचाई की विभिन्न विधियों/प्रणालियों में जलदक्षता

क्र. सं.	सिंचाई प्रणाली	जल दक्षता प्रतिशत में
1.	बॉर्डर	30
2.	कूंड	33
3.	क्यारी	35
4.	ड्रिप	98
5.	फव्वारा	50

ड्रिप सिंचाई पद्धति को टपक सिंचाई या बूंद–बूंद सिंचाई के नाम से भी जाना जाता है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली का विकास 1960 के दशक के आरंभ में इजराइल तथा 1960 के दशक के अंत में आस्ट्रेलिया व उत्तरी अमेरिका में हुआ। इस समय अमेरिका में ड्रिप सिंचाई प्रणाली के अंतर्गत सर्वाधिक क्षेत्र लगभग 10 लाख हेक्टेयर है। इसके बाद भारत, स्पेन, इजराइल का स्थान है। ड्रिप सिंचाई पद्धति में जल को पाइप लाइन तंत्रों के द्वारा पौधों के जड़ क्षेत्र के आसपास आवश्यकतानुसार दिया जाता है। ड्रिप सिंचाई के तहत पानी को पाइप नेटवर्क के माध्यम से सीधे पौधों के जड़ क्षेत्र में सतह या उप–सतह पर ड्रिपर्स के माध्यम से दिया जाता है। इस प्रणाली में बूंद–बूंद द्वारा फसलों व बागवानी पौधों की सिंचाई की जाती है। टपक सिंचाई द्वारा 50–60 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत, फसल उत्पादन में वृद्धि, खरपतवारों के प्रकोप में कमी और फसल उत्पाद की गुणवत्ता में भी सुधार होता है। इस विधि से उर्वरकों का सिंचाई के साथ प्रयोग करना भी संभव है। इससे उर्वरक उपयोग दक्षता तो बढ़ती ही है। साथ ही 30–40 प्रतिशत उर्वरक की भी बचत की जा सकती है। वर्तमान में देश में इसका उपयोग लगभग 5 लाख हेक्टेयर भूमि पर हो रहा है। इस आधुनिक सिंचाई प्रौद्योगिकी की तरफ देश के किसानों का रुझान बढ़ता जा रहा है। प्लास्टिक से बने पाइप सिंचाई के खेतों या बागों में सिंचाई के लिए व्यावहारिक दृष्टि से उत्तम होते हैं। अनेक अनुसंधान केंद्रों पर किए गए अध्ययनों से गन्ना, कपास, केला, टमाटर, फूलगोभी, बैंगन, करेला, मिर्च आदि फसलों में ड्रिप सिंचाई से अन्य प्रचलित सिंचाई विधि की अपेक्षा उपज वृद्धि के साथ–साथ पानी की भी बचत दर्ज की गई। विभिन्न प्रयोगों में धान–गेहूं फसलचक्र में कुल 9,750 घन मीटर पानी प्रति हेक्टेयर के लिए आवश्यक है जबकि टपक सिंचाई प्रणाली से 8,840 घन मीटर पानी प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। इस प्रकार धान–गेहूं फसल चक्र में पानी की बचत होती है। यह विधि मृदा के प्रकार, खेत के ढाल, जल स्रोत और किसान की दक्षता के अनुसार अधिकांश फसलों के लिए प्रयोग में लाई जा सकती है। फसलों की पैदावार बढ़ने के साथ–साथ इस विधि से फसल उत्पाद गुणवत्ता, कीटनाशियों एवं उर्वरकों का दक्ष उपयोग, खरपतवारों का कम प्रकोप एवं सिंचाई जल की बचत सुनिश्चित की जा सकती है। आजकल ड्रिप सिंचाई प्रणाली पूरे विश्व में लोकप्रिय होती जा रही है। सीमित जल संसाधनों और दिनों–दिन बढ़ती जल मांग और भू–जल प्रदूषण की समस्या को कम करने के लिए ड्रिप सिंचाई तकनीक बहुत लाभदायक सिद्ध हो रही है। जिन क्षेत्रों में ऊंची–नीची भूमि को समतल कर पाना कठिन या असंभव होता है, उन क्षेत्रों में टपक सिंचाई प्रणाली द्वारा व्यावसायिक फसलों को आसानी से उगाया जा सकता है। सिंचाई की इस विधि का प्रयोग कर 30–40 प्रतिशत तक उर्वरकों की बचत, 70 प्रतिशत तक जल की बचत के साथ उपज में 100 प्रतिशत तक वृद्धि की जा सकती है। इसके अलावा ऊर्जा की खपत में भी कमी होती है।

भविष्य में टपक सिंचाई तकनीक सिंचाई जल की बढ़ती हुई आवश्यकता की पूर्ति करने हेतु एक सशक्त साधन है। टपक सिंचाई प्रणाली को मुख्य रूप से बागवानी फसलों में अधिक प्रभावी पाया गया है जिसमें सिंचाई की जल उपयोग दक्षता 95 प्रतिशत तक देखी गई है। बदलते परिवेश में भारत सरकार के प्रयासों से टपक सिंचाई तकनीक किसानों के बीच काफी लोकप्रिय होती जा रही है। टपक सिंचाई तकनीक से सिंचाई क्षेत्र में नारियल फसल का योगदान लगभग 22 प्रतिशत है। आम, अंगूर, केला, अनार आदि फसलों में भी टपक सिंचाई का प्रयोग किया जा रहा है। गत कई वर्षों के दौरान देश में ड्रिप सिंचाई के अंतर्गत आने वाले क्षेत्र में अत्यधिक वृद्धि हुई है। हमारे देश में लगभग 81.4 करोड़ हेक्टेयर क्षेत्र में सूक्ष्म सिंचाई विधि से सिंचाई की जा रही है। महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाणा और तमिलनाडु

सारणी–3 विभिन्न फसलों के अंतर्गत टपक सिंचाई प्रणाली से जल बचत एवं उपज में वृद्धि

क्र. सं.	फसल	जल बचत (प्रतिशत में)	उपज में वृद्धि (प्रतिशत में)
1.	गन्ना	50	30
2.	कपास	55	30
3.	भिंडी	40	15
4.	बैंगन	55	20
5.	तोरई	60	20
6.	पत्ता गोभी	60	25
7.	अंगूर	50	90
8.	मूंगफली	40	70
9.	नींबू	80	35
10	पपीता	60	75
11.	मूली	73	15
12	मिर्च	60	45

स्रोत : खेती, 2016 आईसीएआर

आदि राज्यों में बड़े पैमाने पर ड्रिप सिंचाई विधि का प्रयोग अनेक फसलों में हो रहा है जिनमें फल वृक्षों का क्षेत्रफल सर्वाधिक है।

ड्रिप सिंचाई के लाभ

- सिंचाई जल की 70 प्रतिशत तक बचत होती है क्योंकि सिंचाई जल सतह पर बहकर और मृदा में जड़ क्षेत्र से नीचे नहीं जाता है।
- जल उपयोग दक्षता को 80–90 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। परिणामस्वरूप उत्पादकता एवं फसलों की गुणवत्ता में सुधार होता है।
- ड्रिप सिंचाई प्रणाली में श्रम की बहुत कम आवश्यकता होती है।
- ड्रिप सिंचाई द्वारा जमीन का बहुत कम क्षेत्र नम होता है। अतः खेत में खरपतवारों का कम प्रकोप होता है।
- इस विधि में जल्दी–जल्दी सिंचाई करने के कारण जड़ क्षेत्र में अधिक नमी रहती है जिससे लवणों की सांद्रता हानिकारक–स्तर से कम रहती है। फसलों व पेड–पौधों में बीमारियां और कीटों के प्रकोप की कम आशंका रहती है क्योंकि पौधों के आसपास वायुमंडल में नमी की सांद्रता कम रहती है।
- ड्रिप सिंचाई सभी प्रकार की मृदाओं के लिए उपयोगी है क्योंकि ड्रिप सिंचाई द्वारा मृदा में जल के वितरण को मृदा की प्रकार के अनुसार नियोजित किया जा सकता है।
- ड्रिप सिंचाई प्रणाली में जल का नियंत्रण बिल्कुल सही व आसानी से किया जा सकता है।
- सिंचाई जल के साथ दिए गए उर्वरकों का लीचिंग व डिनाइट्रीफिकेशन द्वारा कम ह्रास होता है। अतः यह प्रणाली उर्वरक उपयोग दक्षता बढ़ाने में भी सहायक है।
- फसल से आर्थिक लाभ में वृद्धि के साथ–साथ ड्रिप सिंचाई के प्रयोग से भू–क्षरण की संभावना भी न के बराबर होती है।
- इस विधि से जल्दी–जल्दी सिंचाई करने से मृदा में नमी की कमी नहीं रहती है जिसका पौधों की वृद्धि और विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है। अंतः पैदावार में 100 प्रतिशत तक वृद्धि की जा सकती है।
- पानी एवं पोषक तत्वों की बचत, श्रम लागत में कमी, भूमि को समतल करने की जरूरत नहीं पड़ती है।

फर्टिगेशन

यह शब्द फर्टि और गेशन दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ उर्वरक और सिंचाई है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली में जल के साथ–साथ उर्वरकों को भी पौधों तक पहुंचाना 'फर्टिगेशन' कहलाता है। फर्टिगेशन द्वारा उर्वरकों को कम मात्रा में और कम अंतराल पर पूर्वनियोजित सिंचाई के साथ दे सकते हैं। इससे उर्वरक उपयोग दक्षता बढ़ने के साथ–साथ पौधों को आवश्यकतानुसार पोषक तत्व मिल जाते हैं। साथ ही महंगे उर्वरकों का अपव्यय भी कम होता है। इस विधि से जल और उर्वरक पौधों के मध्य न पहुंचकर सीधे पौधों की जड़ों तक पहुंचते हैं। इसलिए फसल में खरपतवार भी कम पनपते हैं। फसल की मांग के अनुसार उर्वरकों की सांद्रता या उनके संघटन में भी बदलाव किया जा सकता है। इसमें फसल की सभी वृद्धि अवस्थाओं पर पौधे को पोषक तत्वों की संतुलित आपूर्ति होती रहती है। अनुसंधानों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि इस विधि में सिंचाई जल और उर्वरकों का उचित प्रबंधन होता है। यह तकनीक फसलों की उपज बढ़ाने, उनकी गुणवत्ता में सुधार करने और उत्पादन खर्च घटाने में सहायक है।

तालिका–4 उर्वरक उपयोग व सिंचाई के विभिन्न तरीकों के अंतर्गत उर्वरक उपयोग दक्षता (प्रतिशत में)

पोषक तत्व	छिटकवां विधि	ड्रिप	ड्रिप + फर्टिगेशन
नाइट्रोजन	30–35	65	95
फास्फोरस	20	30	45
पोटाश	50	60	80

स्रोत– इंडियन फार्मिंग, 2016

सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों को आम जनता, किसानों व प्रसारकृमियों में और अधिक लोकप्रिय बनाने की जरूरत है, ताकि संरक्षणपूर्ण प्रौद्योगिकियों के प्रयोग से बेहतर जल प्रबंधन एवं जल उपयोग दक्षता को अधिक लाभप्रद बनाया जा सके। कम पानी वाले क्षेत्रों में ड्रिप सिंचाई प्रणाली अपनाई जानी चाहिए। इससे पानी के अनावश्यक अपव्यय पर रोक लगेगी। जिससे भावी पीढ़ी को पर्याप्त सिंचाई जल के साथ सुरक्षित जल भंडार भी प्राप्त हो सकें।

(लेखक जल प्रौद्योगिकी केंद्र, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में कार्यरत हैं।)

ई–मेल : v.kumardhama@gmail.com

CHANAKYA IAS ACADEMY®

Also known as Chanakya Civil Services Academy

24 Years of Excellence, Extraordinary Results every year, 3000+ selections in IAS, IFS, IPS and other Civil Services so far...

CHANAKYA IAS ACADEMY
Nurturing Leaders of Tomorrow
SINCE-1993

A Unit of **CHANAKYA ACADEMY FOR EDUCATION AND TRAINING PVT. LTD.**

***under the direction of* Success Guru AK Mishra**

IAS 2018

Upgraded Foundation Course™

A Complete solution for Prelims, Mains & Interview

- Special modules on administrative traits by Success Guru AK Mishra & retired civil servants
- Intensive Classes with online support
- Offline/ Online test series for Prelims & Mains
- Pattern proof teaching
- Experienced faculty
- Hostel assistance

Separate classes in Hindi & English medium

Batches Starting From

10th September, 10th October, 10th November - 2017

Weekend Batches & Postal Guidance Also Available

To Reserve your seat - Call: 1800-274-5005 (Toll Free)

www.chanakyaiasacademy.com | enquiry@chanakyaiasacademy.com

HO/ South Delhi Branch: 124, 2nd Floor, Satya Niketan, Opp. Venkateswara College, Near Dhaula Kuan, Delhi-21, Ph: 011-64504615, 9971989980/ 81

North Delhi Branch: 1596, Outram Line, Kingsway Camp, Delhi-09, Ph: 011-27607721, 9811671844/ 45

Our Branches

Ahmedabad: 301, Sachet III, 3rd Floor, Mirambika School Road, Naranpura, Ph: 7574824916
Allahabad: 10B/1, Data Tower, 1st Floor, Patrika Chauraha,Tashkand Marg, Civil Lines, Ph: 9721352333
Chandigarh: S.C.O. 45 - 48, 2nd Floor, Sector 8C, Madhya Marg, Ph: 8288005466
Guwahati: Building No. 101, Maniram Dewan Road, Silpukhuri, Near SBI Evening Branch, Kamrup, Ph: 8811092481
Hazaribagh: 3rd Floor, Kaushaliya Plaza, Near Old Bus Stand, Ph: 9771869233
Indore: 120, 1st Floor, Veda Business Park, Bhawarkuan Square, AB road, Ph: 8818896686
Jammu: 47 C/C, Opposite Mini Market, Green Belt, Gandhi Nagar, Ph: 8715823063
Jaipur: Felicity Tower, 1st Floor, Plot no- 1, Above Harley Davidson Showroom, Sahakar Marg, Ph: 9680423137
Ranchi : 1st Floor, Sunrise Forum, Near Debuka Nursing Home, Burdhwan Compound, Lalpur, Ph: 9204950999, 9771463546
Rohtak: DS Plaza, Opp. Inderprastha Colony, Sonipat Road, Ph: 8930018880
Patna: 304, 3rd Floor, Above Reliance Trends, Navyug Kamla Business park, East Boring Canal Road, Ph: 8252248158
Pune: Millennium Tower, 4th Floor, Bhandarkar Road, Deccan Gymkhana, Ph: 9067975862, 9622380843
Dhanbad (Information Centre): Univista Tower, Near Big Bazaar, Saraidhela, Ph: 9771463546

चेतावनी

छात्रों/अभ्यर्थियों को एतद्द्वारा आगाह किया जाता है कि कुछ असम्बद्ध संस्थाएं ऐसे टेडमार्क/टेडनेम का इस्तेमाल कर रही हैं जो चाणक्य आईएएस एकेडमी/चाणक्य एकेडमी (1993 से सक्सेस गुरु एके मिश्रा के मार्गदर्शन में प्रोन्नत) के टेडमार्क/टेडनेम के समरूप/भ्रामक समान हैं। हम इसके द्वारा यह घोषणा करते हैं कि ये संस्थाएं हमसे सम्बद्ध नहीं हैं तथा ऐसी संस्थाओं के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई पहले से ही शुरू कर दी गयी है। सभी छात्रों को नामांकन कराने के पूर्व ऐसी एकेडमी/अध्ययन केन्द्र/संस्थान की प्रामाणिकता की पुष्टि कर लेनी चाहिए और अनुरोध किया जाता है कि समरूप/भ्रामक रूप से समान टेडमार्क/टेडनेम के तहत हो रही ऐसी किसी भी गतिविधि के बारे में 09650299662/3/4 पर फोन कर तथाinfo@chanakyaacademygroup.comपर ईमेल भेजकर हमें सूचित करें।

बाढ़ और सूखे से किसानों को बचाने की चुनौती

–चंद्रभान यादव

केंद्र सरकार की ओर से खेती एवं खेतिहरों के विकास के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं। सूखा और बाढ़ दोनों ही स्थितियों में मिट्टी का अपरदन होता है। ऐसे में हमारी उपजाऊ मिट्टी की ऊपरी परत नष्ट हो जाती है। मिट्टी का अपरदन रोकने के लिए सरकार की ओर से लगातार कोशिशें की जा रही हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि मानसून के प्रभाव का डर किसानों को हमेशा लगा रहता है। इससे बचाने के लिए लगातार मौसम के पूर्वानुमान का अलर्ट जारी किया जा रहा है। दूसरी तरफ, सरकार ने किसानों की फसलों को सूखा, बाढ़ और ओलों इत्यादि से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए मुआवजे के मानदंडों में भी संशोधन किया है। फसल क्षतिग्रस्त होने पर किसान 33 प्रतिशत के बजाय 50 प्रतिशत मुआवजे के पात्र होंगे।

भारत में बाढ़ और सूखा किसानों के लिए अभिशाप बने हुए हैं। कहीं अधिक पानी की वजह से फसलें नष्ट हो जा रही हैं तो कहीं पानी के अभाव में सूखी जा रही है। यह स्थिति भारत के अलग– अलग हिस्से में किसी न किसी साल जरूर बनती है। इस बड़ी समस्या से निबटने के लिए केंद्र सरकार की ओर से लगातार प्रयास किए जा रहे हैं। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन के तहत मौसम से संबंधित अलर्ट जारी किया जा रहा है। वहीं कृषि मंत्रालय की ओर से इलाके के हालात को ध्यान में रखकर किसानों को बीज उपलब्ध कराने की सलाह दी जा रही है। इन दिनों देशभर में फैले कृषि विज्ञान केंद्रों के वैज्ञानिकों ने इस दिशा में खासतौर से अभियान चला रखा है। वे अपने इलाके के मौसम के पुर्वानुमान को ध्यान में रखकर किसानों को बीज उपलब्ध करा रहे हैं। जैसे बुंदेलखंड में सूखे की संभावना को देखते हुए एक सिंचाई से तैयार होने वाले रबी सीजन के बीज उपलब्ध कराए जा रहे हैं तो बिहार और असम में कम समय में तैयार होने वाली फसल पर फोकस किया जा रहा है। बाढ़ व सूखे से निबटने के लिए केंद्र सरकार की ओर से नदियों को जोड़ने की योजना भी एक बार फिर रंग लाती नजर आ रही है तो दूसरी तरफ प्रधानमंत्री सिंचाई योजना इसमें खासतौर से कारगर साबित हो रही है। बाढ़ और सूखे के समाजशास्त्र के साथ किसानों को बचाने के लिए केंद्र सरकार की ओर से की कई पहल की जा रही हैं।

सरकार ने स्वीकारी बाढ़ और सूखे से किसानों को बचाने की चुनौती

केंद्र सरकार की ओर से खेती एवं खेतिहरों के विकास के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं। इन दिनों भारत में सूखा और बाढ़ खेती के लिए एक बड़ी समस्या बने हुए हैं। सूखे से जहां खेत परती रह जा रहे हैं वहीं बाढ़ की वजह से लहलहाती फसल नष्ट हो ही जा रही है। सूखा और बाढ़ दोनों ही स्थितियों में मिट्टी का अपरदन होता है। ऐसे में हमारी उपजाऊ मिट्टी की ऊपरी परत नष्ट हो जाती है। मिट्टी का अपरदन रोकने के लिए सरकार की ओर से लगातार कोशिशें की जा रही हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि मानसून के प्रभाव का डर किसानों को हमेशा लगा रहता है। इससे बचाने के लिए लगातार मौसम के पूर्वानुमान का अलर्ट जारी किया जा रहा है। दूसरी तरफ, सरकार ने किसानों की फसलों को सूखा, बाढ़ और ओलों इत्यादि से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए मुआवजे के मानदंडों में भी संशोधन किया है। फसल क्षतिग्रस्त होने पर किसान 33 प्रतिशत के बजाय 50 प्रतिशत मुआवजे के पात्र होंगे। पिछले दो वर्षों में राष्ट्रीय आपदा राहत कोष के तहत राज्यों को 24556 करोड़ रुपये खर्च करने के लिए दिए गए हैं। क्षतिग्रस्त फसलों की तस्वीरें अपलोड करने के लिए स्मार्ट फोन और इसके आकलन के लिए ड्रोन जैसी अत्याधुनिक तकनीकों का भी इस्तेमाल किया जा रहा है।

खेती की विकास यात्रा पर गौर करें तो वर्ष 1970 से ही कृषि क्षेत्र में वार्षिक औसत विकास दर लगभग 2.8 प्रतिशत के आसपास स्थिर रही है। विशेष रूप से वर्ष 1991 के बाद गैर–कृषि क्षेत्र में तीव्र विकास दर के बल पर देश में आर्थिक सुधारों ने जोर पकड़ा है लेकिन कृषि क्षेत्र में यह विकास दर इसके बिल्कुल विपरीत है। इसकी सबसे बड़ी वजह बाढ़ एवं सूखा दोनों ही रहे हैं। केंद्र की राजग सरकार ने इन दोनों चुनौतियों के समाधान के लिए कृषि क्षेत्र की विकास दर को बढ़ाने और किसानों के कल्याण को बढ़ाने के लिए दोहरी रणनीति अपनाई है। यह रणनीति उस बात से बिल्कुल भिन्न है, जब देश में केवल उत्पादन और उससे संबंधित लक्ष्यों का ही अनुसरण किया जाता था, किंतु किसानों की आय के लिए कोई लक्ष्य अलग से निर्धारित नहीं किया जाता था। देश के योजनाबद्ध विकास के इतिहास में ऐसा पहली बार हुआ है, जब विकास के संदर्भ में लक्ष्य के रूप में निर्धारित किया गया है कि वर्ष 2022 तक किसानों की आय को दोगुना किया जाए। इसके लिए सिर्फ संसाधनों को बढ़ा देना पर्याप्त नहीं होगा बल्कि प्राकृतिक आपदाओं से भी किसानों को बचाने की चुनौती स्वीकार करनी होगी। इसी चुनौती के तहत सरकार की ओर से मृदा स्वास्थ्य कार्ड, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई), प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई), परंपरागत कृषि विकास योजना, कृषि के लिए अधिक संस्थागत ऋण सुविधा और दालों का बफर स्टॉक बनाना आदि शामिल किया गया है। इसमें सबसे खास बात यह है कि बाढ़ और सूखे से होने वाले मिट्टी के अपरदन को रोकना होगा। क्योंकि बाढ़ से जहां हमारी ऊपजाऊ मिट्टी बढ़ जाती है वहीं सूखे की वजह से धूल के रूप में भी उपजाऊ मिट्टी की परत उड़ जाती है।

केंद्र सरकार की नई पहल

सभी राज्यों को निर्देश दिया गया है कि वे सूखा–प्रभावित इलाके में ऐसी प्रजाति के बीज उपलब्ध कराएं, ताकि किसानों को बिना सिंचाई अथवा सिर्फ एक सिंचाई से भी फसल उत्पादन मिल सके। इस संबंध में सभी राज्यों को निर्देश जारी किया जा चुका है। क्योंकि मानसून की कमी के कारण इस वर्ष देश के कुछ हिस्सों में खरीफ की फसल बर्बाद हो गई जिससे धान, मोटे अनाज, तिलहन, दलहन और कपास के उत्पादन में मामूली गिरावट की आशंका है। इससे निबटने के लिए सरकार की ओर से फसल, बीज, पौध संरक्षण, बागवानी, एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन पर जोर दिया जा रहा है।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना

भारत की कृषि का लगभग 60 प्रतिशत हिस्सा प्रति वर्ष पर्याप्त एवं सही समय पर वर्षा होने पर निर्भर है और हाल के सूखों ने खेती के लिए सिंचाई की सुविधा बढ़ाने की जरूरत पर और ज्यादा बल दिया है। किसानों को मानसून के प्रभाव से बचाने में सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार ने इस वर्ष से 5500 करोड़ रुपये की राशि के प्रावधान के साथ प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना की शुरुआत की है। इस योजना के तहत राज्य और केंद्र सरकार मिलकर प्रीमियम की 90 प्रतिशत राशि का वहन करेंगे। इस खरीफ वर्ष में 21 राज्यों के 366.64 लाख किसानों को इसके दायरे में लाया गया है। इसमें एक मौसम, एक दर का प्रावधान है। खरीफ के लिए 2 प्रतिशत, रबी के लिए 1.5 प्रतिशत और व्यावसायिक और बागवानी फसलों के लिए 5 प्रतिशत प्रीमियम रखा गया है। यह अब तक की सबसे न्यूनतम प्रीमियम दर है। इस योजना में बुआई से पहले और कटाई के बाद भी फसलों की सुरक्षा का प्रावधान है। पिछले एक वर्ष 2016–17 में सकल कृषि योग्य फसल क्षेत्र के 30 फीसदी हिस्से को कवर किया गया है जबकि वर्ष 2015–16 तक कुल कवरेज मात्र 23 प्रतिशत था। वर्ष 2016–17 के दौरान कुल 74 करोड़ किसानों को कवर किया गया है जिसमें गैर–ऋणी किसानों की संख्या मात्र 1.35 करोड़ है। एक वर्ष में किसानों के कुल कवरेज में 0.89 करोड़ की वृद्धि हुई है जो पिछले वर्ष की तुलना में 18.32 प्रतिशत और गैर–ऋणी किसानों के कवरेज में 123.50 प्रतिशत वृद्धि प्रदर्शित करता है। वर्ष 2016–17 के दौरान कुल बीमित क्षेत्र 11 लाख हेक्टेयर को कवर किया गया है। एक वर्ष में बीमित क्षेत्र के कुल कवरेज में 56.56 लाख हेक्टेयर की वृद्धि हुई है जो पिछले वर्ष की तुलना में 10.78 प्रतिशत वृद्धि प्रदर्शित करता है। बुवाई–पूर्व फसल क्षति की कवरेज के तहत वर्ष 2016–17 के दौरान तमिलनाडु में 61 करोड़ रुपये के बुवाई–पूर्व फसल क्षति के दावों का भुगतान किया गया है। इसी तरह ओलावृष्टि, जलभराव, भूस्खलन जैसी स्थानीय आपदाओं के चलते वर्ष 2016–17 के दौरान आंध्रप्रदेश में 11 करोड़ रुपये, छत्तीसगढ़ में 0.09 करोड़ रुपये, हरियाणा में 4.04 करोड़ रुपये, महाराष्ट्र में 1.55 करोड़ रुपये, राजस्थान में 0.32 करोड़ रुपये और उत्तर प्रदेश में 0.80 करोड़ रुपये के दावों का भुगतान किया गया।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना एक समग्र योजना है, लेकिन इसका सबसे ज्यादा फायदा सूखा–प्रभावित इलाकों को मिलेगा। केंद्र सरकार सूखे की जद में रहने वाले इलाके पर विशेष तौर पर ध्यान दे रही है। पिछले दो वर्षों में दस राज्यों में गंभीर सूखा पड़ा, जिससे कृषि क्षेत्र पर बुरा प्रभाव पड़ा। वर्षा–आधारित कृषि भूमि के अतिरिक्त छह लाख हेक्टेयर क्षेत्र को सिंचाई के अंतर्गत लाने के लिए योजना के कार्यान्वयन के पहले एक वर्ष में पांच हजार तीन सौ करोड़ रुपये का आवंटन किया गया है। दरअसल सिंचाई क्षेत्र में छह दशकों के निवेश के बावजूद सुनिश्चित सिंचाई के तहत 142 मिलियन हेक्टेयर कृषि भूमि में से केवल 45 प्रतिशत ही कवर हो पाया है। हाल ही में शुरू हुई प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना (पीएमकेएसवाई) 'हर खेत को पानी' देने पर ध्यान केंद्रित करने की दिशा में एक सही कदम है। इसके अंतर्गत मूल स्थान पर जल संरक्षण के जरिए किफायती लागत और बांध–आधारित

बड़ी परियोजनाओं पर भी ध्यान दिया जाएगा। भारत की अगले पांच वर्षों में सिंचाई योजनाओं पर 50 हजार करोड़ रुपये खर्च करने की योजना है। वर्तमान में चल रही तीन योजनाओं– त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम, एकीकृत जलग्रहण प्रबंधन कार्यक्रम और खेत में जल प्रबंधन योजनाओं का विलय कर पीएमकेएसवाई बनाई गई है। पिछले दिनों एक कार्यक्रम को संबोधित करते हुए कृषि मंत्री ने बताया कि वर्ष 2016–17 में सूखा निरोधन उपायों के लिए 520.90 करोड़ रुपये की राशि राज्यों को जारी की गई। अब तक 56,226 जल संचयन संरचनाएं और 1,13,976 हेक्टेयर की सिंचाई क्षमता सृजित की गई। 675 जिला सिंचाई योजनाएं तैयार की गई हैं। वित्तवर्ष 2014–17 के दौरान राज्यों को कुल 4509 करोड़ रुपये जारी किए गए और सूक्ष्म सिंचाई के अधीन 18.38 लाख हेक्टेयर क्षेत्र को लाया गया है जोकि अब तक का सर्वाधिक क्षेत्र है। कृषि मंत्री ने कहा कि वर्ष 2017–18 के लिए 'प्रति बूंद अधिक फसल' के अंतर्गत 3400 करोड़ रुपये की राशि आवंटित की गई है जिसके सापेक्ष सितंबर, 2017 तक 1601.40 करोड़ रुपये की राशि जारी की गई है। सूक्ष्म सिंचाई के तहत वर्ष 2017–18 में 12 लाख हेक्टेयर क्षेत्र को इसमें जोड़ने का लक्ष्य रखा गया है। पीएमकेएसवाई को कमान क्षेत्र विकास सहित दिसंबर 2019 तक चरणबद्ध तरीके से 76.03 लाख हेक्टेयर की क्षमता के साथ 99 वृहद् और मध्यम सिंचाई परियोजनाओं को पूर्ण करने के उद्देश्य से मिशन मोड में कार्यान्वित किया जा रहा है।

सूखा राहत राशि

केंद्र सरकार की ओर से सूखा राहत योजना के तहत भी किसानों को बचाने का प्रयास किया जाता है। इसके तहत सूखा–प्रभावित इलाकों में राज्य सरकार के राजस्व विभाग की ओर से सर्वे कराया जाता है। सर्वे के आधार पर किसानों को राहत राशि मुहैया कराई जाती है। इसके अलावा फसलीय बीमा का पैसा अलग से दिया जाता है। सूखे से संबंधित एक मामले में सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने सभी राज्यों को स्टेट फूड कमीशन बनाने की बात कही है। इस पर केंद्र सरकार ने भी सहमति जताई है। कोर्ट ने सरकार से यह भी कहा कि सूखे के हालात से निपटने के लिए सूखा राहत आपदा फंड बनाया जाना चाहिए। मालूम हो कि महाराष्ट्र का मराठवाड़ा और उत्तर प्रदेश का बुंदेलखंड कई वर्ष से सूखे की मार झेल रहा है। इन क्षेत्रों में किसानों की आत्महत्या करने की खबरें लगातार आ रही हैं। ऐसे में केंद्र सरकार की ओर से राष्ट्रीय आपदा राशि कोष से मदद मुहैया कराई जा रही है। सूखा राहत राशि से किसानों को राहत दी जा रही है।

मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना

इस योजना का लक्ष्य अगले तीन वर्षों में 14.40 करोड़ किसानों को कार्ड मुहैया कराना है। सरकार ने इस परियोजना के लिए 568.54 करोड़ रुपये आवंटित किए हैं। चूंकि मिट्टी के प्रभावित होने की एक बड़ी वजह बाढ़ और सूखा भी है। बाढ़ में जहां उपजाऊ मिट्टी बह जाती है वहीं सूखे में मिट्टी में मौजूद पोषक तत्व नष्ट हो जाते हैं। यह कार्ड किसानों को उसकी मिट्टी में पोषकता की कमी एवं उर्वरक के उपयोग से संबंधित अनुमान प्राप्त करने में सक्षम बनाएगा। किसानों को इसके तहत एक सलाह भी दी जाएगी कि किस फसल पर कितनी मात्रा में उर्वरक आदि का उपयोग किया जा सकता है। जैविक खेती पर अपने फोकस के साथ सरकार ने परंपरागत कृषि विकास योजना की शुरुआत की है, जो कलस्टर खेती को प्रोत्साहित करता है। जैविक खाद के लिए सब्सिडी को 100 रुपये प्रति हेक्टेयर से बढ़ाकर 300 रुपये कर दिया गया। इसके लिए जिला–स्तर पर स्थापित प्रयोगशालाओं में गांवों की मिट्टी पहुंचाने के लिए किसान मित्रों का भी चयन किया गया है। ये किसान मित्र अपने–अपने गांव के किसानों की मिट्टी को लेकर प्रयोगशाला तक पहुंचा रहे हैं और प्रयोगशाला की रिपोर्ट के आधार पर किसानों को रासायनिक खाद एवं अन्य पोषक तत्वों का प्रयोग करने की सलाह दी जा रही है। मृदा की उर्वरता बढ़ाने के लिए उर्वरक जैसे एनपीके, चूना अथवा जिप्सम का उचित प्रयोग किया जाता है। यानी जितनी जरूरत हो, उतना ही प्रयोग किया जाना चाहिए। जांच के आधार पर उर्वरक की मात्रा का प्रयोग किए जाने का सबसे बड़ा फायदा यह होता है कि मिट्टी की ताकत घटने के बजाय बढ़ती जाती है। इससे एक तरफ उत्पादन अधिक होता है तो दूसरी तरफ मिट्टी की उर्वरता भी बरकरार रहती है।

भारत में कर्नाटक, असम, केरल, तमिलनाडु, हरियाणा और उड़ीसा में केंद्रीय प्रयोगशाला की स्थापना की गई है। इसके अलावा विभिन्न राज्यों में अलग से प्रयोगशालाएं चल रही हैं। मिट्टी उर्वरता में खनिजों जैसे नाइट्रोजन, पोटेशियम और फॉस्फोरस की उपस्थिति को विचार में लिया जाता है।

कृषि वानिकी

पहली बार कृषि वानिकी पर उप–लक्ष्य शुरू किया गया है जिससे मेढ पर पेड़ कार्यक्रम को गति मिलेगी। इसके अलावा, कृषि–योग्य भूमि पर पट्टी और अंतराल पर वृक्षारोपण कर पेड़ विकसित किया जाएगा, इसके साथ कृषि योग्य बंजर भूमि पर फसल प्रणाली और ब्लॉक वृक्षारोपण भी अपनाया जा सकेगा। इस योजना का कार्यान्वयन वैसे राज्यों में किया जाएगा जहां लकड़ी के परिवहन के लिए पारगमन नियमों को उदार बनाया गया है और आने वाले समय में कुछ और राज्यों द्वारा उदार बनाए जाने पर उनको भी शामिल किया जाएगा। अब तक, इस योजना को 8 राज्यों में लागू किया जा रहा है।

आपदा राहत प्रबंधन

केंद्र सरकार ने आपदा राहत के मानकों में भी परिवर्तन किया है। पहले 50 प्रतिशत से अधिक फसल के नुकसान पर जो मुआवजा मिलता था, वह अब 33 प्रतिशत के फसल नुकसान पर मिलेगा। भुगतान की राशि को भी डेढ़ गुना कर दिया गया है। अतिवृष्टि से खराब हुए, टूटे और कम गुणवत्ता वाले अनाज

का भी पूरा समर्थन मूल्य देने का फैसला सरकार ने किया है। प्राकृतिक आपदाओं में मृतकों को पहले मात्र 1.5 लाख रुपये मिलता था, अब सरकार ने उसे बढ़ाकर 4 लाख रुपये कर दिया है। वर्ष 2010–15 के लिए राज्य आपदा राहत कोष में 33580.93 करोड़ रुपये स्वीकृत किए गए थे जबकि वर्ष 2015–20 के लिए यह राशि बढ़ाकर 61,220 करोड़ रुपये कर दी गई है। वर्ष 2016–17 के लिए एसडीआरएफ से सूखा–प्रभावित 10 राज्यों को पहली किस्त के तौर पर 2551 करोड़ रुपये जारी किए गए हैं। सूखा एवं ओलावृष्टि से प्रभावित राज्यों को यूपीए सरकार के कार्यकाल के दौरान चार वर्षों 2010–11, 2011–12, 2012–13, 2013–14 में एनडीआरएफ से जहां राज्यों द्वारा 92043.49 करोड़ रुपये की सहायता राशि की मांग की गई, वहीं उन्हें 12516.20 करोड़ की राशि स्वीकृत की गई। एनडीए सरकार द्वारा मात्र एक वर्ष 2014–15 में राज्यों द्वारा मांगे गए 42021.71 करोड़ रुपये के सापेक्ष 9017.998 करोड़ रुपये स्वीकृत किए गए। वर्ष 2015–16 में राज्यों द्वारा 41,722.42 करोड़ रुपये की मांग के सापेक्ष अब तक 13,496.57 करोड़ रुपये स्वीकृत किए जा चुके हैं। एनडीआरएफ के तहत केंद्रशासित राज्यों के लिए सहायता की कोई योजना नहीं थी। मोदी सरकार ने 2015–16 में केंद्रशासित आपदा राहत कोष (यूटीडीआरएफ) के लिए 50 करोड़ रुपये का आवंटन किया।

भारत में सूखे की स्थिति

भारत एक ऐसा देश है, जहां सूखा पड़ने का लंबा इतिहास रहा है। वर्ष 1801 से लेकर 2012 तक देश में 45 बार गंभीर सूखा पड़ा है। हाल के कमजोर मानसून का असर कृषि क्षेत्र पर पड़ा है और लगातर दूसरे वर्ष कृषि क्षेत्र का योगदान कम दर्ज किया गया। बारिश की कमी से फसल की हानि, सूखे का सबसे आम रूप है जो हमारे आर्थिक, औद्योगिक और सामाजिक क्षेत्र को कमजोर करता है। सूखे के तीन प्रकार होते हैं– पहला, मौसम के कारण सूखा जो किसी क्षेत्र में मासिक अथवा मौसमी वर्षा में सामान्य से काफी कम होने पर उत्पन्न होती है। दूसरा, जलीय सूखा जो किसी क्षेत्र में जल की कमी के फलस्वरूप सतही जल स्रोतों में उपलब्ध जल की कमी से होता है। लंबी अवधि तक पड़ने वाला मौसम–संबंधी सूखा भी जलीय सूखा उत्पन्न कर सकता है। सूखे का तीसरा प्रकार है कृषि संबंधी सूखा, जो पानी की कमी से फसलों में आंशिक या पूरी क्षति पहुंचाकर कृषि कार्यों को बुरी तरह प्रभावित करता है। सूखे को मध्यम श्रेणी का तब माना जाता है, जब मौसमी वर्षा में कमी देश के 20 प्रतिशत क्षेत्र में 26 से 50 प्रतिशत के बीच हो। सूखा तीसरी श्रेणी का तब कहलाता है, जब मौसमी वर्षा में कमी 50 प्रतिशत से अधिक हो। देश के 20 प्रतिशत से छोटे क्षेत्र में पड़े सूखे को स्थानीय सूखे के रूप में जाना जाता है। भारत में सूखे की समस्या कई कारणों से आ सकती हैं। इसमें मुख्य हैं– दक्षिण–पश्चिम मानसून का देरी से शुरू होना, मानसून में लंबी अवधि का अंतराल, मानसून का समय–पूर्व समाप्त होना तथा देश के विभिन्न भागों में मानसूनी वर्षा का असमान वितरण। भारत के सूखा–प्रभावित राज्यों में आंध्रप्रदेश, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान और तमिलनाडु शामिल हैं।

सूखे से निबटने की रणनीति

आर्थिक सर्वेक्षण 2015–16 में कृषि में बदलाव की बात करते हुए संकर और उच्च उपज बीज, प्रौद्योगिकी और मशीनीकरण पर अनुसंधान में अधिक निवेश कर सूक्ष्म सिंचाई के जरिए जल का किफायती उपयोग करने का प्रस्ताव किया गया है। जलवायु परिवर्तन के खतरों को देखते हुए उत्पाकदता बढ़ाने और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए जलवायु स्मार्ट कृषि प्रौद्योगिकियों में अनुसंधान पर निवेश की आवश्यकता पर ध्यान नहीं दिया गया है। कृषि क्षेत्र में अधिक पानी की खपत वाली फसलों के बजाय कम पानी वाली फसलों पर जोर दिया जा रहा है। सामुदायिक पानी प्रबंधन, पारंपरिक टैंक प्रणाली और 'मिट्टी में नमी बढ़ाने' के लिए सुधार के जरिए 'पानी की उपलब्धता' कायम रखने की कोशिश चल रही है। यह प्रयास ग्रामीण इलाकों में सूखे के प्रभाव को कम करने के लिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि भूजल भंडारण मूल स्थान पर मिट्टी को वास्तविक जलाशयों में परिवर्तित कर देता है, जो जलवायु के खतरों से असाधारण बचाव करता है।

सूखे से निपटने के लिए सरकार द्वारा उठाए जा रहे प्रमुख कदम

बहु–उद्देशीय नदी घाटी परियोजना

इस योजना से पंजाब और हरियाणा में हरित–क्रांति का

आगमन हुआ। 'बंगाल का शोक' कही जाने वाली दामोदर नदी तथा 'बिहार का शोक' कोसी नदी इन परियोजनाओं के कारण वरदान साबित हुई। इससे नहरों का जाल बिछाया गया।

लघु–स्तरीय सिंचाई योजनाओं का विकास

इनके अंतर्गत मुख्य रूप से ट्यूबवेल और डीजल पंपों से सिंचाई पर बल दिया जाता है। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र में इनका समुचित विकास किया जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप वहां गन्ने का उत्पादन बढ़ा है। इसकी सफलता को देखते हुए छोटे–छोटे जलाशय, तालाब, कुएं आदि का विकास तेजी से किया जा रहा है।

कृत्रिम वर्षा

वैज्ञानिक विधि द्वारा बादलों को रोककर उसके वाष्प को जल की बूंदों में बदल देने से वर्षा कराई जाती है। इसे कृत्रिम वर्षा कहते हैं। हमारे यहां उष्ण–कटिबंधीय मौसम विज्ञान, पुणे में कृत्रिम बरसात पर सफल शोध हुए हैं। यह संस्थान महाराष्ट्र में बारामती एवं सिरूर उत्तर प्रदेश में रिहंद बांध तथा केरल के तटीय भागों में सफलतापूर्वक कृत्रिम बरसात करा चुका है। वर्षा बूंद परियोजना 1992 में शुरू की गई। गुजरात के कच्छ जिले के लगभग 45,500 वर्ग किमी. सूखाग्रस्त क्षेत्र में 5 भू–केंद्रों से मेघ–वीजन की योजना तैयार की गई। इससे यहां वर्षा की मात्रा में वृद्धि की संभावना है।

सूखाग्रस्त क्षेत्र विकास कार्यक्रम

यह कार्यक्रम एक समग्र क्षेत्रीय विकास कार्यक्रम के रूप में ग्रामीण विकास मंत्रालय के अधीन 1973–74 में आरंभ किया गया है जो 75 : 25 हिस्सा में केंद्र और राज्यपोषित है। इसका उद्देश्य समुचित प्रौद्योगिकी को अपनाकर क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों के आधार पर समन्वित विकास करना, पारिस्थितिकी संतुलन कायम रखते हुए भूमि, जल जैसे प्राकृतिक संसाधनों के साथ–साथ समग्र संसाधन का अधिकतम उपयोग करना है। यह कार्यक्रम 16 राज्यों के 182 जिलों में चलाया जा रहा है।

मरुभूमि विकास कार्यक्रम

यह कार्यक्रम सन् 1977–78 में शुरू किया गया। इस कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य रेगिस्तानी क्षेत्र को बढ़ने से रोकना, मरुभूमि में सूखे के प्रभाव को कम करना, प्रभावित क्षेत्रों में परिस्थितिकीय संतुलन बहाल करना, तथा इन क्षेत्रों में भूमि की उत्पादकता एवं जल संसाधनों को बढ़ाना। यह शत–प्रतिशत केंद्र सरकार द्वारा वित्तपोषित कार्यक्रम है। इसके अंतर्गत भारत में राजस्थान, हरियाणा तथा गुजरात गर्म मरुस्थल के अंतर्गत 17 जिलों के साथ–साथ जम्मू–कश्मीर के 4 जिले (जिनमें लद्दाख क्षेत्र का शीत मरुस्थल आता है) लाभान्वित होते हैं। अब इस कार्यक्रम को अन्य ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के साथ जोड़ दिया गया है। यह शत–प्रतिशत केंद्र सरकार द्वारा वित्तपोषित कार्यक्रम है।

कमांड क्षेत्र विकास कार्यक्रम

क्षेत्र विकास कार्यक्रम की शुरुआत 1974–75 में कुल 60 बड़ी और मध्यम परियोजनाओं के साथ की गई। इस कार्यक्रम का मूल उद्देश्य पूर्व से चल रही नदी घाटी परियोजनाओं की कुल क्षमता तथा उपयोग हो रही क्षमता के मध्य बनी रिक्तता को पाटना है जिससे मिट्टी तथा जल संसाधन का पूर्ण उपयोग हो तथा बर्बादी को रोका जा सके। मोटे तौर पर इस कार्यक्रम के अंतर्गत खेतों में नालियां बनाना, फालतू के पानी को निकालने के लिए नाले बनाना, भूमि का उचित आकार के भूखंडों में विभाजन करना, खेतों के लिए सड़कें बनाना, चकबंदी की व्यवस्था करना, बाजार एवं गोदामों का निर्माण तथा खेती के लिए भूमिगत जल के विकास के कार्यों को भी शामिल किया गया। इस कार्यक्रम ने भी सूखे के प्रभाव को कम करने में काफी सफलता अर्जित की है। भारत के कमांड एरिया के अनेक उदाहरण हैं, जैसे– दामोदर कमांड क्षेत्र, चम्बल घाटी कमांड क्षेत्र, सोन कमांड क्षेत्र इत्यादि। (कमांड एरिया– किसी नदी द्वारा निकाली गई नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्र ही उस नदी का 'कमांड एरिया' कहलाता है। कमांड एरिया का सीमांकन नहरों द्वारा सिंचित क्षेत्र के आधार पर किया जाता है।

भारत में बाढ़ की स्थिति

दुनिया के सबसे अधिक बाढ़ संभावित देशों में से भारत एक है। गृह मंत्रालय की एक रिपोर्ट के मुताबिक 35 राज्यों और केंद्र–शासित प्रदेशों में से 23 राज्य बाढ़ की दृष्टि से अति–संवेदनशील हैं। भौगोलिक क्षेत्र के दृष्टिकोण से देश का 1/8वां भाग या 40 लाख हेक्टेयर भूमि बाढ़ के दृष्टिकोण से संवेदनशील है, जिसमें से 8 लाख हेक्टेयर भूमि प्रत्येक साल बाढ़ से प्रभावित होती है। भारत की सभी नदी घाटियां बाढ़ की दृष्टि से संवेदनशील हैं। भारत में हिमपात सहित वार्षिक वर्षा अनुमानतः 4000 बिलियन घनमीटर (बीसीएम) होती है। इसमें से मानसून के दौरान मौसमी हिमपात 3000 बीसीएम होता है। भारत में दक्षिण–पश्चिम मानसून के प्रभाव के अधीन अधिकांश वर्षा (75 फीसदी) जून से सितंबर (चार महीने) माह के दौरान होती है। सामान्य वार्षिक वर्षा राजस्थान के पश्चिमी हिस्सों में लगभग 100 मिलीमीटर से लेकर मेघालय में पूर्वोत्तर हिस्से में 10,000 मिलीमीटर तक भिन्न–भिन्न मात्राओं में होती है। भारत में बाढ़ को चार हिस्से में बांटा गया है। इसमें ब्रह्मपुत्र क्षेत्र, गंगा क्षेत्र, उत्तर–पश्चिम क्षेत्र, केंद्रीय भारत और डेक्कन क्षेत्र। इन क्षेत्रों की विशिष्ट समस्याएं हैं जिन पर सामान्य पक्षों सहित स्थानीय स्थितियों को दृष्टिगत रखते हुए ध्यान दिया जाना है। देश को गंभीर बाढ़ के कारण बार–बार जान–माल की भारी क्षति उठानी पड़ती है। देश के भीतर 1955, 1971, 1973, 1977, 1978, 1980, 1984, 1988, 1998, 2001 तथा 2004 के मानसून में बाढ़ के कारण गंभीर नुकसान हुआ था। बिहार, असम और उत्तर प्रदेश में बाढ़ का प्रकोप अधिक होता है। नुकसान के मामले में सबसे ज्यादा प्रभावित बिहार होता है। बाढ़ की वजह से सबसे ज्यादा नुकसान खेती को होता है। एक तरफ उपजाऊ मिट्टी बह जाती है तो दूसरी तरफ उपजाऊ मिट्टी के ऊपर बलुई मिट्टी की परत भी जम जाती

है। इतना ही नहीं खेत में तैयार फसल तो बर्बाद होती ही है साथ ही खेत में अधिक नमी की वजह से भी कई बार उत्पादन प्रभावित होता है। भू–क्षरण भी होता है।

समाधान के प्रमुख उपाय

1. मानसून के दौरान गंगा एवं उसकी सहायक नदियों के पैटर्न को समझने के लिए समन्वित प्रयास की आवश्यकता है।
2. भूमि सर्वेक्षण की अपेक्षा सरकार को उपग्रह चित्रों पर आधारित नक्शों एवं भौगोलिक सूचना तंत्र जैसी आधुनिक तकनीकों का प्रयोग करना चाहिए।
3. बिहार की कोसी नदी जिस प्रकार अपनी सीमाओं को हर बार अलग पैटर्न में तोड़ती है, ऐसी नदियों के व्यवहार को गहराई से समझकर सुरक्षात्मक उपाय किए जा सकते हैं।
4. नदियों पर बने बांध, बचाव नहर एवं बैराज आदि सदियों पुराने हैं, जिनका सर्वेक्षण करके उनमें सुधार किया जाना आवश्यक है।

वेटलैंड (जलभूमि) की जमीन पर भी अतिक्रमण किया जा रहा है। इससे पर्यावरणीय और जैव–विविधता को खतरा उत्पन्न हो गया है। कई बांध व बड़े जलाशयों में नदियों को मोड़ दिया जाता है, उससे नदी ही मर जाती है। नदियां बांध दी जाती हैं। लोग समझते हैं कि यहां नदी तो है नहीं क्यों न यहां खेती या इस खाली पड़ी जमीन का कोई और उपयोग किया जाए, तभी जब बारिश ज्यादा होती है तो पानी को निकलने का रास्ता नहीं मिलता। और यही पानी बाढ़ का रूप धारण कर लेता है इससे बर्बादी होती है।

बड़े पैमाने पर रेत खनन– रेत पानी को स्पंज की तरह जज़्ब करके रखती है। रेत का खनन किया जा रहा है। रेत ही नहीं रहेगी तो पानी कैसे रुकेगा, नदी कैसे बहेगी, कैसे बचेगी। अगर रेत रहेगी तो नदी रहेगी। लेकिन जैसे ही बारिश ज्यादा होती है, वेग से पानी बहता है, उसे ठहरने की कोई जगह नहीं रहती।

सूखे से निबटने को पानी प्रबंधन कर रहा बुंदेलखंड

सूखे के संकट से निबटने के लिए केंद्र सरकार की ओर से तमाम प्रयास किए जा रहे हैं। किसानों को सरकारी योजनाओं के भरोसे बैठने के बजाय पानी प्रबंधन पर भी ध्यान देना होगा। उदाहरण के तौर पर बुंदेलखंड को देखें। यहां सूखे की स्थिति है, लेकिन पानी प्रबंधन के जरिए तमाम किसान कम लागत में अधिक उपज हासिल कर रहे हैं। बुंदेलखंड में पानी संकट को देखते हुए सरकार ने अलग–अलग जिले के अलग–अलग इलाके को डार्क ज़ोन घोषित कर रखा है। डार्क ज़ोन घोषित होने के बाद इस इलाके में धरती से पानी निकासी पर रोक लग गई। ऐसे में जिन किसानों के पास खेत हैं वे सिंचाई के अभाव में खेती से वंचित रहने लगे। तमाम किसानों ने खेतीबाड़ी छोड़ दी क्योंकि बिना पानी के खेती करना संभव ही नहीं है। जिन लोगों के पास पंपसेट थे वे भी एक घंटे से ज्यादा नहीं चला पाते थे। घंटेभर में ही कुएं सूख जाते थे। फिर इस गांव के लोगों ने कृषि वित्त प्रबंधन का फंडा अपनाया। महोबा के बरबई, काकुन और चरखारी गांवों में घुसते ही बड़ी संख्या में तालाब दिखाई पड़ते हैं। इन गांवों में हर किसान के पास कम से कम एक तालाब जरूर है। इसका असर यह है कि इस इलाके में पहले से स्थित कुआं भी रिचार्ज हो गया है। जिस बोरिंग से सिर्फ एक से दो घंटे ही सिंचाई की जा सकती थी, उससे अब चार से पांच घंटे पानी निकासी हो रही है। इसका दूसरा फायदा यह भी देखने को मिला कि जो छोटे किसान हैं और अपने खेत में तालाब नहीं बना सकते हैं उन्हें भी पड़ोस में बने तालाबों का फायदा मिल रहा है। उनके भी कुएं रिचार्ज हो गए हैं। महोबा जिला चंदुईया गांव निवासी जयप्रकाश के पास करीब 40 बीधा खेत हैं। उन्होंने खेत में तालाब बनवाया। यह कच्चा तालाब उस स्थान पर बनवाया, जहां उनकी बोरिंग थी। 30 मीटर लंबा, 30 मीटर चौड़ा और पांच मीटर ऊंचाई आकार का तालाब तैयार करवाया गया। जिस तरफ से पानी की आवक थी, उधर तालाब में पानी जाने के लिए नालियों की आकृति दी गई। जुलाई–अगस्त में बारिश हुई और खेतों का पूरा पानी तालाब में पहुंचा। तालाब लबालब भर गया। अगले साल उन्होंने दूसरे खेत में भी तालाब खुदवाया। यह देख उनके पड़ोसी किसानों की भी तालाब में रुचि बढ़ गई। देखादेखी गांव में अब 50 तालाब बन गए। यही स्थिति अन्य गांवों में भी है।

मिट्टी प्रबंधन जरूरी

भारत में करीब 50 फीसदी से ज्यादा भूमि किसी न किसी कारण बेकार पड़ी हुई है। इस बेकार पड़ी भूमि पर खेती न होने के पीछे एक बड़ा कारण इनका अनुपजाऊ होना है। इसके अलावा एक बड़ी समस्या यह भी है कि जो भूमि उपजाऊ है, वह भी किसी न किसी कारण अनुपजाऊ होती जा रही है। देश में कृषि–योग्य भूमि का एक बड़ा हिस्सा क्षरित भूमि का है। इस भूमि को बचाना सबसे बड़ी चुनौती है। आंकड़ों पर ध्यान दें तो भारत में मनुष्य भूमि अनुपात 0.48 हेक्टेयर प्रति व्यक्ति है, जो दुनिया के न्यूनतम अनुपातों में से एक है। वर्ष 2025 में घटकर यह आंकड़ा 0.23 हेक्टेयर होने का अनुमान लगाया जा रहा है। ऐसे में खेती की अनुपयोगी जमीन को खेती योग्य बनाकर एक बड़ी चुनौती से निबटा जा सकता है। भारत में कुल भूमि क्षेत्रफल 32.9 करोड़ हेक्टेयर है। इसमें अभी तक कृषि कार्य में करीब 14.4 करोड़ हेक्टेयर भूमि ली जा रही है। करीब 178 मिलियन हेक्टेयर भूमि विभिन्न कारणों से बंजर पड़ी हुई है। इसमें करीब 4 करोड़ हेक्टेयर क्षरित वन भी सम्मिलित हैं और 8.4 करोड़ हेक्टेयर वर्षा पर आधारित हैं। भारत में मृदा अपरदन की दर करीब 260.0 करोड़ टन प्रतिवर्ष है। देश की करीब 14.0 करोड़ हेक्टेयर भूमि, जल तथा वायु अपरदन से प्रभावित हैं। कृषि वैज्ञानिक डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन की रिपोर्ट बताती है कि भारत में प्रतिवर्ष अपरदन के कारण करीब 25 लाख टन नाइट्रोजन, 33 लाख टन फास्फेट और 25 लाख टन पोटाश की क्षति होती है। यदि इस प्रभाव को बचा

लिया जाए तो हर साल करीब–करीब छह हजार मिलियन टन मिट्टी की ऊपरी परत को नुकसान होने से बचाया जा सकता है। यानी हर साल करीब 55.30 करोड़ टन नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश की मात्रा को बचाया जा सकता है। इस तरह जहां बंजर होती जमीन को बचाया जा सकेगा वहीं किसानों की जेब को भी कटने से बचाया जा सकेगा।

बाढ़ से होने वाला जल अपरदन

भारत में हर साल कहीं बाढ़ की नौबत रहती है तो कहीं सूखे की। बाढ़ और सूखे के कारण तो कृषि प्रभावित होती ही है, लेकिन इसके अलावा भी कई कारणों से भारतीय खेती प्रभावित होती है, इन्हीं में से एक है जल अपरदन। पारिस्थितिकीविदों के आंकड़ों पर विश्वास करें तो भारत में हर साल करीब छह हजार टन उपजाऊ ऊपरी मिट्टी का कटाव होता है। पानी के साथ बहने वाली इस मिट्टी में नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, कैल्शियम, मैगनिशियम के साथ ही अन्य सूक्ष्य तत्व भी बह जाते हैं। इससे किसानों का खेत अनुपजाऊ हो जाता है। या यह कहें कि फसल के दौरान पौधा जिन तत्वों को एक बार ग्रहण नहीं कर पाया होता है, वे दूसरी फसल के लिए बचने के बजाय पानी के साथ बह कर खेत से बाहर चले जाते हैं। इस तरह हर साल करीब एक हजार से ज्यादा का नुकसान होता है। खासतौर से मध्य एवं पूर्वी भारत जल अपरदन की चपेट में ज्यादा आता है। इसका एक बड़ा कारण यहां की मिट्टी की स्थिति भी है। उत्तर भारत की अपेक्षा मध्य भारत की लाल मिट्टी में जल अपरदन की संभावना ज्यादा रहती है। इसी तरह उत्तरी–पूर्वी भारत के भी कुछ हिस्से जल अपरदन की चपेट में रहते हैं। जल अपरदन की समस्या से निजात पाने के लिए सरकारी–स्तर पर प्रयास किए जाएं। जिन इलाकों में जल अपरदन की ज्यादा समस्या है वहां उसके अनुरूप फसल–चक्र अपनाया जाए। जल अपरदन से बचने के लिए जड़युक्त फसलों की खेती ज्यादा से ज्यादा कराई जाए। बाढ़–प्रभावित इलाके में पानी के तीव्र गति से होने वाले बहाव को रोकने के लिए जगह–जगह बाड़बंदी कराई जाए। पट्टीदार खेती करने वाले किसानों को मेड़बंदी में विशेष सहयोग किया जाए। इससे पानी के नीचे उतरने की स्थिति में कुछ देर पानी रुकेगा और मिट्टी को उर्वर बनाने वाले तत्व परत के रूप में जम जाएंगे। सिंचाई की विधि मिट्टी की स्थिति के अनुरूप बनाई जाए। कृषि भूमि के संरक्षण के अलावा अन्य मिट्टी के संरक्षण के लिए विभिन्न तरह की जड़युक्त घास का रोपड़ कराया जाए, बहुवर्षीय पौधे लगवाए जाएं।

नदी जोड़ योजना

बाढ़ और सूखे से देश को बचाने के लिए केंद्र सरकार की ओर से नदी जोड़ो योजना तैयार की गई थी। इस योजना के जरिए जहां सूखा–प्रभावित इलाके को पर्याप्त सिंचाई के लिए पानी मिल सकेगा वहीं बाढ़–प्रभावित इलाके में पानी का प्रवाह रोका जा सकेगा। नदियों को जोड़ने का विचार सबसे पहले 1972 में सिंचाई इंजीनियर के. एल. राव ने दिया था। उन्होंने विशालकाय गंगा–कावेरी नहर के निर्माण की पेशकश रखी थी। इसके तहत पटना के निकट गंगा के बढ़े हुए पानी को एक दूसरी धारा में मोड़ना था। इस तरह साल में करीब 150 दिनों तक गंगा के बाढ़ के पानी को 2,640 किलोमीटर की यात्रा तय करके एक नहर के जरिए सुदूर दक्षिण की कावेरी नदी में पहुंचना था। इस प्रस्ताव ने जोर पकड़ा। राज्य को गंगा का अतिरिक्त पानी तमिलनाडु में पानी की कमी से जूझ रहे इलाकों तक पहुंचाने का विचार काफी आकर्षक लगा। बाद में दिनशॉ जे दस्तूर ने एक अलग सुझाव दिया। यह विचार था हिमालय के जलविभाजक क्षेत्र से छोटी–छोटी नहरों के जरिए पश्चिमी घाट तक पानी मुहैया कराना। सन् 1982 में राष्ट्रीय जल विकास एजेंसी का गठन किया गया। इसके बाद राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) सरकार ने नदियों को जोड़ने के लिए कार्यदल गठित करने की घोषणा की। इसके तहत 2 वर्ष के भीतर 30 नदियों को जोड़ने की योजना बनी। लेकिन अलग–अलग कारणों से यह परियोजना लंबित रही। नदी जोड़ योजना में बिहार से कोसी–घाघरा, गंडक–गंगा, घाघरा–यमुना, शारदा–यमुना और यमुना–राजस्थान संपर्क नहरों के माध्यम से पानी गुजरात तक पहुंचाए जाने की बात है। इसी प्रकार गंगा–दामोदर–सुवर्णरेखा और सुवर्णरेखा–महानदी को जोड़ते हुए यहां से पानी दक्षिण में कावेरी तक ले जाने की बात है।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं। कृषि एवं ग्रामीण विषय पर विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में नियमित लेखन में सक्रिय)
ई–मेल : chandrabhan0502@gmail.com

वर्षा जल संग्रह से हर खेत को पानी

–डॉ. जगदीप सक्सेना

भारत सरकार ने 'हर खेत को पानी' का एक बड़ा लक्ष्य निर्धारित किया है और इसके लिए सरकारी सहायता के रूप में कई महत्वपूर्ण कदम भी उठाए हैं। खेतों में नया तालाब बनाने, पुराने तालाब का पुनरुद्धार करने और तालाबों में पॉलीथीन का अस्तर लगाने जैसे अनेक कार्यों के लिए वित्तीय सहायता का प्रावधान किया गया है। भारत सरकार का राष्ट्रीय सतत् कृषि मिशन वर्षा जल संग्रह और प्रबंधन के लिए सीधे किसानों को सहायता देता है। इसके साथ महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) के अंतर्गत वर्षा जलसंग्रह की संरचनाओं के निर्माण की मंजूरी भी दी गई है। इस कारण देशभर में नए तालाब बनाने की मुहिम छिड़ गई है, जिसका सीधा लाभ किसानों को मिल रहा है। इसके अलावा, राज्य सरकारों द्वारा भी अनेक योजनाओं के माध्यम से किसानों को खेतों में तालाब बनवाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है।

खेतों की हरियाली और किसानों की खुशहाली के लिए सिंचाई का पानी एक बुनियादी जरूरत है। सिंचाई की दशा में सुधार किए बिना हम समृद्ध कृषि की कल्पना नहीं कर सकते। इसलिए स्वतंत्र भारत में नदियों पर बांध बनाने और गांव–गांव तक नहरों का जाल बिछाने की व्यापक और महत्वाकांक्षी योजना शुरू की गई। पंचवर्षीय योजनाओं में सिंचाई की सुविधाओं के प्रसार को प्राथमिकता दी गई। परिणामस्वरूप आज हमारे पास दुनिया की सबसे विशाल सिंचाई प्रणाली मौजूद है, जिससे देश का सकल सिंचित क्षेत्र बढ़कर 6.5 करोड़ हेक्टेयर तक पहुंच गया है। लेकिन दूसरी ओर सच्चाई यह भी है कि अभी भी देश के कुल कृषि क्षेत्र के लगभग 64 प्रतिशत भाग में सिंचाई की सुविधाओं का अभाव बना हुआ है। यानी 780 लाख हेक्टेयर क्षेत्र पर खेती करने वाले किसान आज भी फसलों की सिंचाई के लिए वर्षा पर निर्भर हैं। इसे वर्षा–आश्रित खेती कहा जाता है। कृषि उत्पादन के नजरिए से महत्वपूर्ण होने के बावजूद वर्षा–आश्रित क्षेत्र में खेती करना एक जोखिम भरी कवायद है, जिससे किसान यहां बड़े पैमाने पर खेती करने से कतराते हैं। वैश्विक–स्तर पर भारत में सबसे विशाल क्षेत्र पर वर्षा–आश्रित खेती की जाती है, परंतु प्रति हेक्टेयर उत्पादकता के मामले में हम मात्र एक टन के निचले स्तर पर सबसे पिछड़े हुए हैं। इसका मुख्य कारण है कि अधिकांश क्षेत्र में हम वर्षा जल जैसी अनमोल प्राकृतिक संपदा को यूं ही व्यर्थ बह जाने देते हैं। उसे भविष्य में उपयोग के लिए संजोकर रखने में हम अपेक्षाकृत कम कामयाब हैं। इसलिए सूखे मौसम में, जब फसल की सिंचाई की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, फसलें प्यासी रह जाती हैं। परिणामस्वरूप उत्पादकता में जबर्दस्त गिरावट आती है, जबकि सूखे या सूखे जैसी दशा में तो खड़ी फसल बर्बाद हो जाती है। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चला है कि अगर इन क्षेत्रों में प्रत्येक मौसम में किसी तरह 50 से 200 मि.मी. अतिरिक्त या पूरक सिंचाई की व्यवस्था कर ली जाए तो पैदावार पर सूखे मौसम के प्रभाव को न्यूनतम किया जा सकता है। सुधरी हुई कृषि विधियों के साथ केवल एक पूरक सिंचाई की व्यवस्था होने से इन क्षेत्रों के कृषि उत्पादन में 50 प्रतिशत तक की वृद्धि संभव है। मानसूनी वर्षा के दौरान वर्षा जल संग्रह का उचित उपाय करके पूरक सिंचाई के लाभ को हासिल किया जा सकता है। देखा गया है कि वर्षा जल संग्रह द्वारा पूरक सिंचाई करना आर्थिक रूप से व्यावहारिक और लाभकारी है तथा इसका दलहन और तिलहन की खेती में विशेष लाभ पहुंचता है।

नई योजनाएं, नए कदम

वर्षा–आश्रित खेती की इस अहम् जरूरत को देखते हुए भारत

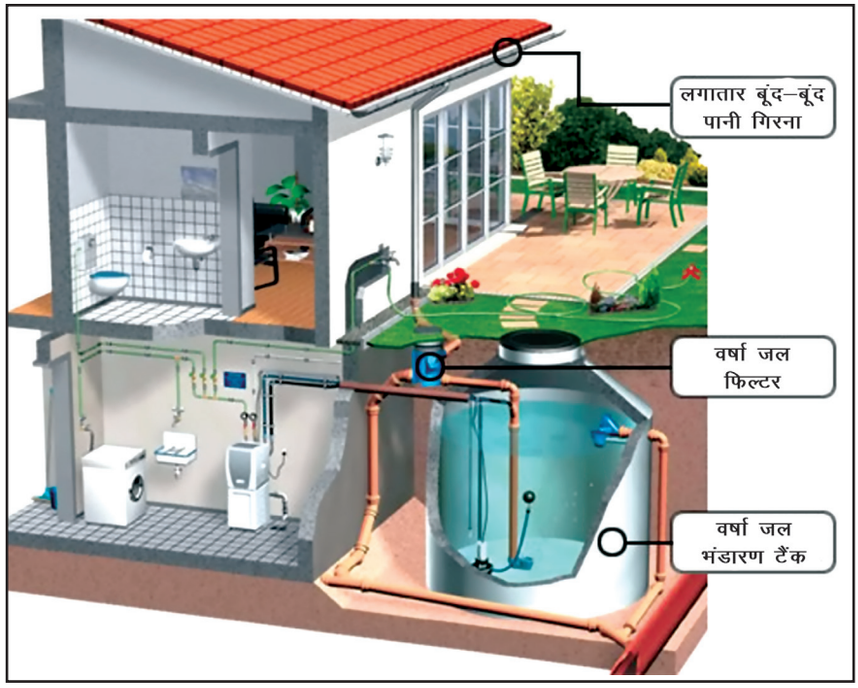

वर्षा जलसंग्रह के लिए वित्तीय सहायता

भारत सरकार के राष्ट्रीय सतत् कृषि मिशन के अंतर्गत व्यक्तिगत तथा सामुदायिक–स्तर पर वर्षाजल संग्रह को बढ़ावा देने के लिए वित्तीय सहायता का प्रावधान दिया गया है।

- यदि कोई किसान अपने स्तर पर, अपने खेत में, वर्षा जल संग्रह के लिए तालाब या कोई अन्य संरचना बनवाता है तो उसे मैदानी क्षेत्र में अधिकतम 75,000 रुपये और पर्वतीय क्षेत्र में अधिकतम 90,000 रुपये की वित्तीय सहायता प्राप्त हो सकती है, जिसमें तालाब में लाइनिंग या अस्तर लगाने का काम भी शामिल है। इसके लिए मैदानी क्षेत्र और पर्वतीय क्षेत्र में निर्माण की लागत क्रमशः 125 रुपये और 150 रुपये प्रति घनमीटर तय की गई है। अगर तालाब में अस्तर ना लगाया जाए तो निर्माण लागत में 30 प्रतिशत की कमी की जाती है। यदि तालाब या संरचना का आकार छोटा हो तो निर्माण लागत में आकार के अनुरूप कमी भी की जाती है।
- मनरेगा या किसी अन्य योजना के अंतर्गत बनाए गए तालाब/टैंक आदि में प्लास्टिक या आरसीसी की लाइनिंग लगाने के लिए लागत की 50 प्रतिशत तक वित्तीय सहायता दी जाती है। इसे प्रति तालाब/टैंक अधिकतम 25,000 रुपये तक सीमित किया गया है।
- सामुदायिक उपयोग के लिए सार्वजनिक भूमि पर सामुदायिक तालाब/टैंक/जलाशय/चेक डैम आदि के निर्माण के लिए निर्माण लागत की 100 प्रतिशत तक वित्तीय सहायता का प्रावधान किया गया है। इसके लिए प्रति तालाब/टैंक मैदानी क्षेत्र में अधिकतम सहायता राशि 20 लाख रुपये तय की गई है, जो पर्वतीय क्षेत्र के लिए 25 लाख रुपये है। इसका कमांड क्षेत्र 10 हेक्टेयर होना चाहिए। इससे छोटे और कम कमांड क्षेत्र के लिए सहायता राशि में आकार के अनुरूप कमी कर दी जाती है। यदि तालाब/टैंक में लाइनिंग ना लगाई जाए तो निर्माण लागत में 30 प्रतिशत की कटौती की जाती है।
- गांव के पुराने और छोटे तालाबों के पुनरुद्धार या मरम्मत के लिए पुनरुद्धार की लागत की 50 प्रतिशत राशि वित्तीय सहायता के रूप में दी जाती है। इसकी अधिकतम सीमा 15,000 रुपये प्रति तालाब है।
- वर्षा जल भंडारण की द्वितीयक संरचनाओं के निर्माण के लिए लागत की 50 प्रतिशत राशि वित्तीय सहायता के रूप में दी जाती है। निर्माण लागत 100 रुपये प्रति घनमीटर तय की जाती है। सहायता की अधिकतम धनराशि दो लाख रुपये तक सीमित है। इन संरचनाओं में पॉली–लाइनिंग की व्यवस्था होनी चाहिए। इसी प्रकार ईट, सीमेंट या कंक्रीट से सुरक्षात्मक बाड़ सहित द्वितीयक जल भंडारण संरचना बनाने के लिए भी लागत की 50 प्रतिशत धनराशि वित्तीय सहायता के रूप में दी जाती है। इसमें भी अधिकतम सहायता राशि दो लाख रुपये प्रति लाभार्थी है परंतु लागत 350 रुपये प्रति घनमीटर तय की गई है।

इसके अतिरिक्त समेकित बागवानी विकास मिशन के अंतर्गत भी व्यक्तिगत–स्तर पर और सामुदायिक–स्तर पर वर्षाजल संग्रह की संरचनाएं बनाने के लिए वित्तीय सहायता की व्यवस्था की गई है। इसमें सामुदायिक–स्तर पर 20 से 25 लाख रुपये और व्यक्तिगत–स्तर पर 1.50 से 1.80 लाख रुपये तक की सहायता राशि प्राप्त हो सकती है।

वित्तीय सहायता के लिए अपने जिले के कृषि अधिकारी से संपर्क करना चाहिए।

स्रोत : सरकारी योजनाओं व कार्यक्रमों की किसानों के लिए मार्गदर्शिका, 2017–18, कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार

सरकार ने 'हर खेत को पानी' का एक बड़ा लक्ष्य निर्धारित किया है और इसके लिए सरकारी सहायता के रूप में कई महत्वपूर्ण कदम भी उठाए हैं। खेतों में नया तालाब बनाने, पुराने तालाब का पुनरुद्धार करने और तालाबों में पॉलीथीन का अस्तर लगाने जैसे अनेक कार्यों के लिए वित्तीय सहायता का प्रावधान किया गया है। भारत सरकार का राष्ट्रीय सतत् कृषि मिशन वर्षा जल संग्रह और प्रबंधन के लिए सीधे किसानों को सहायता देता है (विवरण के लिए बॉक्स देखें)। इसके साथ महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) के अंतर्गत वर्षा जलसंग्रह की संरचनाओं के निर्माण की मंजूरी भी दी गई है। इस कारण देशभर में नए तालाब बनाने की मुहिम छिड़ गई है, जिसका सीधा लाभ किसानों को मिल रहा है। इसके अलावा, राज्य सरकारों द्वारा भी अनेक योजनाओं के माध्यम से किसानों को खेतों में तालाब बनवाने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। मनरेगा के अंतर्गत वर्ष 2016–17 के दौरान 8,82,325 खेत–तालाब बनाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में दस राज्य अग्रणी रहे– आंध्र प्रदेश, झारखंड, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, तेलंगाना और ओडिशा। गौरतलब है कि मनरेगा के लिए निर्धारित कुल लक्ष्य में इन राज्यों की हिस्सेदारी लगभग 90 प्रतिशत है।

वर्षा–आश्रित कृषि और वर्षा जलसंग्रह की सभी योजनाएं मुख्य रूप से हमारे जल संसाधनों पर निर्भर हैं। भारत में औसत वार्षिक वर्षा लगभग 1,170 मिमी. आंकी गई है, जिससे हमें 4,000 बिलियन घनमीटर (बीसीएम) पानी प्राप्त होता है। आंकड़ों के नजरिए से देखें तो पानी की यह मात्रा कम नहीं है, परंतु विभिन्न क्षेत्रों की भौगोलिक दशाओं और जलवायु विविधताओं के कारण

वर्षा जल की उपलब्धता में भारी अंतर आ जाता है, जिससे कुछ क्षेत्रों में समस्या बेहद गंभीर हो जाती है। उत्तर–पूर्व भारत में चेरापूंजी के पास मौसिनरम में सबसे ज्यादा वर्षा रिकॉर्ड की जाती है (11,690) मिमी., जबकि राजस्थान के जैसलमेर में सबसे कम, केवल 150 मिमी. वर्षा होती है। दूसरी समस्या यह है कि कुल वर्षा का लगभग 75 प्रतिशत भाग केवल दक्षिण–पश्चिम मानसून (जून–सितंबर) के दौरान प्राप्त होता है। इसलिए पानी की इस अथाह मात्रा को सहेज कर रखना आवश्यक है। लेकिन अभी कुल वर्षा जल में से लगभग 1,869 बीसीएम पानी बहकर नदियों में पहुंच जाता है और उपयोग योग्य सतही जल की मात्रा सिमट कर मात्र 590 बीसीएम रह जाती है। इसमें अगर भूजल स्रोत भी जोड़ लिया जाए तो कुल मात्रा 1,123 बीसीएम हो जाती है। खेती में भूजल के उपयोग की अपनी अलग चुनौतियां और समस्याएं हैं, जिनके समाधान के लिए अलग से प्रयास किए जा रहे हैं।

सीमित जल संसाधनों के बावजूद देश के खेतों में जल उपयोग की कुशलता भी कम है, क्योंकि किसान भाई जल प्रबंध और सिंचाई की आधुनिक व कुशल तकनीकों का अपेक्षाकृत कम उपयोग कर रहे हैं। नहर के पानी से सिंचाई जल के उपयोग की कुशलता 30–40 प्रतिशत आंकी गई है, जबकि भूजल के मामले में यह बढ़कर 55–60 प्रतिशत तक पहुंच जाती है। भारत सरकार के जल संसाधन मंत्रालय ने इसे सन् 2050 तक बढ़ाकर क्रमशः 60 प्रतिशत और 75 प्रतिशत करने का लक्ष्य तय किया है। इसके साथ ही वर्षा–आश्रित कृषि क्षेत्रों में जल उत्पादकता बढ़ाने के लिए विशेष कार्यक्रम और नीतियां भी बनाई गई हैं। भारत सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय वर्षा–आश्रित क्षेत्र प्राधिकरण इसके लिए विशेष प्रयास कर रहा है और इसके कार्यक्रमों को सराहनीय उपलब्धियां भी हासिल हुई हैं। इसके लिए इन क्षेत्रों को मौसमी वर्षा के आधार पर चार वर्गों में बांटा गया है और प्रत्येक भाग के लिए अलग तकनीकी कार्यक्रम तैयार किए गए हैं। ये क्षेत्र हैं – 500 मिमी. से कम मौसमी वर्षा वाले क्षेत्र; 500 से 700 मिमी. वर्षा वाले क्षेत्र; 700 से 1,000 मिमी. वर्षा वाले क्षेत्र और 1,000 मिमी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्र। पहले दो क्षेत्रों में वर्षा जलसंग्रह के लिए विशेष दशाओं और तकनीकों की आवश्यकता होती है, जबकि बाद वाले दोनों क्षेत्रों में सामान्य वर्षा जलसंग्रह उपाय कारगर साबित हुए हैं। वर्षाआश्रित क्षेत्रों के समग्र और सतत् विकास के लिए सन् 1995 से भारत सरकार द्वारा जलसंभर (वाटरशेड) विकास एवं प्रबंध कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं, जिनमें वर्षा जलसंग्रह के उपायों की केंद्रीय भूमिका होती है।

आइए, चलें परंपरा की ओर

भारत में सामुदायिक–स्तर पर वर्षा जलसंग्रह की एक प्राचीन और वैज्ञानिक परंपरा रही है, जिसके अंतर्गत देश भर में छोटे–बड़े तालाब, जलाशय, बावड़ी, जोहड़ आदि बनाए जाते थे और समुदाय द्वारा इनकी देखरेख भी की जाती थी। देश के विभिन्न भागों में आज भी ऐसी कुछ प्राचीन संरचनाएं दिख जाती हैं। कालांतर में बिजली की उपलब्धता और पानी पंप करने की तकनीक ने नलकूप या ट्यूबवैल प्रणाली को बड़ी तेजी से लोकप्रिय बना दिया। सामुदायिक संरचनाओं की जगह व्यक्तिगत–स्तर के निवेश ने ले ली। भूजल का अंधाधुंध दोहन शुरू हो गया। सरकार ने सिंचाई सुविधाओं के प्रसार के लिए देशभर में नहरों का जाल बिछाने का काम शुरू किया, जो आज भी जारी है। इससे किसानों के मन में यह बात बैठ गई कि फसलों की सिंचाई के दो ही साधन हैं– भूजल और नहरें। परंतु आज के परिवेश में, जब सूखे की समस्या गहराती जा रही है और खेती को जल संकट का सामना करना पड़ रहा है, तालाबों की परंपरा को एक बार फिर से जीवित करने का प्रयास किया जा रहा है। और जलसंग्रह की ऐसी संरचनाएं भी विकसित की जा रही हैं, जिससे भूजल का स्तर ऊपर उठ सके। दूसरा बदलाव यह भी आया कि अब सामुदायिक–स्तर के साथ व्यक्तिगत–स्तर पर भी तालाब बनवाने के काम को प्रोत्साहित किया गया। किसानों ने अपने ही खेत के एक छोटे–से भूखंड पर तालाब बनाने का काम शुरू कर दिया है, जिन्हें खेत तालाब कहा जाता है। वैज्ञानिक विधियों और नवोन्मेष के जरिए कुछ ऐसी संरचनाएं भी विकसित की गई हैं, जो अधिक कुशल और प्रभावी हैं।

इस संदर्भ में सबसे पहले बात करते हैं खेत तालाब की। किसानों के खेतों में वर्षा जलसंग्रह तालाब बनाने के लिए वैज्ञानिकों ने एक मार्गदर्शिका भी विकसित की है। खेत तालाब हमेशा संपूर्ण कृषि क्षेत्र के सबसे निचले हिस्से में बनाना चाहिए, जिससे वर्षा जल वहां आसानी से एकत्र हो सके। तालाब का आकार खेत के क्षेत्र के अनुसार बदल सकता है, परंतु 10 मीटर x 10 मीटर x 3 मीटर का तालाब आदर्श माना गया है। पांच मीटर से अधिक गहरा तालाब खोदने पर एक तो खुदाई का खर्च बढ़ जाता है, और दूसरे पानी के ज्यादा दबाव के कारण रिसाव की दर भी बढ़ जाती है। तालाब की खुदाई से निकली मिट्टी से तालाब के चारों ओर एक ऊंची मेड़ बनाई जा सकती है और इस पर पेड़–पौधे लगाए जाने चाहिए। इससे मेंड़ में टिकाऊपन आता है और पानी के वाष्पीकरण की दर में कमी आती है। तालाब में पानी के प्रवेश और निकासी का रास्ता अवश्य बनाना चाहिए। पानी के साथ बहकर आने वाली गाद को अलग करने के लिए प्रवेश के रास्ते में एक छोटा गड्ढा (सिल्ट पिट) अवश्य बनाना चाहिए ताकि गाद इसमें इकट्ठी होती रहे। इस तरह तालाब की बार–बार सफाई करने की जरूरत नहीं पड़ती। तालाब से पानी के भूमिगत रिसाव पर रोक लगाने के लिए तालाब में अस्तर या लाइनिंग लगाना जरूरी है। इसके लिए आजकल नई उपयोगी सामग्रियां उपलब्ध हैं, जैसे क्ले, बेन्टोलाइट, पत्थर या ईंट, सीमेंट, रबर, प्लास्टिक आदि। तालाब का आकार तय करते समय तालाब के जलग्रहण क्षेत्र के विस्तार, वर्षा की गहनता और अवधि, मिट्टी के

प्रकार आदि को भी ध्यान में रखना चाहिए। वैज्ञानिकों की सलाह है कि यदि वर्ष की लगभग 80 प्रतिशत अवधि में तालाब में पानी भरा रहता है तो उसमें मछली पालन करना चाहिए। यदि मिट्टी अधिक गहरी ना हो या खुदाई का खर्च बहुत ज्यादा आ रहा हो तो सतह पर दीवार खड़ी करके सतही तालाब भी बनाया जा सकता है। लेकिन हर खेत में तालाब होना जरूर चाहिए, क्योंकि यह सूखे या सूखे जैसी दशाओं में किसान की आजीविका सुरक्षित रखता है।

उत्तर–पूर्व भारत की भौगोलिक दशाओं में सामान्य खेत–तालाब बनाना संभव नहीं है, क्योंकि यहा आमतौर पर सीढ़ीदार खेतों में फसलें उगाई जाती हैं, जिसे 'टेरेस फार्मिंग' कहते हैं। इन स्थानों पर अपेक्षाकृत छोटी संरचनाओं का निर्माण किया जाता है, जो 'जल कुंड' के नाम से लोकप्रिय हैं। वर्ष के अधिकांश समय वर्षा से ढके रहने वाले लद्दाख क्षेत्र में ग्लेशियर से पिघलने वाले पानी को इकट्ठा करके खेती में इस्तेमाल करने की व्यवस्था की जाती है। इसके लिए निचली भूमि में एक छोटी जलसंग्रह संरचना बनाई जाती है, जिसे 'जिंग' कहा जाता है। सुबह के समय ग्लेशियर से पानी की बूंदें टपकना शुरू हो जाती हैं, जो दोपहर तक एक छोटी जलधारा में बदल जाती हैं। इस तरह दिन भर इकट्ठा हुआ यह पानी अगले दिन फसलों की सिंचाई के काम में लाया जाता है। किसानों के बीच इस पानी के समान रूप से वितरण की व्यवस्था भी की गई है। इसी तरह हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय और बर्फीले क्षेत्रों में ग्लेशियर, नदियों और झरनों से पानी को खेतों तक पहुंचाने के लिए 'कुल' या 'कुह्ल' नामक पतली धाराएं बनाए जाने की परंपरा है। इन्हें आमतौर पर लाभार्थियों के चंदे से बनाया जाता है या पहले शासक बनवाते थे। अनुमान है कि अकेली कांगड़ा घाटी में 700 से ज्यादा प्रमुख कुह्ल और 2,500 से अधिक छोटी कुह्ल लगभग 30,000 हेक्टेयर में फसलों को सींच रहीं हैं। कुल की देखरेख के लिए एक व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है, जिसे कोहली कहते हैं। लद्दाख में वर्षा जलसंग्रह के लिए सीढ़ीदार खेतों पर छोटी संरचनाएं बनाई जाती हैं, जिन्हें यहां के किसान 'ज़ेबो' कहते हैं। आमतौर पर इन्हें धान के खेतों में बनाया जाता है। वनों से लदी हरी–भरी पहाड़ियों से वर्षा जल छोटी–छोटी धाराओं के रूप में बहता हुआ 'जेबो' तक पहुंचता है। जल धाराओं की दिशा का कुछ इस तरह प्रबंधन किया जाता है कि पानी पशुओं के बाड़ों से होकर गुजरता है। इस तरह इसमें पशुओं का मल–मूत्र भी मिल जाता है, जिससे यह मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने में सहायक होता है। ज़ेबो में इकट्ठे पानी में मछलियां भी पाली जाती हैं।

खेत का पानी खेत में

हल्की ढलान वाले क्षेत्रों में बरसाती पानी को खेत में ही रोकने के लिए कंटूर बंड या बांध बनाए जाते हैं। इसके लिए एक जैसी ऊंचाई पर मिट्टी से बंध की रचना की जाती है, जो दूर से एक लंबी मेंड़ के रूप में दिखाई देती है। इसे थोड़ी–थोड़ी दूर पर बनाया जाता है, जिससे पानी के बहाव को तेजी ना मिल सके।

निपनिया गांव में तालाबों ने बदल दी खेती, बदल दी जिंदगी

मध्य प्रदेश के देवास जिले से 30 किलोमीटर उत्तर–पूर्व में एक छोटा–सा गांव है निपनिया। यहां आजीविका का मुख्य जरिया खेती है। लगभग 80 घरों के इस गांव में आज हरियाली है, खुशहाली है। लेकिन यही कोई एक दशक पहले तक देश के अन्य तमाम गांवों की तरह यहां भी किसान सिंचाई के पानी के लिए कठिन संघर्ष कर रहे थे। सन् 2006 में देवास के जिला कलेक्टर ने इस गांव को वर्षा जल संग्रह द्वारा सिंचाई के मामले में आत्मनिर्भर बनाने की सोची, ठानी और प्रयास भी किए। कृषि विभाग के अधिकारियों और संबंधित एनजीओ के कार्यकर्ताओं के साथ मिलकर किसानों को उनके अपने खेत में छोटा तालाब बनाने के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया गया। इस तरह लगभग 40 किसान अपने खेत में तालाब बनाने के लिए तैयार हो गए। ये वो किसान थे, जो तालाब के निर्माण की लागत खुद वहन कर सकते थे। खेत में उपयुक्त जगह छांटकर, खेतों के आकार के अनुसार आधे एकड़ से लेकर चार एकड़ क्षेत्र तक में तालाब बनाए गए। आमतौर पर इनकी गहराई कम से कम 10–12 फुट रखी गई। बरसात में तालाबों में पानी इकट्ठा हुआ और किसानों ने पहले ही साल से इसका फायदा उठाना शुरू कर दिया। पहले ये किसान साल में केवल एक फसल ले पाते थे, क्योंकि दूसरी फसल की सिंचाई के लिए पानी नहीं था। लेकिन तालाब में लबालब पानी देखकर इन्होंने सर्दियों में दूसरी फसल भी ले ली, जिससे आमदनी में खासा इज़ाफा हुआ। यह देखकर खेतों में तालाब बनाने वाले किसानों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी। अब यहां किसान मानसून में सोयाबीन उगाने लगे और सर्दियों में गेहूं, चना या प्याज। देखा गया कि यदि मानसूनी वर्षा औसत या बेहतर होती है तो तालाबों में संचित पानी अगली बरसात तक चल जाता है। पहले साल की कामयाबी से उत्साहित होकर कृषि विभाग ने किसानों को तालाब बनाने का प्रशिक्षण देना भी शुरू कर दिया। तकनीकी सहायता भी दी, लेकिन तालाब बनाने का खर्च स्वयं किसान वहन कर रहे थे। इस मुहिम को 'भगीरथ कृषि अभियान' का नाम दिया गया और तालाब बनाने वाले किसान को 'भागीरथ कृषक' कहा गया। साथ ही तालाब को 'रेवा सागर' के नाम से पुकारा गया। दो साल बाद मध्य प्रदेश सरकार ने तालाब बनाने के लिए सब्सिडी (वित्तीय सहायता) देने की शुरूआत की, जिससे इस काम में पहले से ज्यादा तेजी आ गई। सब्सिडी की सहायता से बने तालाबों को 'बलराम तालाब' का सुंदर नाम दिया गया। परिणामस्वरूप 2006–07 से लेकर 2015–16 तक यहां लगभग 5070 तालाब बनाए गए।

इन खेत–तालाबों ने किसानों की आर्थिक दशा में सार्थक सुधार किया है और जिले के कुल सिंचित क्षेत्र में बढ़ोतरी हुई है। जिले की फसल गहनता सन् 2006 के 118 प्रतिशत से बढ़कर 180 प्रतिशत हो गई है। बदलाव की इस सफलता गाथा को देखने के लिए पड़ोसी जिलों तथा राज्यों से किसान आते हैं और बहुत कुछ सीख कर जाते हैं। देश में खेत–तालाब बनाने की लहर तेज, बहुत तेज होती जा रही है।

नई सोच ने बदली तस्वीर

सरकारी योजनाओं, वैज्ञानिकों के प्रयासों और किसानों की मेहनत से अब गांव–गांव में खेतों में छोटे तालाब दिखाई देने लगे हैं। लेकिन कुछ क्षेत्रों में एक समस्या सामने आती है। मानसूनी वर्षा के दौरान सामान्य से अधिक बरसात होने पर पानी इन तालाबों से बाहर निकलकर बहने लगता है और व्यर्थ चला जाता है। उज्जैन जिले के किठोहा गांव के किसान श्री गोपाल पाटीदार ने इस समस्या से निपटने के लिए अपने खेत के सबसे ऊंचे स्थान पर सीमेंट की एक टंकी बनवाई। इसमें लगभग 1150 घन मीटर पानी समा सकता है। टंकी से पानी की निकासी के लिए सबसे निचले हिस्से से पाइप लगाया गया है, जिससे 10 हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई की जा सकती है। तालाब से टंकी तक पानी पहुंचाने के लिए पम्प लगाया गया है, जिसे तभी चलाते हैं, जब तालाब में पानी पूरा भर जाता है। इस तरह खरीफ और रबी, दोनों ही फसलों की सिंचाई संभव हो गई है। टंकी से मिलने वाले फायदों को देखते हुए क्षेत्र के कई किसानों ने यह व्यवस्था अपना ली है। कुछ किसानों ने तो खेत के ऊंचे स्थानों पर टंकी बनवाकर उसमें बरसाती नाले का पानी इकट्ठा करना शुरू कर दिया है। इन टंकियों में लगभग 450 घनमीटर पानी संग्रहित हो जाता है। सीमेंट की टंकियों ने इन गांवों में खेती की तस्वीर और किसानों की तकदीर बदल दी है।

इनके बीच की दूरी ढलान की तीव्रता और मिट्टी के प्रकार पर निर्भर करती है। यह स्थानीय–स्तर पर वर्षा जल संचय की एक कुशल प्रणाली है। पहाड़ी क्षेत्रों में अक्सर बरसाती पानी एक नाली या 'गली' के रूप में बहता दिखाई देता है। इसे रोकने के लिए स्थानीय पत्थर, मिट्टी या झाड़ियों से एक प्रभावी रोक बनाई जाती है। इसे 'गलीप्लग' कहते हैं। पानी के साथ मिट्टी के बहाव पर भी रोक लगती है। इसी से मिलती–जुलती संरचना 'चेक डैम' की होती है। इन्हें कम ढलान वाली छोटी जलधाराओं पर बनाया जाता है और बंध की ऊंचाई आमतौर पर दो मीटर से कम रखी जाती है, ताकि ज्यादा पानी बंध के ऊपर से निकल कर आगे पहुंच जाए। मिट्टी से भरी बोरियों को एक के ऊपर एक रखकर भसी चेक डैम बनाए जा सकते हैं। एक के बाद एक लगातार कई चेक डैम बनाकर पानी को रोका जा सकता है और इससे भूजल का स्तर ऊपर करने में भी सहायता मिलती है। इसी तरह की एक उन्नत संरचना को 'गेवियन स्ट्रक्चर' कहा जाता है। इसमें लोहे के तार की जाली में ईंट–पत्थर भरकर बंध बनाया जाता है। बंध की ऊंचाई लगभग आधे मीटर से कम रखी जाती है और इसे आमतौर पर 10 मीटर से कम चौड़ी जलधाराओं पर बनाया जाता है।

वर्षा जलसंग्रह की कुछ संरचनाओं को भूजल का स्तर ऊंचा उठाने के उद्देश्य से बनाया जाता है। इन्हें 'रिचार्ज' संरचनाएं भी कहते हैं। ऐसी सबसे लोकप्रिय संरचना 'परकोलेकान टैंक' के नाम से जानी जाती है। इन्हें मुख्य रूप से मिट्टी के बंध बनाकर तैयार किया जाता है और जगह ऐसी चुनी जाती है जहां से पानी का रिसाव बेहतर हो। बांध की ऊंचाई लगभग 4.5 मीटर रखी जाती है। 'परकोलेशन टैंक' बनाते समय यह ध्यान भी रखा जाता है कि इसके आसपास के क्षेत्र में कुएं हों और खेती भी की जाती हो ताकि भूजल के ऊंचे स्तर का सदुपयोग किया जा सके। वैज्ञानिकों ने सामुदायिक तालाब में रिचार्ज शैफ्ट लगाने की तकनीक विकसित की है, जिससे वर्षा जल के उपयोग के साथ भूजल का स्तर भी ऊपर उठता रहता है। इसका व्यास 0.5 से 3.0 मीटर तक रखा जाता है और तालाब में पानी के स्तर के अनुसार 10 से 15 मीटर तक गहराई रखी जाती है। शैफ्ट का ऊपरी हिस्सा तालाब की लगभग बीच की ऊंचाई पर रहता है। यानी जब तालाब में पानी का स्तर आधे से ऊपर उठ जाता है तो शैफ्ट द्वारा पानी भूमि में नीचे जाने लगता है। शैफ्ट में पत्थरों के छोटे टुकड़े भरे जाते हैं ताकि पानी थोड़ा छनकर नीचे जाए। इस तकनीक को बड़े पैमाने पर प्रोत्साहित किया जा रहा है और इसके अच्छे नतीजे भी सामने आ रहे हैं। खेतों से बहकर आने वाले पानी को किसी एक जगह इकट्ठा करके कुएं में प्रवाहित करने से भी भूजल का रिचार्ज किया जा सकता है। इसके लिए भी उपयुक्त तकनीकी विकसित की गई है। पानी को कुएं में भेजने से पहले एक विशेष रूप से बनाए गए 'पिट' से गुजारा जाता है, जिसमें मोटी रेत और कंकड़–पत्थर के जरिए पानी को छानने की व्यवस्था रहती है। कुएं के पानी को समय–समय पर क्लोरीन द्वारा साफ भी करना चाहिए।

कुशल उपयोग भी जरूरी

वर्षा जलसंग्रह की व्यवस्थाओं से पूरा लाभ उठाने के लिए आवश्यक है कि पानी की एक–एक बूंद का समुचित और कुशल उपयोग किया जाए। इसके लिए भारत सरकार ने 'पर ड्रॉप, मोर क्रॉप' (प्रति बूंद अधिक पैदावार) का व्यापक अभियान चलाया है, जिसमें सिंचाई की सूक्ष्म विधियों (ड्रिप और स्प्रिंकलर) को वित्तीय सहायता देकर प्रोत्साहित किया जा रहा है। राष्ट्रीय जल नीति में भी वर्षा जलसंग्रह को प्राथमिकता के साथ अपनाने की सलाह दी गई है। ग्रामीण विकास के अनेक कार्यक्रमों में वर्षा जलसंग्रह को शामिल किया जा रहा है, ताकि खेती–किसानी का समग्र विकास हो सके। वर्षा जलसंग्रह के उपायों को लोकप्रिय और प्रभावी बनाने के लिए यह भी आवश्यक है कि किसानों के बीच व्यक्तिगत स्तर पर जागरूकता उत्पन्न की जाए और सामुदायिक–स्तर पर भागीदारी को प्रोत्साहित किया जाए। सामुदायिक भागीदारी द्वारा जल प्रबंध के लिए अनेक गांवों में 'पानी समिति' जैसी व्यवस्थाएं कायम की गईं और इनका काफी बेहतर प्रभाव देखने को मिला। पानी के संरक्षण और प्रबंध से व्यक्तिगत तथा सामुदायिक जुड़ाव होना आवश्यक है। हमें यह समझना होगा कि मिट्टी और पानी, दोनों ही साझी विरासत हैं, जिनकी साझी हिफाजत करनी होगी। पानी की एक–एक बूंद से संग्रह, संचय, संरक्षण और प्रबंध में ही खेती–किसानी के सतत् की कुंजी छिपी है।

(लेखक भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद में पूर्व संपादक (हिंदी) रह चुके हैं।)

ईमेल : **jgdsaxena@gmail.com**

भारत में सिंचाई परियोजनाओं का आकलन

–गजेन्द्र सिंह 'मधुसूदन'

देश में सिंचाई परियोजनाओं और नहरों से कुल सिंचित क्षेत्र का 40 प्रतिशत सींचा जाता है। शेष 60 प्रतिशत क्षेत्र अन्य साधनों से सींचा जाता है। यानी देश में अभी तक उपलब्ध परियोजनागत संभाव्य सिंचाई क्षमता का उपयोग नहीं किया जा सका है और देश में कृषि मांग के अनुरूप सिंचाई सुविधा उपलब्ध नहीं हैं। इसलिए इस दिशा में बड़े निवेश और संभाव्य सिंचाई क्षमता के अधिकतम उपयोग की आवश्यकता है।

कृषि आज भी हमारी अधिकांश आबादी की आय और आजीविका का प्रमुख स्रोत है और कृषि प्रणाली के उन्नयन से देश की अधिकांश आबादी का आर्थिक उत्थान संभव है। कृषि उत्थान की पहली आवश्यकता व आधारभूत आगत सिंचाई है, जिसकी पर्याप्त सुलभता कृषि में इंद्रधनुषी क्रांति ला सकती है और पर्याप्त सिंचाई के लिए जल का विशाल भंडार होना आवश्यक है क्योंकि दुनिया की कुल जल खपत का अकेले 69 प्रतिशत कृषि में, शेष 23 प्रतिशत औद्योगिक और 8 प्रतिशत घरेलू कार्यों में प्रयुक्त होता है। इससे स्पष्ट है कि किसी देश में कृषि के सर्वकालिक संवर्धन के लिए उसके पास जल का विशाल भंडार होना आवश्यक है और इस विशाल जल भंडारण के लिए देश में नहरों व बांधों का परियोजनागत विकास अपरिहार्य हो जाता है।

बांध जल के प्रवाह को अवरोधित करने की व्यवस्था है जिन्हें बड़े जलाशय में तब्दील करके इनसे सिंचाई का प्रबंधन, विद्युत उत्पादन, जलीय कृषि, अंतःस्थलीय नौ परिवहन, मत्स्यपालन जैसी आर्थिक गतिविधियों का संचालन किया जाता है। देश के आर्थिक विकास में इनकी महती भूमिका और सार्थकता की वजह से ही हमारे प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने बहूद्देशीय नदी परियोजनाओं को 'आधुनिक भारत के मंदिर' की संज्ञा से अभिहित किया। नदियों की घाटियों पर बड़े–बड़े बांध बनाकर बहुआयामी सामाजिक–आर्थिक सुविधाएं प्राप्त करने की आयोजना को बहूद्देशीय परियोजना कहते हैं। इनका प्राथमिक उद्देश्य नदी घाटी के अधीन जल और थल का मानव हित में अधिकतम संभव उपयोग करना होता है। इस समय देश में कुल 5176 बांध, 261 बैराज और निर्माणाधीन वृहद् बांधों की संख्या 314 है। बांधों की संख्या के हिसाब से महाराष्ट्र 1694 बांधों के साथ पहले स्थान पर और 898 बांधों के साथ मध्य प्रदेश दूसरे स्थान पर है जिनके पास देश के कुल वृहद् बांधों का क्रमशः 34.86 और 18.49 प्रतिशत हिस्सा है और इनमें निर्माणाधीन बांधों की संख्या क्रमशः 152 और 8 है। निर्मित, निर्माणाधीन और प्रस्तावित नदी घाटी परियोजनाओं में गंगा बेसिन की उपयोगी संचयन क्षमता सर्वाधिक है, जो इसकी सहायक नदियों पर निर्मित बांधों से प्राप्त होती है, इसके बाद संचयन क्षमता में कृष्णा नदी दूसरे स्थान पर है। राज्यों के हिसाब से देश में जनित कुल संचयन क्षमता का करीब 16 प्रतिशत मध्य प्रदेश में, 14 प्रतिशत आंध्र प्रदेश में और 12.7 प्रतिशत महाराष्ट्र में है। भारत में निर्मित बांधों में से 92 प्रतिशत का उपयोग सिंचाई में, 2.3 प्रतिशत का विद्युत में और एक प्रतिशत का उपयोग शहरी मांग व घरेलू जलापूर्ति के लिए किया जाता है।

सरदार सरोवर परियोजना : 17 सितंबर, 2017 को प्रधानमंत्री द्वारा राष्ट्र को समर्पित यह बहूद्देशीय सिंचाई और

हाईड्रोलिक परियोजनाओं की श्रृंखला में सबसे लम्बी हाईड्रोलिक अभियांत्रिकी परियोजना है और इस परियोजना के संपूर्ण नियोजन में 21 सिंचाई, 5 विद्युत और 4 बहूद्देशीय सहित कुल 30 परियोजनाएं शामिल हैं। सरदार सरोवर बांध अमेरिका के ग्रांड कोली डैम के बाद विश्व का दूसरा सबसे बड़ा गुरुत्वीय बांध है जिसमें 30 द्वार हैं और प्रत्येक द्वार का वजन 450 टन है। पानी बहाव की क्षमता के लिहाज से यह विश्व में तीसरा सबसे बड़ा स्पिलवे डिसचार्जिंग क्षमता (एसडीसी) से युक्त बांध है, इसकी एसडीसी 85 हजार क्यूमेक्स है, इससे अधिक एसडीसी केवल चीन के गजेनबा बांध की 1.13 लाख क्यूमेक्स और ब्राजील के टुकुरी बांध की एक लाख क्यूमेक्स है। भारत के कंक्रीट बांधों में यह हिमाचल प्रदेश के 226 मीटर ऊंचे भाखड़ा बांध और उत्तराखंड के 204 मीटर ऊंचे लखवार बांध के बाद देश का तीसरा सबसे ऊंचा कंक्रीट बांध है, इसकी ऊंचाई 163 मीटर है। गुजरात के नर्मदा जिले के केवाडिया में नर्मदा नदी पर निर्मित इस बहूद्देशीय बांध के फायदों में 4 राज्य–गुजरात, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और राजस्थान शामिल हैं जिसमें सर्वाधिक फायदा गुजरात को होना हैं। इससे गुजरात के कच्छ और सौराष्ट्र के अधिकांश सूखाग्रस्त क्षेत्रों के 15 जिलों के 135 शहर और 3137 गांवों को जलापूर्ति और 18.45 लाख हेक्टेयर भूमि की सिंचाई की जा सकेगी जबकि इस परियोजना के संपूर्ण कवरेज पर सिंचाई से 10 लाख किसान और गांवों व कस्बों में पेयजलापूर्ति से करीब 4 करोड़ लोगो के लाभान्वित होने की संभावना है। 1210 मीटर लम्बे इस बांध का पूर्ण जलाशय–स्तर 138.68 मीटर तय किया गया है जिस पर पानी का अधिकतम–स्तर 140.21 मीटर और इसकी जल संचयन क्षमता 47.3 लाख क्यूसेक है। जबकि इस परियोजना से जुडी 40 हजार क्यूसेक जल क्षमता की 532 किमी. लम्बी मुख्य नर्मदा नहर विश्व की सबसे लंबी सिंचाई नहरों में से एक है। भारत की सबसे बड़ी इस जल संसाधन परियोजना से उत्पादित बिजली का 57 प्रतिशत हिस्सा मध्य प्रदेश को और इसके बाद क्रमशः महाराष्ट्र और गुजरात को मिलेगा। राजस्थान को इस परियोजना से केवल पानी प्राप्त होगा।

गुजरात की जीवन–रेखा नर्मदा नदी मध्य प्रदेश के अनूपपुर जिले के अमरकंटक शिखर से उद्गमित होकर 230 से 210 उत्तरी अक्षांश के मध्य बहते हुए गुजरात के भरुच जिले में खम्भात की खाड़ी पर एश्चुअरी बनाती है। 1310 किमी. लंबी इस नदी का बेसिन 93180 वर्ग किमी. है और इसके बाएं तट पर बरनार, बंजर, शेर, शक्कर, दूधी, तवा, गंजाल, कुंदी, देव, गोई जबकि दाएं तट पर हिरन, तिदोली, बरना, चंद्रकेशर, कानर, मान, ऊंटी, हथनी नदियां मिलती हैं जो पश्चिमी भारत पर इसकी सार्थकता को सिद्ध करता है। यह भारत की पांचवीं बड़ी नदी और भारत की महान नदी घाटी परियोजनाओं में से एक है जिसमें सरदार सरोवर के अलावा अवंती सागर, इंदिरा सागर, महेश्वर, ओंकारेश्वर सहित 29 बड़ी, 135 मध्यम और 3000 छोटे बांधों का विकास किया गया है।

भाखड़ा नांगल परियोजना : हिमाचल प्रदेश के बिलासपुर जिले के भाखड़ा गांव के समीप सतलुज नदी पर निर्मित यह दुनिया में अपनी किस्म के सीधे ऋतु गुरुत्व बांधों में सबसे बड़ा और देश का कंक्रीट निर्मित सबसे ऊंचा अथवा टिहरी बांध के बाद भारत का सबसे ऊंचा बांध है जिसकी ऊंचाई 226 मीटर और लंबाई 520 मीटर है। भूकंपीय क्षेत्र में स्थित विश्व के सबसे ऊंचे इस गुरुत्वीय बांध से 12 किमी. नीचे पंजाब के रूपनगर जिले के नांगल में सतलुज पर एक अवरोध बांध बनाया गया है जो भाखड़ा के लिए सहायक का कार्य करता है। भाखड़ा पर 10वें सिख गुरु के नाम पर निर्मित गोविंद सागर जलाशय की जलधारण क्षमता 9.34 बीसीएम है जो नागार्जुन सागर के बाद तीसरा सर्वाधिक जलधारण क्षमता वाला जलाशय है। पंजाब, हरियाणा और राजस्थान की इस संयुक्त परियोजना के लाभ दिल्ली और हिमाचल प्रदेश को भी प्राप्त होते हैं। इसमें राजस्थान की हिस्सेदारी 15.2 प्रतिशत है। देश की इस सबसे बड़ी बहु–उद्देशीय परियोजना ने पंजाब और हरियाणा में हरितक्रांति को गति प्रदान कर इनको देश के सर्वाधिक खाद्यान्न उत्पादक राज्यों की श्रेणी में खड़ा किया है। इस बांध से बिस्त दोआब, सरहिंद और नरवाना शाखा जैसी नहरें बड़े पैमाने पर निकाली गई हैं जिनसे हिमाचल प्रदेश, पंजाब, हरियाणा और राजस्थान के 40 हजार वर्ग किमी. क्षेत्र में फैले करीब 40 लाख हे. खेतों की सिंचाई की जाती है।

हीराकुंड बांध परियोजना : छत्तीसगढ़ के दंडकारंय से उद्गमित 858 किमी. लंबी महानदी का औसत पानी प्रवाह 2119 घनमीटर प्रति सेकेंड और इसका बेसिन क्षेत्र 1,41,600 वर्ग किमी. है। इसी नदी पर ओडिशा के संबलपुर जिले से 15 किमी. दूर संसार का सबसे लंबा बांध हीराकुंड निर्मित है जिसके मुख्य खंड की लंबाई 4.8 किमी. और तटबंध सहित बांध की लंबाई 25.8 किमी. तथा ऊंचाई 60.96 मीटर है। इस परियोजना के दो अन्य बांध नाराज और टीकापारा हैं। यह परियोजना बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई, विद्युत उत्पादन के साथ औद्योगिक विकास को भी व्यापक आधार प्रदान करती है। हीराकुंड बांध के पीछे 55 किमी. लंबा एक विस्तृत हीराकुंड जलाशय है जिसका जलग्रहण क्षेत्र 83400 वर्ग किमी. और कुल क्षमता 58960 लाख घनमीटर है, यह 133090 वर्ग किमी. का क्षेत्र अपवाहित करता है जो श्रीलंका के क्षेत्र के दो गुना से अधिक है और इससे 75 लाख हे. भूमि की सिंचाई की जाती है। इस सिंचाई सुविधा की सुलभता के कारण संबलपुर को ओडिशा का 'चावल का कटोरा' कहा जाता है। इस परियोजना से खरीफ में 1.56 लाख हे. और रबी में 1.08 लाख हे. भूमि की सिंचाई की जाती है। इसके अलावा, बांध के विद्युत प्लांटों से निर्गत पानी से 4.36 लाख हे. कृषि भूमि की सिंचाई होती है।

रिहंद बांध परियोजना : सोनभद्र जिले के पिपरी पहाड़ों के मध्य निर्मित यह उत्तर प्रदेश की सबसे बड़ी बहूद्देशीय परियोजना और भारत की प्रमुख नदी घाटी परियोजनाओं में से एक है। सोन

की सहायक नदी रिहंद पर निर्मित यह 91.44 मीटर ऊंचा और 934.21 मीटर लंबा ठोस गुरुत्वीय बांध है जिसमें 61 स्वतंत्र ब्लॉक है। उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की सीमा पर स्थापित यह भारत के सबसे बड़े जल भंडारण क्षमता वाले जलाशयों में से एक है जिसकी सकल भंडारण क्षमता 10.60 बीसीएम है और यह अपने 5148 वर्ग किमी. जलग्रहण क्षेत्र में उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ तक फैला है। इस परियोजना से मिर्जापुर, सोनभद्र, इलाहाबाद और वाराणसी जिलों में करीब 16 लाख हे. भूमि की सिंचाई की जाती है जबकि इस बांध के नीचे की ओर बिहार में सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध होता है जिससे यहां करीब 2.5 लाख हे. भूमि की सिंचाई की जाती है। रिहंद बांध के पीछे भारत की सबसे बड़ी कृत्रिम झीलों में से एक गोविंद वल्लभ पंत सागर है, इस 30 किमी. लम्बे और 15 किमी. चौड़े जलाशय के जल को सोन नहर पर मिलाने से सोन नहर की सिंचाई क्षमता बढ़ गई है।

दामोदर घाटी परियोजना : स्वतंत्र भारत की यह पहली बहूद्देशीय परियोजना है। अमेरिका की टेनेसी परियोजना के प्रतिमान पर आधारित इस परियोजना के प्रणेता डब्ल्यू.एल.बुर्दुइन हैं। छोटा नागपुर पठार से उद्गमित 592 किमी. लंबी दामोदर नदी का औसत जलप्रवाह 296 घनमीटर प्रति सेकेंड है। जो कभी वर्धमान का बुखार और बंगाल का शोक से अभिहित थी, वह अब इस परियोजना की वजह से अपने प्रमुख कार्य बाढ़ नियंत्रण के अलावा झारखंड और बंगाल के एक बड़े हिस्से के औद्योगिक आधार और कृषि आजीविका का सूत्रधार बन गई है। इस नदी का बेसिन क्षेत्र 58480 वर्ग किमी. है। इस नदी पर बाएं से बराक, कोनार, जमुनिया और दाएं से सालीबाती नदियां मिलकर इसका विशाल बेसिन निर्मित करती हैं। इस परियोजना में 9 अन्य बांध तिलैया, मेथान, पंचेत, अय्यर, बर्मो, बाल पहाड़ी, बोकारो, कोनार बांध तथा दुर्गापुर बैराज भी बनाए गए हैं। इनमें दुर्गापुर बंगाल में और शेष झारखंड में हैं। इनमें से चार मैथान, पंचेत, कोनार और तिलैया बांध कुल 419 एमसीएम जल धारित करते हैं जिससे 680 क्यूसेक जलापूर्ति द्वारा झारखंड और बंगाल के उद्योगों, शहरी निकायों और घरेलू मांगों को पूरा किया जाता है। झारखंड और बंगाल की इस संयुक्त परियोजना का सकल सिंचाई कमांड क्षेत्र 5.69 लाख हे. है जिसमें 5.10 लाख हे. सिंचाई क्षेत्र बंगाल में है और इससे खरीफ में 3.93 लाख, रबी में 22 हजार तथा 69.7 हजार हेक्टेयर बोरो खेती की सिंचाई की जाती है। इस परियोजना के तहत 2494 किमी. नहरें निकाली गई हैं, इनमें बाएं तट की नहरों में 9146 और दाएं तट की नहरों में 2260 क्यूसेक पानी प्रवाहित होता है। इसके अलावा परियोजना की अपर घाटी में 30 हजार हे. जमीन लिफ्ट सिंचाई द्वारा हर साल सिंचित की जाती है।

नागार्जुन सागर परियोजना : तेलंगाना के नालगोंडा जिले में नदीकोड़ा गांव के निकट कृष्णा नदी पर निर्मित यह भारत की सबसे बड़ी सिंचाई परियोजना है। बौद्ध विद्वान नागार्जुन के नाम पर निर्मित इस बांध की जलधारण क्षमता 11472 एमसीएम और जलग्रहण क्षेत्र 214185 वर्ग किमी. है, 1.6 किमी. लम्बे इस बांध में 26 फाटक हैं। देश के कृषि इतिहास में हरितक्रांति लाने के लिए शुरू की गई यह पहली बहूद्देशीय परियोजना है। इस बांध से निर्मित नागार्जुन सागर झील दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी मानव–निर्मित झील है जिसका पूर्ण जलाशय–स्तर 179.83 मीटर और जल फैलाव क्षेत्र 285 वर्ग किमी. है, जिसकी सकल भंडारण क्षमता 11.472 बीसीएम है। यह भारत में दूसरा सबसे बड़ा जल भण्डार है। सिंचाई के वृहद् उद्देश्य को पूरा करने हेतु बांध से दो नहरें निकाली गई हैं जिनके द्वारा आंध्र प्रदेश और तेलंगाना क्षेत्र की 8.95 लाख हे. भूमि सींची जाती है। इसके दायीं तरफ 203 किमी. लंबी जवाहर नहर द्वारा 4.75 लाख हे. भूमि की सिंचाई की जाती है जबकि बांयी तरफ 179 किमी. लंबी लाल बहादुर शास्त्री नहर द्वारा 4.19 लाख हे. भूमि की सिंचाई की जाती है। इसी नहर से लिफ्ट पम्प हाउस योजना द्वारा हैदराबाद शहर की पेयजलापूर्ति के लिए 20 टीएमसी पानी उपलब्ध कराया जाता है। इसके अलावा नागार्जुन जलाशय से संचालित अलीमिनेती माधव रेड्डी लिफ्ट नहर द्वारा नालगोंडा जिले में 52.6 हजार हे. भूमि की सिंचाई की जाती है। यह जलाशय कृष्णा डेल्टा क्षेत्र की जल मांग को भी पूरा करता है, इससे नदी प्रवाह में 80 टीएमसी पानी प्रवाहित कर डेल्टा की नहरों द्वारा 5.26 लाख हे. भूमि की सिंचाई की जाती है।

इंदिरा गांधी परियोजना : राजस्थान के थार को नखलिस्तान करने वाली इंदिरा गांधी नहर पंजाब के अमृतसर में सतलुज और व्यास नदी के संगम पर बने हरिके बैराज से निकलती है और इस परियोजना में पानी के नियमित बहाव के लिए व्यास नदी पर पौंग बांध तथा रावी–व्यास नदियों के संगम पर माधोपुर में लिंक नहर का निर्माण भी किया गया है। इस मरू गंगा के प्रणेता अभियंता कवरसेन की साकार परिकल्पना ने सदियों से बूंद–बूंद पानी को तरसते रेगिस्तान को जीवन–रेखा और राजस्थान के बहुमुखी विकास को भाग्यश्री प्रदान किया है। विश्व की सबसे लंबी इस नहर परियोजना ने राजस्थान की कृषि आजीविका में हरित–क्रांति ला दी है जिससे 7.10 लाख हे. से अधिक भूमि की सिंचाई हो रही है। मरुस्थलीय क्षेत्र में चमत्कारिक बदलाव करने वाली इस परियोजना का जलप्रवाह 18,500 घन फीट प्रति सेकेंड है जिसका 1200 क्यूसेक पानी पेयजल, औद्योगिक उपयोग, सेना और ऊर्जा योजनाओं के लिए आरक्षित है। राष्ट्रीय हित की इस वृहद् सिंचाई परियोजना से राजस्थान में सरस्वती का पुनः अवतरण हुआ जिससे 1500 से अधिक गांवों को पेयजल की सुलभता और 1.46 लाख हे. भूमि का वनीकरण संभव हुआ है। पंजाब, हरियाणा और राजस्थान की इस परियोजना का पहला भाग राजस्थान फीडर जो पंजाब और हरियाणा में 167 और राजस्थान में 37 किमी. सहित 204 किमी. लंबा है और दूसरा भाग 445 किमी. लंबी मुख्य नहर है। इस 649 किमी. मुख्य लंबाई के अलावा 8187 किमी. लंबी शाखाएं और उपशाखाएं हैं जिसमें अभी 9 शाखाएं और 4 उपशाखाएं हैं। इसके अलावा जल वितरिकाओं और 7 जलोत्थान नहरों के निर्माण

से मरू क्षेत्र में 15.37 लाख हे. भूमि में सिंचाई सुविधा एवं पेयजल उपलब्ध कराने की प्रणाली कार्याधीन है और भविष्य में इस नहर को कांडला बंदरगाह से जोड़ने की योजना है जिससे यह भारत की राइन नदी बन जाएगी।

गंडक सिंचाई परियोजना : गंडक, सालिग्रामि और नारायणी नाम से अभिहित यह नदी औसतन 1760 घनमीटर पानी प्रति सेकेंड प्रवाहित करती है, और इसका बेसिन क्षेत्र 46300 वर्ग किमी. है। इस पर निर्मित परियोजना भारत और नेपाल के समझौते का परिणाम है और इसके जलग्रहण क्षेत्र 37410 वर्ग किमी. का 90 प्रतिशत हिस्सा नेपाल में है जिससे पश्चिमी मुख्य गंडक नहर और बाल्मिकी बैराज का निर्माण किया गया है। उत्तर प्रदेश, बिहार और नेपाल की भागीदारी वाली इस परियोजना के कमान क्षेत्र में 8.79 लाख हे. कृषि क्षेत्र है जिस पर 9.71 लाख हे. क्षेत्र की सिंचाई हेतु निर्मित क्षमता है। पूर्वी उत्तर प्रदेश के 5 जिले अपनी कृषि आजीविका के लिए इसी परियोजना पर आश्रित हैं।

चंबल सिंचाई परियोजना : यमुना की सहायक 996 किमी. लंबी चंबल नदी का बेसिन क्षेत्र 143219 वर्ग किमी. है और इस पर निर्मित परियोजना मध्य प्रदेश और राजस्थान का संयुक्त उपक्रम है। जिस पर कोटा बैराज के अलावा तीन बड़े बांध गांधी सागर, राणा प्रताप सागर और जवाहर सागर हैं जिनके विद्युत के लिए समर्पित होने की वजह से सिंचाई की आंशिक आपूर्ति ही हो पाती है जिसके कारण जवाहर सागर से जलप्रवाह मोड़कर कोटा बैराज बनाया गया है जिससे राजस्थान और मध्य प्रदेश में सिंचाई क्षेत्र बढ़कर 4.45 लाख हे. हो गया है। कोटा बैराज का कुल जलग्रहण क्षेत्र 27332 वर्ग किमी. और भंडारण 99 एमसीएम है जिसे 19 फाटकों द्वारा नियंत्रित किया जाता है, सिंचाई क्षेत्र के विस्तार हेतु इसके दाएं और बाएं नहरें निकाली गई हैं जिनकी लंबाई शाखाओं सहित 2342 किमी. है जिनके द्वारा 2.29 लाख हे. फसली क्षेत्र की सिंचाई की जाती है। इसके अलावा चंबल सिंचाई परियोजना के तहत मध्य प्रदेश में मध्यम–स्तर के सिंचाई बांध कोतवाल, पगारा, पिलोवा भी निर्मित किए गए हैं जिनकी सिंचाई क्षमता 2.73 लाख हे. क्षेत्र है।

टिहरी बांध परियोजना : भागीरथी और भिलांगना नदियों के संगम के दक्षिण में टिहरी गढ़वाल क्षेत्र में निर्मित यह विश्व की सबसे ऊंची चट्टान आपूरित और भारत का सबसे ऊंचा बांध है जिसकी ऊंचाई 260.5 मीटर और लंबाई 20 मीटर है। भूकंप के झटकों को झेलने में सक्षमता हेतु इसे एस आकार की आकृति में निर्मित किया गया है। इस बांध के साथ दो अन्य इकाइयां कोटेश्वर बांध और टिहरी पंप स्टोरेज परियोजना है। इस बांध पर निर्मित जलाशय की कुल क्षमता 4 बीसीएम और सतही क्षेत्र 52 वर्ग किमी. है। रूस के सहयोग से निर्मित उत्तराखंड की इस परियोजना से उत्तर प्रदेश और दिल्ली को भी लाभ प्राप्त होता है। इससे दिल्ली के 40 लाख लोगों को और उत्तर प्रदेश के करीब 30 लाख लोगों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध होता है। इससे उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश और दिल्ली क्षेत्र की 2.70 लाख हेक्टेयर कृषि भूमि की सिंचाई की जाती है। इस परियोजना के संपूर्ण सिंचाई भाग को उत्तर प्रदेश द्वारा वित्तपोषित किया जाता है।

भारत में 154 प्रमुख नदियां और करीब 22 नदी बेसिन क्षेत्र हैं। भारत सरकार की जल संसाधन सूचना प्रणाली के अनुसार देश की प्रमुख नदी बेसिनों में स्थापित प्रमुख (2 से 10 हजार हे. तक खेतीयोग्य कमान क्षेत्र (सीसीए) की सिंचाई वाली प्रत्येक परियोजना को मध्यम और 10 हजार हे. से अधिक सीसीए की सिंचाई परियोजना को प्रमुख सिंचाई परियोजना कहते हैं) सिंचाई परियोजनाओं की संख्या गंगा बेसिन में 480, गोदावरी में 286, कृष्णा में 211, लूनी सहित कच्छ और सौराष्ट्र के प्रवाह क्षेत्र में 108, तापी में 81, महानदी में 76, भारत की सीमा तक सिन्धु में 69, कावेरी में 57, महानदी और पेन्नार के मध्य नदियों के प्रवाह में 55, नर्मदा में 44, ब्राम्हणी और वैतरणी में 44, माही में 39, स्वर्ण रेखा में 38, ब्रह्मपुत्र में 22 और साबरमती में 20 प्रमुख सिंचाई परियोजनाएं संचालित हैं। यदि राज्यों पर गौर करें तो महाराष्ट्र में 389, मध्य प्रदेश में 150, गुजरात में 139, राजस्थान में 136, झारखंड में 127, उत्तर प्रदेश में 106, कर्नाटक में 101, आंध्रप्रदेश में 95, ओडिशा में 83, तेलंगाना में 61, बिहार में 58, छत्तीसगढ़ में 49 प्रमुख सिंचाई परियोजनाएं हैं और शेष राज्यों में किसी में भी 40 से अधिक प्रमुख सिंचाई परियोजनाएं नहीं हैं।

इस तरह देश में सिंचाई परियोजनाओं और नहरों से कुल सिंचित क्षेत्र का 40 प्रतिशत सींचा जाता है। शेष 60 प्रतिशत क्षेत्र अन्य साधनों से सींचा जाता है। यानी देश में अभी तक उपलब्ध परियोजनागत संभाव्य सिंचाई क्षमता का उपयोग नहीं किया जा सका है और देश में कृषि मांग के अनुरूप सिंचाई सुविधा उपलब्ध नहीं हैं। देश के मौजूदा शुद्ध बुवाई क्षेत्र 1410 लाख हे. में से सभी स्रोतों से शुद्ध सिंचित क्षेत्र केवल 661 लाख हे. है जो देश के शुद्ध बुवाई क्षेत्र का आधे से भी कम है जबकि सिंचाई ही कृषि उत्पादकता और संवर्धन का प्रमुख आधार है। इसलिए इस दिशा में बड़े निवेश और संभाव्य सिंचाई क्षमता के अधिकतम उपयोग की आवश्यकता है।

यदि बांधों की क्षमता के उपयोग पर गौर करें तो केंद्रीय जल आयोग के आंकड़ों के अनुसार देश में वर्ष 1950–51 में 370 बांध थे, जो बढ़कर वर्ष 1970 में 1200, वर्ष 1990 में 3650 और वर्ष 2017 में 5176 हो गए। स्पष्ट है कि उदारीकरण से पहले जिस गति से बांधों का निर्माण हुआ है, उदारीकरण के बाद उस गति से नहीं हुआ है। उदारीकरण से पहले 20 वर्षों में जहां 2450 बांधों का निर्माण किया गया, वहीं उदारीकरण के बाद के 27 वर्षों में केवल 1526 बांधों का निर्माण किया गया है। देश में करीब 20 बांधों की ऊंचाई 100 मीटर या इससे अधिक है और देश के 35 जलाशयों की उपयोगी क्षमता एक बीसीएम (बिलियन क्यूबिक मीटर) से

अधिक है, लेकिन देश के 35 प्रतिशत से कम जलाशयों का उपयोग बहूउद्देशीय प्रयोजनों के लिए होता है। देश के अधिकांश बांधों की आयु 20 से 35 वर्ष है, करीब 50 बांधों की आयु 100 वर्ष से अधिक है। यानी समय के साथ देश के बांधों की पुर्ननिर्माण की आवश्यकता भी बढ़ रही है। दूसरे देशों की तुलना में भारत के बांधों में जल संचयन स्थलों (जलाशयों) की संख्या भी बहुत कम है। देश में निर्मित और निर्माणाधीन परियोजनाओं के तहत कुल संचयन स्थल, संभावित स्थलों का करीब 50 प्रतिशत है।

कुल मिलाकर, देश में जल मांग की आपूर्ति व जलप्रणाली के बेहतर व्यवस्थापन और सिंचाई परियोजनाओं के उन्नयन हेतु देश को बड़े निवेश और व्यापक सरकारी प्रयासों की आवश्यकता है, क्योंकि देश में एक तरफ जल की मांग बढ़ रही है वहीं आपूर्ति की आवश्यक उपलब्धता लगातार घट रही है। वर्ष 2001 में देश में सतही जल की मात्रा 1902 घनमीटर थी, जो घटकर वर्ष 2010 में 1588 घनमीटर रह गई और इसके घटकर वर्ष 2025 में 1401 घनमीटर व 2050 में 1191 घनमीटर रहने का अनुमान है। जबकि देश में वर्षा का वार्षिक औसत 116 सेमी. है जिसका 75 प्रतिशत हिस्सा मानसूनी है। ऐसे में नदी घाटी परियोजनाएं ही देश में सर्वकालिक सिंचाई की सुलभता और आवश्यक जलापूर्ति उपलब्ध करा सकती हैं। लेकिन इसका एक और बेहतर विकल्प देश की प्रमुख नदियों को आपस में जोड़ने की परियोजना हो सकती है। इससे नदियों के अपवाह और वर्षा से प्राप्त जल के व्यर्थ प्रवाह को देश के अंदर वितरित और संचयित किया जा सकता है, क्योंकि इन दो स्रोतों (देश में बर्फबारी सहित वर्षा से प्राप्त कुल वार्षिक जल 4000 बीसीएम और देश की नदियों के औसत वार्षिक संभाव्य जलप्रवाह 1869 बीसीएम) से देश को हर साल 5869 बीसीएम पानी प्राप्त होता है, जो देश की मौजूदा जल मांग 945.4 बीसीएम से 6.2 गुना अधिक है। वर्ष 2000 में देश की कुल जल मांग और सिंचाई के लिए क्रमशः 634 और 541 बीसीएम थी जो आबादी में तीव्र वृद्धि और उच्च आर्थिक विकास के चलते वर्ष 2025 तक क्रमशः 1093 और 910 बीसीएम तथा वर्ष 2050 तक क्रमशः 1450 और 1072 बीसीएम का अनुमान है, जिसे मौजूदा जलापूर्ति व्यवस्था से पूरा कर पाना संभव नहीं है क्योंकि वार्षिक वर्षा का अल्पभाग ही उपयोग हो पाता है और बहुत बड़ी मात्रा नदियों के माध्यम से समुद्र में चली जाती है। ऐसे में यदि नदी इंटर–लिंक परियोजना के तहत हिमालयी भाग की 14, प्रायद्वीपीय भाग की 16 और 37 राज्यांतरिक नदियों को जोड़ दिया जाए तो इससे देश के करीब 870 लाख हे. क्षेत्र की सिंचाई की जा सकती है, लेकिन यदि देश की केवल 30 बड़ी नदियों को ही आपस में अंतःसंबंधित कर दिया जाए तो भी देश में जलापूर्ति की पर्याप्त सुलभता सुनिश्चित की जा सकती है। अभी देश में करीब 327 बीसीएम जल की कमी है जिसमें से 200 बीसीएम जल नदियों को आपस में जोड़कर प्राप्त किया जा सकता है। इनको जोड़ने से भारत में 157 लाख हे. और नेपाल में 7.25 लाख हे. सिंचित क्षेत्र में वृद्धि होगी। घरेलू एवं औद्योगिक उपयोग हेतु करीब 120 बीसीएम अतिरिक्त पानी प्राप्त होगा, जो 16 लाख हे. क्षेत्र की सिंचाई हेतु पर्याप्त है। हिमालयी और पठारी संघटकों को आपस में जोड़ने से 30 लाख हे. सिंचित क्षेत्र सृजित होगा, इस परियोजना से निर्मित संपर्क नहरों, बांधों और जलाशयों से भूमिगत जल स्रोत पुनःभारित होंगे जिससे 100 लाख हे. अतिरिक्त सिंचित क्षेत्र सृजित होगा, यानी नदियों को आपस में जोड़ने से देश में 300 लाख हे. अतिरिक्त सिंचाई क्षमता सृजित होगी। इस सिंचाई क्षमता से खाद्यान्न उत्पादन बढ़कर 3938.8 लाख टन तक पहुंच सकता है, जो देश के मौजूदा वर्ष 2016–17 के रिकार्ड उत्पादन 2733.8 लाख टन से बहुत अधिक है। यदि 'नदी जोड़ो परियोजना' लक्ष्यों के अनुरूप क्रियान्वित होती है तो इसका सर्वाधिक लाभ गांवों और कृषि पर निर्भर परिवारों को मिलेगा, इससे प्रति व्यक्ति ग्रामीण परिवारों की आय में 7.49 प्रतिशत, पूर्णतः कृषि पर निर्भर परिवारों की आय में 13.2 प्रतिशत, और गैर–कृषि कार्यों पर निर्भर परिवारों की आय में 5.1 प्रतिशत तक की वृद्धि हो सकती है जिससे ग्रामीण निर्धनता और कृषि की मानसूनी विवशता दोनों का एक साथ समाधान हो सकता है। कुल मिलाकर देश की मौजूदा सिंचाई व्यवस्था और जलापूर्ति प्रणाली पर्याप्त नहीं है और नदियां जोड़ने का समग्र कार्यक्रम अनेक विडंबनाओं व व्यावहारिक कठिनाईयों से भरा है, जिसके लिए सर्वमान्य समाधान समावेशी आयोजन, समेकित नीति और व्यापक निवेश की आवश्यकता है।

(लेखक कृषि सहकारिता एवं किसान कल्याण मंत्रालय में वरिष्ठ तकनीकी सहायक के पद पर कार्यरत हैं।)
ई–मेल : gajendra10.1.88@gmail.com

गांधी जयंती पर स्वच्छता पुरस्कार

स्वच्छ भारत मिशन (एसबीएम) की तीसरी वर्षगांठ के अवसर पर 2 अक्तूबर, 2017 को नई दिल्ली में पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय द्वारा आयोजित एक समारोह में प्रधानमंत्री ने स्वच्छ भारत राष्ट्रीय पुरस्कार प्रदान किए। इस दिन को स्वच्छ भारत दिवस के रूप में भी मनाया गया। ये पुरस्कार निबंध, फिल्म और चित्रकारी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को प्रदान किए गए, जिनका आयोजन 'स्वच्छ संकल्प से स्वच्छ सिद्धि' कार्यक्रम के हिस्से के रूप में किया गया था।

यह कार्यक्रम ''स्वच्छता ही सेवा'' शीर्षक से चलाए गए राष्ट्रीय अभियान की परिणति था। यह अभियान पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय द्वारा प्रधानमंत्री के उस आह्वान को देखते हुए शुरू किया गया था, जिसमें उन्होंने भारत के नागरिकों से कहा था कि वे गांधी जयंती के संदर्भ में देश में स्वच्छता की स्थिति में सुधार में अपना योगदान करें।

अपने संबोधन में प्रधानमंत्री ने कहा कि स्वच्छ भारत के मार्ग में आने वाली चुनौतियों का समाधान जन भागीदारी से ही किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि इतिहास में यदि सभी राजनीतिक नेता एकत्र हो जाएं, तब भी वे स्वच्छता का लक्ष्य हासिल नहीं कर सकते। इस लक्ष्य को केवल 125 करोड़ भारतीय मिल कर ही हासिल कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि इस मिशन के अंतर्गत अब तक जो सफलताएं प्राप्त हुई हैं, वे सरकार की उपलब्धियां नहीं हैं, बल्कि भारत के लोगों की उपलब्धियां हैं, जिन्होंने स्वच्छ भारत को स्वयं का सपना बनाया है।

उन्होंने कहा कि जब तक शौचालय रखने वाला प्रत्येक परिवार यह नहीं समझेगा कि स्वच्छता भी उन्हीं का दायित्व है, तब तक स्वच्छ भारत का लक्ष्य हासिल नहीं किया जा सकता। उन्होंने कहा कि इस दिशा में बच्चे और युवा उत्कृष्ट अग्रदूत हैं।

प्रधानमंत्री ने परिवार में स्वच्छता बनाए रखने में महिलाओं की भूमिका की भी सराहना की। उन्होंने कहा कि परिवार के सभी सदस्यों को इस कार्य में अपना योगदान करते हुए महिलाओं की मदद करनी चाहिए।

स्वच्छता ही सेवा (एसएचएस) श्रेणी के अंतर्गत विशेष रूप से चुने गए मंत्रालय का पुरस्कार सूचना और प्रसारण मंत्रालय, विशेष एसएचएस राज्य का पुरस्कार महाराष्ट्र (राज्यों में शीर्ष), जम्मू–कश्मीर (विशेष एसएचएस पुरस्कार) और तमिलनाडु के वेलनकन्नी चर्च (स्वच्छता ही सेवा अभियान में विशेष पर्यटक स्थल) को प्रदान किया गया। पिछले 3 वर्षों में मंत्रालय और विभागों द्वारा चलाई गई गतिविधियों के आधार पर अंतर–मंत्रालयी पुरस्कार भी प्रदान किए गए। इन गतिविधियों में स्वच्छता पखवाड़ा और स्वच्छता कार्ययोजनाएं विशेष रूप से शामिल थीं।

भारत के प्रतिष्ठित स्थानों में और उनके इर्दगिर्द स्वच्छता को बढ़ावा देने के लिए पुरस्कार की एक विशेष श्रेणी बनाई गई थी। प्रतिष्ठित स्थानों का मूल्यांकन उनके द्वारा पिछले एक वर्ष के दौरान किए गए कार्य के लिए 8 मानदंडों के आधार पर किया गया। सर्वोत्कृष्ट प्रतिष्ठित स्थल का पुरस्कार अमृतसर के स्वर्णमंदिर को दिया गया। इस श्रेणी में विशेष पुरस्कार जम्मू–कश्मीर स्थित माता वैष्णो देवी मंदिर और तमिलनाडु स्थित मीनाक्षी मंदिर को दिया गया।

इसके अतिरिक्त नागर विमानन मंत्रालय, रेलवे मंत्रालय और रक्षा उत्पादन विभाग को उत्कृष्ट एसएपी मंत्रालय पुरस्कारों से नवाज़ा गया। मंत्रालय और विभाग स्वच्छता पखवाड़ों का आयोजन करते रहे हैं। इसे देखते हुए उनके लिए एक विशेष श्रेणी बनाई गई थी। सर्वोत्कृष्ट पखवाड़ा पुरस्कार (15 दिन के लिए संचालित स्वच्छता गतिविधियों के लिए) स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग और अंतरिक्ष विभाग को प्रदान किया गया। स्वच्छता को बढ़ावा देने और उसे जन–आंदोलन बनाने में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अतः स्वच्छता को जन–आंदोलन बनाने में मूर्त योगदान के लिए मातृभूमि (केरल) को मीडिया पुरस्कार प्रदान किया गया।

स्वच्छता के लिए कॉरपोरेट पुरस्कार टाटा ट्रस्ट और इंडिया सेनिटेशन कोअलिशन को दिए गए, जिन्होंने पेयजल और स्वच्छता मंत्रालय/स्वच्छ भारत मिशन को खुले में शौच जाने से मुक्ति अभियान को स्थिरता प्रदान करने में मदद की। स्वच्छ भारत (शहरी) पुरस्कार भी विभिन्न श्रेणियों के अंतर्गत स्कूल, कॉलेजों, म्युनिसिपल कर्मचारियों, स्वयंसहायता समूहों, निवासी कल्याण संगठनों, धार्मिक संस्थाओं आदि को प्रदान किए गए।

इस अवसर पर केंद्रीय पेयजल और स्वच्छता मंत्री सुश्री उमा भारती ने विजेताओं को बधाई दी और उनसे अनुरोध किया कि वे अपने क्षेत्र में स्वच्छता उपायों को बढ़ावा देने में अन्य लोगों को प्रेरित करें। उन्होंने बताया कि स्वच्छ भारत मिशन ने प्रभावशाली प्रगति की है, जिसके अंतर्गत ग्रामीण भारत में 2,54,000 गांव, 214 जिले और 6 राज्य खुले में शौच जाने से पूरी तरह मुक्त किए जा चुके हैं।

सूचना और प्रसारण मंत्रालय को विशेष रूप से निर्दिष्ट स्वच्छता पुरस्कार

सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने स्वच्छ भारत मिशन प्रारंभ होने के समय से ही अपने विभिन्न प्रचार माध्यमों के जरिए स्वच्छता का संदेश जन–जन तक पहुंचाने में अग्रणी भूमिका अदा की है। मंत्रालय के इस कार्य को सम्मानित करने के लिए सूचना और प्रसारण मंत्रालय को 'स्वच्छता ही सेवा' के अंतर्गत विशेष रूप से निर्दिष्ट मंत्रालय का पुरस्कार 2 अक्तूबर, 2017 को प्रदान किया गया। सूचना और प्रसारण मंत्रालय के सचिव श्री एन.के. सिन्हा ने यह पुरस्कार प्राप्त किया।

वैज्ञानिक सोच पर खरी प्राचीन जलसंचय प्रणालियां

–निमिष कपूर

भारत में जल संचय का कार्य सभ्यता के आरंभ से ही किया जा रहा है। भारत की पारंपरिक जल संचय प्रणालियों का लंबा वैज्ञानिक इतिहास रहा है जो प्राचीन ग्रंथों, शिलालेखों और ऐतिहासिक अवशेषों के साथ आज भी जीवंत है। हमारे प्राचीन तालाब, जलाशय, नौले, कुण्डियां, कुएं और तमाम जल संचय इकाईयां सदियों से आज भी खरी हैं और प्रयोग में लाई जा रही हैं।

आज से लगभग 6000 वर्ष पहले जब मनुष्य ने सामूहिक तौर पर बसना आरम्भ किया, तभी से जल संचय के प्रयास शुरू हुए। प्राचीनतम जलकुंड फिलिस्तीन और यूनान में पाए गए हैं। इन कुंडों में छतों से गिरने वाले और पथरीले रास्ते से बहने वाले पानी को एकत्र किया जाता था। प्राचीन कुंड चट्टान को काटकर बनाए जाते थे। 2000 ई.पू. कुंडों में गारे का प्रयोग शुरू हुआ। 800–600 ई.पू. के ग्रंथों में जल का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में सिंचित खेती, नदी के बहाव, जलाशयों, कुओं और पानी खींचने वाली तकनीकों का उल्लेख मिलता है। जल संबंधी प्रक्रियाओं की समझ का प्राचीनतम उल्लेख छांदोग्य उपनिषद में मिलता है ''नदियों का जल सागर में मिलता है। वे सागर से सागर को जोडती हैं, मेघ वाष्प बनकर आकाश में छाते हैं और बरसात करते हैं... ।''

ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी में ही बलूचिस्तान के किसानों ने बरसाती पानी को घेरना और सिंचाई में उसका प्रयोग करना आरंभ कर दिया था। कंकड़–पत्थर से बने बांध बलूचिस्तान और कच्छ में मिले हैं। सिंधु घाटी सभ्यता (3000–1500 ई.पू.) के महत्वपूर्ण स्थल धौलावीरा में मानसून के पानी को संचित करने वाले अनेक जलाशय थे। यहां जल निकासी की व्यवस्था भी पुख्ता थी। इतिहासकारों का मानना है कि कुएं बनाने की कला संभवतः हड़प्पा के लोगों ने विकसित की। सिंधु घाटी सभ्यता वाले स्थलों के हाल के सर्वेक्षण से यह बात सामने आई है कि हर तीसरे घर में एक कुआं था। यहां 700 से अधिक कुएं पाए गए हैं।

ई.पू. पहली शताब्दी में इलाहाबाद के निकट श्रृंगवेरपुरा में गंगा की बाढ़ के पानी को संचित करने की विकसित प्रणाली के संकेत मिले हैं। यहां 250 मीटर लंबा तालाब मिला है जोकि भारत में अब तक प्राप्त प्राचीनतम तालाबों में सबसे बड़ा है जिसमें कि गंगा के पानी को भरा जाता था। बरसात में गंगा के जल–स्तर के ऊपर उठने के कारण अतिरिक्त पानी को बहाने के लिए 11 मीटर चौड़ी और 5 मीटर गहरी नहर खोदी गई। नहर का पानी पहले एक बड़े गड्ढे में जाता था, जहां गाद जमा होती थी। इसके बाद कुछ साफ पानी ईंटों से बने प्रथम तालाब में जमा होता था। यहां से साफ पानी द्वितीय तालाब में जाता था, जहां से जल–आपूर्ति की जाती थी। तृतीय तालाब गोलाकार था, जिसमें स्थापित मूर्तियां यह संकेत करती हैं कि इसका प्रयोग पूजा के लिए किया जाता होगा। तालाब को सूखने से बचाने के लिए कई कुएं खोदे गए थे ताकि भूजल प्राप्त होता रहे।

जल संचय करके सिंचाई करने वाली प्रणालियों की मौजूदगी का वर्णन ई.पू. तीसरी सदी में लिखे कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मिलता है। कौटिल्य, चन्द्रगुप्त मौर्य (ई.पू. 321–297) के शासनकाल में मंत्री और गुरु थे जोकि चाणक्य के नाम से प्रसिद्द थे। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा गया है कि लोगों को बरसात के चरित्र, मिटटी के भेद और सिंचाई की तकनीकों का ज्ञान था। राजा भी

ई.पू. पहली शताब्दी में इलाहाबाद के निकट श्रृंगवेरपुरा में 250 मीटर लंबा तालाब मिला है जोकि भारत में अब तक प्राप्त प्राचीनतम तालाबों में सबसे बड़ा है

मेघालय में बांस की नालियों द्वारा जल संरक्षण की 200 वर्ष पुरानी पारंपरिक तकनीक

प्रजा की मदद करता था पर जल से जुड़ी तकनीकों का निर्माण, संचालन और रखरखाव जनता स्वयं ही करती थी। इस मामले में गड़बड़ी करने पर सजा का प्रावधान था। भारतीय किसान बांध, तालाब और अन्य सिंचाई साधनों का निर्माण करने लगे थे। नदियों, तालाबों और सींचने वाले खेतों का संचालन अधिकारियों के हाथ में था। कौटिल्य ने विभाग प्रमुखों के कार्यों के विवरण में लिखा है ''उसे प्राकृतिक जल स्रोत या कहीं और से लाए गए पानी के उपयोग से सिंचाई व्यवस्था का निर्माण करना चाहिए। इन व्यवस्थाओं का निर्माण करने वालों को उसे भूमि, अच्छा रास्ता, वृक्ष और उपकरणों आदि से सहायता करनी चाहिए....सिंचाई व्यवस्था के अधीन मछलियों, बत्तखों और हरी सब्जियों पर राजा का स्वामित्व होना चाहिए।''

न्यायाधीशों से संबंधित एक अध्याय में कौटिल्य ने लिखा है ''अगर जलाशय, नहर या पानी के जमाव के कारण किसी के खेत या बीज को क्षति पहुंचती है तो उसे क्षति के अनुपात में क्षतिपूर्ति की जानी चाहिए. अगर जल जमाव, उद्यान या बांध के कारण दोहरी क्षति हो तो दोगुनी क्षतिपूर्ति की जानी चाहिए।'' अर्थशास्त्र में हिमालय से लेकर समुद्र तक पूरे देश को विभिन्न प्रकार के क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है – अरण्य, ग्राम्य, पर्वत, औदक, भौम (शुष्क भूमि), सैम, विषम।

दूसरी सदी का जूनागढ़ शिलालेख बाढ़ से क्षतिग्रस्त बांध की मरम्मत और सुदर्शन झील को दुरुस्त करने के विषय में ज्ञात तकनीकी जानकारी का दुर्लभ दस्तावेज है। सुदर्शन झील नौवीं सदी तक अस्तित्व में थी। हाथीगुफा अभिलेखों से ई.पू. द्वितीय शताब्दी में कलिंग की सिंचाई व्यवस्था का पता चलता है।

कल्हण ने राजतरंगिनी में कश्मीर के 12वीं सदी का इतिहास लिखा है। उसमें व्यवस्थित सिंचाई प्रणाली, डल और आंचर झील के आसपास के निर्माणों और नदी नहर बनाने का विवरण है। इसमें नहरों, सिंचाई के नालों, तटबंधों, जलसेतुओं, घुमावदार नहरों, बैराजों, कुओं और पनचक्कियों का वैज्ञानिक इतिहास भरा है। इस ग्रंथ में वर्णित है कि दामोदर (द्वितीय) ने गड्सेतु तटबंध बनवाया था। वितस्ता के बहाव को मोड़ने का भी जिक्र किया गया है। राजा ललितादित्य मुक्तिपाद (725–760 ई.) द्वारा गांवों में पानी पहुंचाने के लिए पनचक्कियों या अरघट्टा का निर्माण किया गया। राजा अवंतिवर्मन (855–883 ई.) के राज में सुय्या द्वारा सिंचाई प्रणाली का निर्माण किया गया जिसमें सभी को उचित मात्र में पानी उपलब्ध होता था।

दिल्ली में हौजखास तालाब का निर्माण अल्तुत्मिश ने 14वीं सदी में करवाया। फिरोज शाह तुगलक (1351–1388 ई.) ने सिंचाई की पांच नहरों और कई बांधों का निर्माण करवाया। पुराने निर्माणों की मरम्मत के लिए भी फिरोजशाह को याद किया जाता है जिसमें सूरजकुंड की मरम्मत भी शामिल थी। तोमर वंश के राजा सूरजपाल ने 10वीं शताब्दी में सूरजकुंड बनवाया था। सूरजकुंड के समीप अंगनपुर बांध है जो आज भी उपयोग में आता है, जिसे कि तोमरवंश के राजा अंगनपाल ने बनवाया था। तालाबों के शहर भोपाल में प्राचीन भोपाल ताल का निर्माण राजा भोज (शासनकाल 1010 से 1055 ई.) ने करवाया था। प्रमाणों के आधार पर पता चलता है कि भोपाल ताल वास्तव में विशाल था। पारंपरिक ज्ञान के अनुसार राजा भोज ने दो पहाड़ियों के बीच बांध बनवाकर भोजपाल नामक विशाल ताल बनवाया था। 11वीं सदी में यह भारत का सबसे बड़ा कृत्रिम जलाशय था जिसका क्षेत्रफल 65000 हेक्टेयर से अधिक था और इसमें 365 स्रोतों और झरनों का पानी आता था।

दक्षिण भारत में नागार्जुनकोंडा शिलालेख से आंध्र प्रदेश की प्राचीन सिंचाई व्यवस्था का ज्ञान होता है। दक्षिण भारत में तालाब बनवाना पुण्य का काम माना जाता था। कन्नड़भाषी क्षेत्रों के अभिलेखों में कोडगे का जिक्र है जिसका तात्पर्य ऐसे क्षेत्रों से था जिससे प्राप्त आमदनी को तालाबों के निर्माण और इनके रखरखाव

राजस्थान के आभानेरी गांव की खूबसूरत चांद बावली जो सबसे गहरी और विशाल बावलियों में से एक है जिसमें कि 3500 संकरी सीढ़ियां और 13 मंजिलें हैं।

भूगर्भ जल संचयन के लिए उत्तराखंड का पारंपरिक नौला

पर खर्च किया जाता था। कई अभिलेखों से कर्नाटक के बेन्नूर और महाराष्ट्र के कोल्हापुर की उन्नत सिंचाई प्रणाली का पता चलता हैा कर्नाटक में अराकेरे, वोलाकेरे, कट्टे, कुंते और कोला जैसी पारंपरिक जल संचय तकनीकों का निर्माण किया गया जिनमें से कुछ आज भी कार्यरत हैं। कर्नाटक अपने 40,000 तालाबों के लिए भी जाना जाता है जिनका उपयोग स्थानीय निवासी आज भी कर रहे हैं। तमिलनाडु में 1388 ई. के एक दस्तावेज में रुद्र के बेटे सिंग्या भट्ट को जलला सूत्रदा यानी जल प्रबंधन का इंजीनियर कहा गया है। तमिलनाडु में एकतिहाई जमीन आज भी पारंपरिक तालाबों इरी से सिंचित होती है। इनकी भूमिका सिंचाई के साथ मिटटी के बहाव को रोकने, बाढ़ नियंत्रण और भू–जल को पुनः आवेशित करने के लिए होती है।

मालबार का कसारगोडा जिला पारंपरिक जल संचय प्रणाली सुरंगम के लिए जाना जाता है। इस प्राचीन प्रणाली में पहाड़ी पर हुई बरसात के पानी को भुरभुरी चट्टानों के बीच से बनी सुरंग द्वारा नीचे कुओं तक लाया जाता है। निकोबार द्वीप समूह के शोंपेन और जार्वा आदिवासी आधे फटे बांस को लघु जल मार्ग की तरह उपयोग करके दूर स्थित हौज में पानी जमा करते हैं। बंगाल में 17वीं सदी से प्रचलित जलप्लावित सिंचाई प्रणाली अंग्रेजों के आने तक व्यवस्थित ढंग से चली। इससे मिट्टी की उर्वरता तो बेहतर हुई ही, साथ ही मलेरिया का भी नाश होता था। ब्रह्मपुत्र मैदान में जाम्पोई विधि द्वारा जल का संचय किया जाता है। यह विधि पश्चिमी बंगाल के जलपाइगुड़ी जिले में प्रचलित है। जाम्पोई विधि में जल संग्रह के लिए छोटी–छोटी नालियां बनाई जाती हैं जिन्हें दूंग कहते थे। वर्तमान समय में वनों के कटने के कारण इनका आकार बदल रहा है, क्योंकि बाढ़ भी अधिक आने लगी है। इनके अतिरिक्त पश्चिम बंगाल में छोटी–छोटी नदियों से जल संरक्षण किया जाता था जिनमें काणा, कुंती, दामोदर प्रमुख है जिनसे ढेंकली से जल निकालते थे।

पूर्वोत्तर के पहाड़ी इलाकों में हर कहीं विभिन्न जल स्रोतों से सुदूर क्षेत्रों तक पानी ले जाने के लिए बांस की पाइप लाइन बिछाई गई है। मेघालय में बांस की नालियों द्वारा झरनों और सोतों के पानी को दूर–दराज तक ले जाने की 200 वर्ष पुरानी पारंपरिक तकनीक आज भी कारगर है। इससे सैकड़ों मीटर दूर तक पानी को ले जाया जाता है। यह प्रणाली इतनी कारगर है कि बांस की नलियों में प्रति मिनट आने वाला 18 से 20 लीटर पानी सैकड़ों मीटर दूर तक ले जाया जाता है और आखिरकार पौधे के पास पहुंच कर उसमें से प्रति मिनट 20 से 80 बूंद पानी टपकता है। जल मार्ग बनाने के लिए विभिन्न व्यास के बांसों का उपयोग किया जाता है जिसमें पानी की एक–एक बूंद पौधे तक पहुंचती है। आज इस तकनीक पर शोध और इसे विस्तार दिए जाने की आवश्यकता है जोकि ड्रिप सिंचाई प्रणाली की तरह उपयोगी हो सकती है। नगालैंड में जाबो सिंचाई पद्धति प्रचलित है, इसमें वृक्षारोपण, कृषि, पशुपालन और भूमि–क्षरण रोकने का काम एक साथ किया जाता है। यह एक पारंपरिक समेकित कृषि–जल प्रणाली है।

थार मरुभूमि के अधिक रेतीले इलाकों में 15वीं सदी में निर्मित पारंपरिक कुंड भूमिगत हौज थे, जिनमें कृत्रिम आगोर में गिरा बरसाती पानी जमा किया जाता था। ढालू जमीन से बहने वाले पानी को रोककर सिंचाई में उपयोग के लिए खडीनें बनाई जाती थीं। भारत में सदियों से सोतों या जल स्रोत की जलधारा को मोड़कर खेतों तक ले जाने की परंपरा रही है। कभी–कभी सोते बड़े होकर नदियों में बदल जाते थे। कावेरी नदी पर बना ग्रैंड अनिकट ऐसी ही कुशल इंजीनियरिंग का उदाहरण है। शुष्क और अर्धशुष्क इलाकों में, जहां सोतों की प्रकृति मौसमी थी और पानी की कमी थी, वहां पानी के भंडारण की प्रणालियां विकसित हुईं। लद्दाख में जिंग, दक्षिण बिहार में आहर और कर्नाटक में केरे इसके उदाहरण हैं।

राजस्थान जैसे शुष्क इलाके में लोगों ने तालाबों और अन्यजल–भंडारों से नीचे के स्तर पर कुएं और बावड़ियों जैसी व्यवस्थाएं बनाईं। इन इंतजामों के चलते जब तालाबों का पानी

लद्दाख में खेती की कल्पना को साकार करते जल मार्ग जो जिंग (एक प्रकार के तालाब) में जल संचयन करते हैं।

सूख जाता था या बरसाती पानी दूषित हो जाता था, तो लोग पीने के पानी के लिए कुओं और बावड़ियों का प्रयोग करते थे। बावड़ियां वैसे तो राजस्थान की पहचान हैं पर गुजरात के कच्छ क्षेत्र में भी बावड़ियां सीमित संख्या में मिलती हैं। गुजरात में इन्हें वावड़ी या वाव कहा जाता है जबकि उत्तर भारत और राजस्थान में बावड़ी या बावली। गुजरात में वावड़ी तालाबों, कृत्रिम झीलों और सरोवरों के पास बनी हैं जो गुजरात के थार क्षेत्र के लोगों की पानी की जरूरतों को पूरा करती हैं। बावड़ियां सामाजिक कुएं हैं, जिनको मुख्यतः पीने के पानी के स्रोत के रूप में उपयोग में लाया जाता था। इनमें से अधिकांशः काफी पुराने हैं और कई बंजारों द्वारा बनाए गए हैं। इनमें पानी काफी लम्बे समय तक बना रहता है क्योंकि वाष्पीकरण की दर बहुत कम होती है।

कुईं और डाकेरियान भी पश्चिमी राजस्थान के लोगों की पारंपरिक जल संचय प्रणालियां हैं। कुईं या बेरी सामान्यतः तालाबों के आसपास बनाई जाती हैं जिनमें तालाब का रिसा पानी जमा होता है। इस प्रकार पानी की बर्बादी पर रोक लगती है। कुईं 10 से 12 मीटर गहरी और कच्ची ही रहती हैं। इनका मुंह लकड़ी के लट्ठों से बंद रहता है ताकि इसमें पशु या मनुष्य गिर न जाए। डाकेरियान खेतों में जल संचय की एक आपात व्यवस्था है। जब खेतों से खरीफ की फसल लेनी होती है वहां बरसाती पानी को घेरे रखने के लिए खेत की मेढें ऊंची कर दी जाती हैं। यह पानी जमीन में समां जाता है। फसल काटने के बाद खेत में एक छिछला कुआं खोद देते हैं जहां इस पानी का कुछ हिस्सा रिसकर जमा हो जाता है जोकि काम में आता है।

खड़ीन पश्चिमी राजस्थान की एक और प्राचीन वैज्ञानिक प्रणाली है जो आज भी शुष्क क्षेत्रों के लिए मददगार है। खड़ीन या धोरा की तकनीक 15वीं सदी के पालीवाल ब्राह्मण किसानों ने विकसित की थी। दरबार इन किसानों को जमीन देते थे और

भारत की पारंपरिक जल संचय प्रणालियां

क्र. स.	जलवायु क्षेत्र	खेती की प्रणाली	पेयजल संचय की प्रणाली
1.	पहाड़ और पहाड़ी क्षेत्र	(क) खेतों तक पानी ले जाने वाले जल मार्ग– जैसे पश्चिमी हिमालय के कुहल या गुहल। (ख) जल मार्गों से जल संचय प्रणालियां जिनका उपयोग शुष्क मौसम में होता है– जैसे लद्दाख के जिंग।	(क) झरनों का पानी लिया जाता है। (ख) चाट पर गिरे बरसाती पानी को संचित किया जाता है। (ग) पूर्वोत्तर में बांस की नलियों से सोतों–झरनों का पानी दूर तक ले जाया जाता है।
2.	शुष्क और अर्ध–शुष्क क्षेत्र	(क) अपने स्तर से नीचे के कमांड क्षेत्र को सिंचित करने वाले तालाब, जैसे बरसाती पानी वाली व्यवस्थाएं। (ख) नदियों और सोतों से पानी लेकर जमा करने वाली व्यवस्थाएं, जो कई बार श्रृंखला में होती हैं और एक के भरने पर पानी दूसरी में जमा हो जाता है। (ग) बरसाती पानी के बहाव को जमीन पर घेर लेना, जिससे जमीन नम हो और ऊसर जमीन को भी उपजाऊ मिटटी मिले – जैसे खडीन और जोहड़।	(क) भूजल के जलभरों से पानी लेने वाले कुएं और बावड़ियां बनाना। (ख) तालाब और झीलों के किनारे कुएं और बावड़ियां बनाना, जिसमें उनका रिसाव वाला पानी जमा होता है। (ग) चाट पर गिरने वाले बरसाती पानी को जमा करना – जैसे टांके। (घ) कृत्रिम आगोर बनाकर जमीन के अंदर बने हौजों में पानी जमा करना– जैसे राजस्थान के कुंड। (च) जमीन के खारे पानी से बरसाती मीठे पानी को अलग रखने वाली खास विधियां– जैसे कच्छ का विरडा। (छ) मध्य–पूर्व की एक खास व्यवस्था सुरंगम प्रणाली जिसमें पहाड़ी पर गिरने वाला पानी अंदर ही अंदर कुएं में आता है।
3.	मैदानी इलाका	(क) बाढ़ वाले इलाके में इस पानी खेतों की ओर मोड़ने वाली जलोत्प्लावान प्रणाली। (ख) खेतों की मेंडे मजबूत करके उनके अंदर ही पानी रोकना, जैसे मध्य प्रदेश की हवेली प्रणाली।	(क) कुएं
4.	तटीय क्षेत्र	(क) समुद्री खारे पानी को ऊपर आने से रोकने वाली व्यवस्था।	(क) कुएं

स्रोतः सेंटर फॉर साइंस एंड एनवायरनमेंट, नई दिल्ली

झालरा जल संचयन प्रणाली जोकि अपने से ऊंचाई पर स्थित तालाबों या झीलों के रिसाव से पानी प्राप्त करते हैं और अपने अदभुत वास्तुशिल्प के लिए विख्यात हैं।

खड़ीन विकसित करने के लिए कहते थे। कुल उपज का एक चौथाई हिस्सा किसानों को जाता था। खड़ीन में मिटटी का एक बड़ा बांध बनाया जाता है जो किसी ढलान पर गिरकर नीचे आने वाले पानी को रोकता है। यह 1.5 से 3.5 मीटर तक ऊंचा होता है जोकि ढलान वाली दिशा को खुला छोड़कर बाकी तीन दिशाओं को घेरता है।

टंका एक छोटा टैंक होता है जिसमें पानी को इकट्ठा किया जाता है। यह जमीन के अंदर होता है और इसकी दीवारों पर चूना लगाया जाता है। इसमें सामान्य तौर पर वर्षाजल इकट्ठा किया जाता है। बड़े टंका पूरे गांव की आवश्यकता को पूरा करते थे। टंका को इरिस भी कहते हैं। इरिस भारत में जल प्रबंधन के लिए किए गए प्राचीनतम संरचनाओं में एक हैं। दक्षिण भारत में टंका मंदिर स्थापत्य से सीधे तौर पर जुड़े हैं साथ ही टंका का निर्माण सिंचाई सुविधा के लिए भी किया गया था। चोल राजाओं ने वर्षा जल संरक्षण के लिए बहुत से टैंकों का निर्माण कराया था।

राजस्थान में बारिश के पानी को सहेजकर रखने की कई विधियां विकसित की गईं। इनमें मकान की छत पर गिरे पानी को जमा करने की परंपरा सदियों से चली आ रही है। जल संचयन के लिए राजस्थान की कुंडियां आज भी आकर्षण का केंद्र हैं। कुंडी एक प्रकार का कृत्रिम कुआं है जो अपने जलग्रहण क्षेत्र के बरसाती पानी को अपनी ओर खींच लेता है। राजस्थान के थार क्षेत्र कुंडियों की परंपरा आज भी कायम है। कुंडी मुख्यतः पेयजल का भूमिगत छोटा तालाब होता है जो ऊपर से ढका रहता है। आमतौर पर मिटटी और कहीं–कहीं सीमेंट से बनी कुण्डियां राजस्थान के पश्चिमी शुष्क इलाके में जगह–जगह मिलती हैं। इन क्षेत्रों में कुछ भूजल निकलता भी है तो वह खारा होता है। ऐसी जलवायु में कुंडी स्वच्छ मीठा जल उपलब्ध करती है। कुंडियां सामुदायिक और निजी दोनों प्रकार से बनाई गई हैं। उपलब्ध दस्तावेजों से अनुसार पश्चिमी राजस्थान में पहली कुंडी सन 1607 में वाडी के मेलान गांव के राजा सुरसिंह ने बनवाई थी।

राजस्थान में जल संचय की एक और पारंपरिक व्यवस्था टोबा या नाडी कहलाती है। प्राकृतिक रूप से गहरी हो गई पयतन वाली जगह ही टोबा कहलाती है। ढलान के नीचे की, कम रिसावदार जमीन को टोबा बनाने के लिए चुना जाता है। स्थानीय लोगों और पशुओं को टोबा से पानी की प्राप्ति तो होती ही है, साथ ही इसकी आसपास की जमीन पर उगी घास पशुओं के चारे में काम आती है।

उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड के नौला भी जल संचयन की पारंपरिक तकनीक का उदहारण हैं। नौला भूगर्भ जल संचयन की विधि है जिसमें भूगर्भ जल धरा पर पत्थरों का ढांचा बनाकर जल संग्रह किया जाता है। नौला जल–स्रोत के समीप खुदाई कर बनाए जाते हैं जिसमें लाइम स्टोन की चौकोर स्लेटें बिछाई जाती हैं, और ऊपर से ढांचे को तीनों और से पत्थरों से ढक लिया जाता है। जिस और से जल निकलना होता है उस ओर इसे खुला रखा जाता है। नौले को तीनों ओर तथा ऊपर से इस तरह ढका जाता है कि जल वाष्पित न हो पाए, और पानी का स्तर भी सतत बना रहे। एक नौले में एक से दो हजार लीटर पानी जमा रहता है। आज भी उत्तराखंड के कई गांवों में जलापूर्ति नौलों से होती है जो आस्था का प्रतीक भी माने जाते हैं।

लोगों ने बरसाती पानी पर जीवन निर्भर करना सीख लिया था। सिंचाई के लिए बरसाती पानी संचयन के लिए तालाब कुछ

वर्षाजल संचयन के लिए छोटे टैंक 'टंका' कहलाते हैं।

दक्षिण बिहार में आहर–पइन प्रणाली बहते पानी को घेरने वाले आयताकार बांधयुक्त क्षेत्र और पहाड़ी नदियों के पानी को खेतों तक पहुंचाने का माध्यम है।

ऊंचाई पर बनाए जाते थे। फिर नीची ढलान वाली जमीन पर सिंचाई करके या तालाब के अंदर ही खेती की जाती थी। मध्य प्रदेश की हवेली प्रणाली में मिटटी की किस्म और पारंपरिक फसलोत्पादन का ऐसा संतुलन बनाया गया था कि किसान खेतों में ही पानी घेरकर फसल लायक पर्याप्त नमी बचा लेते थे। किसान बारिश के पानी को रोकने के लिए छोटे बांध बनाते थे जिससे कि पानी रिसकर जम्में के अंदर चला जाता था और शुष्क मौसम में खेती लायक नमी बनी रहती थी।

समुद्र–तटीय इलाकों में समुद्र का खारा पानी नदियों के जल को खारा कर देता है जो कृषि लायक नहीं रहता। समुद्री इलाकों के लोगों ने नदियों को खारे पानी से बचाने के लिए कई तरकीबें निकालीं। गोवा के खजाना इलाके के लोगों ने खारे पानी के प्रवाह को संयमित रखने, अपने धान के खेतों को उनके कुप्रभाव से बचाने और जमीन की उर्वरता को बनाए रखने की प्रणाली विकसित की।

गुजरात के कच्छ के मालधारी घुमंतु लोगों ने मीठे पानी के संग्रहण का एक वैज्ञानिक तरीका विरडा विकसित किया है। कच्छ क्षेत्र में बारिश बहुत कम होती है और भूजल खारा है। मालधारी लोग जानते हैं कि मीठे पानी का घनत्व खारे पानी से कम होता है, इसलिए सैद्धांतिक तौर पर यह संभव है कि संचित मीठे जल को घने खारे पानी के ऊपर तैरते रखा जा सकता है। इस तरकीब से कच्छ जैसे शुष्क इलाके में पीने के पानी के संकट से निजात मिल सकी है और स्थानीय लोगों के पारंपरिक बौद्धिक ज्ञान और जीवन कौशल से मीठे जल के संचयन की प्रणाली भी विकसित कर ली है जिसे 'विरडा' के नाम से जानते हैं।

लद्दाख में शुष्क क्षेत्रों वाली खेती की कल्पना भी मुश्किल होती है और कुछ क्षेत्रफल में खेती होती भी है तो वह बर्फ के पिघलने से आने वाले जल के सोतों पर निर्भर करती है। तमाम मुश्किलों के बावजूद लद्दाख के लोगों ने सिंचाई की एक अद्भुत तकनीक विकसित की है। स्थानीय लोगों ने सोतों के पानी के लिए जल मार्ग तैयार किए हैं, जिनसे होता हुआ सोतों का जल (ग्लेशियर की पिगली बर्फ) तालाब में आ जाता है, जिससे कि खेतों की सिंचाई होती है। इन तालाबों को जिंग कहते हैं। लद्दाखी लोगों के जीवन में जल का इतना महत्त्व है कि सोतों में कपड़े धोने पर पाबंदी है। हिमाचल प्रदेश के लाहौल और स्पीति जिला ठंडी मरुभूमि हैं लेकिन यहां कृषि ही जीवन का मुख्य आधार है। पश्चिमी और मध्यवर्ती हिमालय में सोतों और झरनों के पानी को खेतों और मानव आबादी के प्रयोग में लाने के लिए सदियों से जलमार्ग बनाए जाने की परंपरा रही है, जिन्हें कूल, कुहल या गुहल कहते हैं। स्पीति में कूल से सिंचाई होती है। कूल के माध्यम से ग्लेशियर का पानी मानव आबादी और खेतों तक पहुंचता है। कूल जलमार्ग काफी लंबे, पर्वतीय चट्टानों और ढलानों से गुजरते हैं। कूल सदियों से स्पीति क्षेत्र के खेतों को सिंचित कर रहे हैं। इनकी लम्बाई 15 किमी. तक हो सकती है और इनसे प्रति सेकेंड 15 से 100 लीटर तक पानी का प्रवाह हो सकता है।

दक्षिण बिहार में आहर–पइन प्रणाली प्रचलित थी। आहर बहते पानी को घेरने वाले आयताकार बांधयुक्त क्षेत्र थे, जबकि पइन पहाड़ी नदियों के पानी को खेतों तक पहुंचाने का माध्यम था। आहर तीन ओर से जल से घिरी हुई आयताकार आकार में होती है जिनसे पइन द्वारा जल खेतों तक पहुंचाया जाता है। आहर–पइन व्यवस्था का उपयोग सर्वप्रथम जातक युग में आरंभ हुआ था। इसका उपयोग लोग मिल जुलकर किया करते थे लेकिन निरंतर बाढ़ों के कारण इनका प्राचीन स्वरूप परिवर्तित हो गया है। महाराष्ट्र में फड़ प्रणाली परंपरागत तरीके से जल संचय की उपयुक्त प्रणाली है। इसका इतिहास 300 से 400 वर्ष पुराना है, जब इनका विकास सर्वप्रथम नासिक एवं धुले जिलों में हुआ। महाराष्ट्र के ठाणे एवं कुलाबा में समुद्री ज्वार से आए पानी को खेतों में सिंचाई हेतु बांधों में संरक्षित किया जाता था। इस प्रणाली को शिलोत्री कहते हैं, जिसका प्रारंभ सर्वप्रथम मराठा शासकों द्वारा किया गया।

आज आवश्यकता है कि हम अपनी परंपरागत जल संचयन प्रणालियों को संवारें और जल संचयन से जुड़े सामाजिक कार्यों व शोध अध्ययनों में कालजयी जलीय संरचनाओं को और अधिक बेहतर बनाने पर जोर दें।

(लेखक विज्ञान संचार कार्यों से जुड़े हैं एवं विज्ञान प्रसार में वैज्ञानिक 'ई' के पद पर कार्यरत हैं।)
ई–मेल : nimish2047@gmail.com

जल क्रांति अभियान

जल क्रांति अभियान वर्ष 2015–16 से मनाया जा रहा है। इसका उद्देश्य देश में जल संरक्षण और प्रबंधन को ठोस रूप देना है। इसमें सभी हितभागियों को शामिल करते हुए एक समग्र और समेकित दृष्टिकोण अपनाया जाता है ताकि इसे एक जन–आंदोलन का रूप दिया जा सके। इसका शुभारंभ देशभर में 5 जून, 2015 को किया गया।

जल क्रांति अभियान के लक्ष्य

- जल सुरक्षा और विकास कार्यक्रमों में पंचायती राज संस्थानों और स्थानीय निकायों सहित निचले–स्तर पर सभी हितभागियों की भागीदारी सुदृढ़ करना (अर्थात् भागीदारीपूर्ण सिंचाई प्रबंधन);
- जल–संसाधन संरक्षण और उनके प्रबंधन में परंपरागत ज्ञान अपनाने/उपयोग करने को बढ़ावा देना;
- सरकार, स्वयंसेवी संगठनों, नागरिकों आदि में विभिन्न स्तरों से सेक्टर–स्तरीय विशेषज्ञता का इस्तेमाल करना;
- ग्रामीण क्षेत्रों में जल सुरक्षा के जरिए आजीविका सुरक्षा में वृद्धि करना।

जल क्रांति अभियान के अंतर्गत वित्तपोषण व्यवस्थाएं

यह एक समाभिरूपण (कन्वर्जेंस) कार्यक्रम है और इस अभियान के लिए अलग से धन आवंटन नहीं किया गया है। प्रत्येक जल ग्राम में विभिन्न कार्यों पर व्यय केंद्र/राज्य सरकार के मौजूदा कार्यक्रमों जैसे पीएमकेएसवाई, मनरेगा, जल निकायों का आरआरआर यानी मरम्मत, जीर्णोद्धार और पुनर्जीवन, एआईबीपी आदि के लिए निर्धारित धनराशि में से किया जा रहा है।

कार्यक्रम का कार्यान्वयन

इस कार्यक्रम का क्रियान्वयन जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण मंत्रालय द्वारा किया जा रहा है। मंत्रालय ने दो दिशा–निर्देश जारी किए हैं– प्रथम, सामान्य दिशा–निर्देश और दूसरे कदम–दर–कदम कार्यान्वयन दिशा–निर्देश जिनमें कार्यक्रम को लागू करने के बारे में विस्तृत विवरण दिया गया है। दिशा–निर्देशों के अनुसार राष्ट्रीय–स्तर से ग्राम–स्तर तक 4 स्तरीय कार्यान्वयन समितियों का गठन किया गया है। इसके अतिरिक्त सीडब्ल्यूसी/सीजीडब्ल्यूबी के नोडल अधिकारियों की नियुक्ति सभी राज्यों/संघशासित प्रदेशों में की गई है, जो आवंटित राज्यों/संघशासित प्रदेशों में कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार हैं। इसके साथ ही संयुक्त सचिवस्तर के 10 अधिकारियों का एक समूह मनोनीत किया गया है, जो उन्हें निर्दिष्ट किए गए अपने–अपने क्षेत्रों में कार्यक्रम के सफल कार्यान्वयन पर व्यक्तिगत रूप से निगरानी रखते हैं।

जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण मंत्रालय समय–समय पर राज्य सरकार के अधिकारियों और नोडल अधिकारियों के साथ वीडियो कांफ्रेंसिंग भी संचालित करता है और कार्यक्रमों के कार्यान्वयन पर नियमित रूप से निगरानी रखता है।

निगरानी व्यवस्था

राष्ट्रीय–स्तर पर विशेष सचिव (डब्ल्यूआर, आरडी और जीआर) के अंतर्गत एक राष्ट्रीय–स्तर की समिति है, जो राष्ट्रीय–स्तर पर जल क्रांति अभियान के समग्र कार्यान्वयन की देखरेख करती है। इसी प्रकार राज्यों में संबद्ध राज्य सरकार के प्रधान सचिव की अध्यक्षता में राज्य–स्तरीय निगरानी समिति है, जो राज्य–स्तर पर अभियान के कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार है।

जल क्रांति अभियान के अंतर्गत संचालित गतिविधियां

- **जल ग्राम योजना :** इस अभियान के अंतर्गत जल ग्राम योजना सर्वाधिक महत्वपूर्ण गतिविधियों में से एक है, जिसके तहत प्रत्येक जिले में दो गांवों (जिनमें ऐसे गांवों को वरीयता दी जाती है, जो डार्क ब्लॉक के अंतर्गत आते हो या जिनमें पानी का भीषण संकट हो) का चयन जल ग्रामों के रूप में किया जाता है। जल संरक्षण, जल प्रबंधन और अनुषंगी गतिविधियों के लिए एक समेकित जल सुरक्षा योजना बनाई जा रही है, ताकि पानी का अनुकूलतम और स्थायी इस्तेमाल सुनिश्चित किया जा सके। जल ग्राम योजना के अंतर्गत कार्यों पर अमल करने और निगरानी रखने के लिए प्रत्येक जल ग्राम के लिए गांव/ब्लॉक–स्तर पर एक समिति गठित की जा रही है, ग्राम–स्तरीय समिति के निम्नांकित कार्य होंगे :–
  - (i) जल सुरक्षा योजना तैयार करने के लिए जानकारी प्रदान करना;
  - (ii) कार्यों पर अमल करना;
  - (iii) कार्यों पर निगरानी रखना;
  - (iv) गांव में जल संरक्षण का समर्थन करना;
  - (v) प्रत्येक पखवाड़े में एक बार अवश्य बैठक करना।

- **मॉडल कमान एरिया विकास :** जल क्रांति अभियान के अंतर्गत किसी भी राज्य में करीब 1000 हेक्टेयर क्षेत्र की पहचान एक मॉडल कमान एरिया के रूप में की जाएगी। मॉडल कमान एरिया अपनाने वाले राज्य देश के अलग–अलग भागों से होने चाहिए। उदाहरण के लिए उत्तर प्रदेश, हरियाणा (उत्तर), कर्नाटक, तेलंगाना, तमिलनाडु (दक्षिण), राजस्थान, गुजरात (पश्चिम), ओडिसा (पूर्व), मेघालय (पूर्वोत्तर) आदि। मॉडल कमान एरिया का चयन राज्य में पहले से जारी/मौजूदा सिंचाई परियोजना से किया जाएगा, जिसमें विभिन्न कार्यक्रमों से विकास के लिए धन उपलब्ध हो। मॉडल कमान एरिया का चयन जल संसाधन, नदी विकास और गंगा संरक्षण मंत्रालय द्वारा राज्य सरकारों की सलाह से किया जाएगा।
- **जन–जागरूकता कार्यक्रम :** ''सूचना, शिक्षा और संचार'' के नाम से पहले से जारी कार्यक्रम के अंतर्गत समाज के प्रत्येक वर्ग की जरूरतें पूरी करने के लिए जन–जागरूकता अभियानों की परिकल्पना की गई है, ताकि लोगों की समस्याओं को सुना जा सके और उनका समाधान किया जा सके। इन अभियानों में निम्नांकित बातों पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा :–
  - (i) फेसबुक, ट्विटर आदि सोशल मीडिया का इस्तेमाल, ताकि नागरिकों को शामिल किया जा सके;
  - (ii) रेडियो और टेलीविजन के माध्यम से आम लोगों के लिए जागरूकता कार्यक्रमों का प्रसारण;
  - (iii) जल क्रांति अभियान के बारे में जागरूकता का प्रसार करने के लिए प्रिंट मीडिया (जैसे पुस्तिकाएं, पोस्टर्स और पर्चे) का इस्तेमाल;
  - (iv) निबंध, चित्रकारी और अन्य प्रतिस्पर्धाओं के जरिए बच्चों और वयस्कों में जागरूकता पैदा करने के लिए कार्यक्रम;
  - (v) अंतर्राष्ट्रीय जल उपभोक्ता आदान–प्रदान कार्यक्रम;
  - (vi) नीति योजनाकारों और जनमत संग्रहकर्ताओं को ध्यान में रख कर विशिष्ट गतिविधियां;
  - (vii) जल विकास और प्रबंधन संबंधी महत्वपूर्ण मुद्दों के बारे में सम्मेलनों, कार्यशालाओं का आयोजन और
  - (viii) प्रदूषण उपशमन।

व्यापक जन–जागरूकता कार्यक्रम के अंतर्गत देशभर में जागरूकता कार्यक्रम, प्रशिक्षण/कार्यशालाएं आयोजित की जा रही हैं, ताकि जल संरक्षण और जल प्रबंधन के बारे में ज्ञान का प्रसार किया जा सके। इसके अलावा निबंध प्रतियोगिता और राष्ट्रीय–स्तर के अन्य सम्मेलन भी आयोजित किए जा रहे हैं। रेडियो जिंगल प्रोग्राम भी प्रसारित किए जाते हैं।

- **अन्य गतिविधियां**

इस घटक के अंतर्गत राष्ट्रीय जल नीति, 2012 के अनुरूप राज्यों को राज्य जल नीति तैयार करने के लिए प्रेरित किया जाता है। राज्यों को स्वयं की राज्य जल संसाधन परिषद और राज्य जल नियामक प्राधिकरण स्थापित करने/सुदृढ़ बनाने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाता है।

राष्ट्रीय जल मिशन

राष्ट्रीय जल मिशन (एमडब्ल्यूएम) का मुख्य लक्ष्य ''जल का संरक्षण, बर्बादी कम करना और समेकित जल संसाधन विकास और प्रबंधन के जरिए विभिन्न राज्यों के बीच और किसी भी राज्य के भीतर जल का अधिक समानता पर आधारित वितरण सुनिश्चित करना'' है। राष्ट्रीय जल मिशन के लक्ष्य हासिल करने के लिए चुनी हुई गतिविधियों को समयबद्ध रूप में पूरा करने और चुनी हुई नीतियों का कार्यान्वयन सुनिश्चित करने तथा राज्य सरकारों के साथ विभिन्न स्तरों पर सहमति के जरिए आवश्यक कानून बनाने, दोनों के संदर्भ में दीर्घावधि के स्थायी उपायों पर बल दिया गया है। मिशन के पांच निर्धारित लक्ष्य इस प्रकार हैं :

(क) सार्वजनिक क्षेत्र में जल संबंधी आंकड़ों का एक व्यापक डाटा बेस बनाना और जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभाव का आकलन करना;

(ख) जल संरक्षण, संवर्धन और परिरक्षण के लिए नागरिकों और सरकार की कार्रवाई को प्रोत्साहित करना;

(ग) अत्यधिक दोहन वाले क्षेत्रों सहित पानी की कमी वाले क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करना;

(घ) पानी का किफायत के साथ इस्तेमाल करने में 20 प्रतिशत बढ़ोतरी करना और

(ङ) बेसिन (नदी थाला)–स्तरीय समेकित जल संसाधन प्रबंधन को प्रोत्साहित करना।

लक्ष्य हासिल करने के लिए विभिन्न कार्यनीतियों की पहचान की गई है, जिनकी परिणति हितभागियों के सक्रिय योगदान के साथ जल के स्थायी विकास और सक्षम प्रबंधन के लिए समेकित आयोजना के रूप में होती है। इससे पहले, विश्वसनीय डाटा और जानकारी के आधार पर विकास परिदृश्य और प्रबंधन पद्धतियों की पहचान और आकलन किया जाता है ताकि यह पता लगाया जा सके कि वे जल संसाधनों पर जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों के संदर्भ में कितने स्वीकार्य हैं।

वाटरशेड से जल संरक्षण एवं जल प्रबंधन

–देवाशीष उपाध्याय

केंद्र सरकार बारिश के जल को संरक्षित कर भू–जल स्तर को बढ़ाने तथा बारिश के पश्चात् उपयोग करने के लिए वाटरशेड जैसी कई योजनाओं को संचालित कर रही है। वर्षा जल को जगह–जगह रोककर मृदा संरक्षण के साथ–साथ जल संकट की चुनौती से निपटा जा सकता है। इससे घटते भूजल की समस्या का समाधान भी हो सकता है। केंद्र सरकार, राज्य सरकारों के सहयोग से स्थानीय–स्तर पर जल संरक्षण के लिए कई योजनाएं संचालित कर रही है, परंतु सरकारी योजनाओं की सफलता आम जनमानस की हिस्सेदारी पर निर्भर करती है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि आने वाली पीढ़ियों को स्वच्छ पर्यावरण एवं स्वच्छ जल संसाधन मुहैया करने के लिए सरकारी योजनाओं में आम जनमानस की हिस्सेदारी बढ़ाई जाए। इसके लिए सरकारी के साथ–साथ व्यक्तिगत–स्तर पर जल संरक्षण, मृदा संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रयास किया जाना आवश्यक है।

मनुष्य के शरीर का लगभग 60–70 प्रतिशत भाग जल से निर्मित है। इसी प्रकार समस्त जीव–जंतुओं और पेड़–पौधों की शारीरिक अवसंरचना का लगभग दो–तिहाई हिस्सा जल से निर्मित होता है। जीवन के अस्तित्व के लिए ऑक्सीजन के उपरांत सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवयव जल होने के कारण 'जल को जीवन' की संज्ञा दी गई है। ब्रह्मांड के एकमात्र ग्रह पृथ्वी पर जल होने के कारण जीवन का अस्तित्व है। यद्यपि पृथ्वी के 71 प्रतिशत भाग में जल है परंतु कुल उपलब्ध जल का 97 प्रतिशत खारा जल है और मात्र 3 प्रतिशत जल ही मीठा है जिसमें लगभग 2 प्रतिशत जल ग्लेशियरों एवं बर्फ के रूप में उपलब्ध होने के कारण केवल एक प्रतिशत जल ही मानवीय उपभोग के लायक है। दिन–प्रतिदिन बढ़ती जनसंख्या की मूलभूत जरूरतों को पूरा करने के लिए जल का बड़े पैमाने पर दोहन किया जा रहा है जिसके कारण भू–सतह पर मौजूद जल के साथ ही भूमिगत जल का स्तर नीचे गिरता जा रहा है। तीव्र औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप पर्यावरणीय प्रदूषण बढ़ने के कारण पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है जिससे ग्लेशियर के रूप में जमा मीठा जल बड़े पैमाने पर पिघल कर समुद्र के खारे पानी में मिलता जा रहा है जिससे निकट भविष्य में जल संकट गहराने के कारण जीवन के अस्तित्व पर खतरे की संभावना बढ़ती जा रही है।

प्राकृतिक रूप से जल पदार्थ की तीनों अवस्थाओं ठोस, द्रव और गैस के रूप में पाया जाता है। जल चक्र प्रक्रिया द्वारा निरंतर स्वरूप बदलने से जल का शुद्धीकरण होने के साथ ही साथ स्थान भी परिवर्तित होता रहता है। इसके बावजूद मनुष्य द्वारा अंधाधुंध दोहन एवं दुरुपयोग के कारण जल की उपलब्धता दिन–प्रतिदिन कम होती जा रही है। वैश्विक पर्यावरणविदों के अनुमान के मुताबिक 2025 तक विश्व की लगभग आधी आबादी को शुद्ध पेयजल के अभाव के संकट से जूझने के लिए विवश

होना पड़ेगा। भारत की भौगोलिक और प्राकृतिक अवसंरचना में विभिन्नता होने के कारण देश के कुछ क्षेत्रों में सूखा और कुछ क्षेत्रों में बाढ़ की स्थिति बनी रहती है। जिन क्षेत्रों में वर्षा ऋतु में भारी बारिश होती है और जल संरक्षण का पर्याप्त प्रबंध नहीं होता है, वहां बारिश का मीठा जल नदियों से होते हुए समुद्र के खारे जल में मिल जाता है। इसके साथ ही साथ नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों में बाढ़ के रूप में बड़े पैमाने पर जन–धन की हानि भी पहुंचती है। इतना ही नहीं वर्षा ऋतु के पश्चात् इस क्षेत्र में भी जल का संकट उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण केंद्र सरकार नदियों को जोड़कर बाढ़ग्रस्त क्षेत्र के जल को सूखाग्रस्त क्षेत्र में ले जाने की महत्वाकांक्षी योजना आरंभ कर रही है। यद्यपि कई पर्यावरणविद् विभिन्न तर्कों के साथ इसका विरोध भी कर रहे हैं। केंद्र सरकार बारिश के जल को संरक्षित कर भू–जल स्तर को बढ़ाने तथा बारिश के पश्चात् उपयोग करने के लिए वाटरशेड जैसी कई योजनाओं को संचालित कर रही है।

जल चक्र

पृथ्वी पर बढ़ती जनसंख्या की भौतिक एवं जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विरासत में प्राप्त जल स्रोतों का व्यापक पैमाने पर दोहन करने तथा प्राकृतिक जल के संरक्षण के प्रति उदासीनतापूर्ण रवैये के कारण भूमिगत जल–स्तर गिरने के साथ–साथ कुओं, नदियों, तालाबों, झरनों इत्यादि भूमि सतह पर उपलब्ध जल बड़े पैमाने पर नष्ट अथवा दूषित हो गया। संकीर्ण मानवीय लालसा एवं महत्वाकांक्षाओं के कारण जल स्रोतों का पुनर्नवीनीकरण नहीं हो सका। एकतरफा दोहन, अपव्यय एवं दुरुपयोग के कारण दिन–प्रतिदिन जल संकट गहराता जा रहा है। यद्यपि प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार सूर्य के तापमान एवं वायु के संयुक्त प्रक्रम द्वारा समुद्र तथा भू–सतह पर उपस्थित जल स्रोतों एवं भूमिगत जल, वाष्प के रूप में वाष्पिकृत होकर आसमान में पहुंचता है। जहां बादलों के रूप में संघनित होकर वाष्प ठंडा होकर पुनः जल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। वर्षा ऋतु में पुनः यही जल बारिश के रूप में पृथ्वी पर पहुंचता है। इस प्रक्रिया में जल का शुद्धिकरण होने के साथ ही स्थान परिवर्तित हो जाता है। इस प्रक्रिया द्वारा जल स्रोतों का पुर्ननवीनीकरण स्वतः हो जाना चाहिए, परंतु बारिश में जल संरक्षण की पर्याप्त व्यवस्था के अभाव तथा मनुष्य द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण में कृत्रिम कारकों से असंतुलन पैदा करने के कारण, प्राकृतिक पुनर्नवीनीकरण की यह व्यवस्था छिन्न–भिन्न हो गई है। प्राकृतिक व्यवस्था द्वारा जल शुद्धिकरण की तुलना में जल उपभोग की मात्रा अधिक होने के कारण जल संकट की स्थिति उत्पन्न हो रही है।

वैश्विक आबादी की 18 प्रतिशत जनसंख्या भारत में रहती है जबकि भारत का भू–क्षेत्रफल विश्व का केवल 2.4 प्रतिशत ही है। विश्व में मानव उपभोग के योग्य जल का केवल 4 प्रतिशत भारत में है। देश में प्रतिवर्ष लगभग 4000 घन मि.मी. वर्षा होती है। वर्षा के जल–संचय के अभाव एवं अपव्यय और तेजी से बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति पेयजल की उपलब्धता दिन–प्रतिदिन कम हो रही है। जल संरक्षण के अभाव तथा भू–जल के अंधाधुंध दोहन के कारण बड़े पैमाने पर जल की गुणवत्ता कम होने के साथ ही साथ प्रदूषित होता जा रहा है। जल की बढ़ती मांग के कारण जल संसाधनों पर दबाव बढ़ रहा है। इसलिए सभी जीव–जंतुओं की जल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जल संरक्षण एवं प्रबंधन अति आवश्यक है अन्यथा **'तीसरा विश्वयुद्ध जल के लिए होने की'** संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है।

इसके लिए जल संरक्षण घरेलू–स्तर से लेकर सामुदायिक अथवा सामूहिक–स्तर के साथ–साथ सरकारी–स्तर पर होना आवश्यक है। सरकारी–स्तर पर जल संरक्षण हेतु तो कई योजनाएं संचालित हो रही हैं परंतु व्यक्तिगत–स्तर पर आम जनमानस की उदासीनता के कारण जल अपव्यय पर प्रभावी रोकथाम नहीं लगाई जा सकी।

वाटरशेड प्रबंधन

आज़ादी के पश्चात् सूखे से निपटने के लिए केंद्र सरकार, राज्य सरकारों, जिला प्रशासन एवं स्थानीय प्रशासन के सहयोग से कमांड क्षेत्र विकास कार्यक्रम, सूखा क्षेत्र विकास कार्यक्रम, मरुक्षेत्र विकास कार्यक्रम, भू–सिंचाई कार्यक्रम जैसे कई कार्यक्रमों को संचालित कर जल स्रोतों के विकास एवं सरंक्षण पर बल दे रही थी। जल प्रबंधन द्वारा भूमि की आर्द्रता को बनाए रखने का प्रयास किया जा रहा था। खाद्य फसल के उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ पर्यावरण में संतुलन स्थापित करने के लिए जल प्रबंधन बहुत जरूरी है, परंतु इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में भारी धनराशि व्यय करने के बावजूद जल संकट का स्थाई समाधान नहीं हो पा रहा था। देश का बहुत बड़ा भू–भाग सूखे और बाढ़ से प्रभावित है। वर्षा के जल का बड़े पैमाने पर अपव्यय होता रहता है। परिणामस्वरूप फसल की बर्बादी के साथ–साथ पशु एवं पेड़–पौधे नष्ट होते रहते हैं। भू–जल के अंधाधुंध दोहन के कारण भू–जल स्तर भी प्रतिवर्ष नीचे गिरता जा रहा है। वर्षा के जल के तीव्र बहाव के कारण बड़े पैमाने पर मृदा का कटाव होता है जिससे भूमि की उर्वराशक्ति दिन–प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है जिससे फसल का उत्पादन प्रभावित हो रहा है। इसके साथ ही साथ वन एवं पर्यावरण की स्थिति भी बदतर हो गई है। कृषि वैज्ञानिकों के मुताबिक भूमि, जल और वन के समन्वित एवं समुचित प्रबंधन की सहायता से पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण को संरक्षित किया जा सकता है। इसी के संबंध में श्री हनुमंत राव कमेटी का गठन किया गया। कमेटी ने भूमि संरक्षण, जल प्रबंधन एवं पर्यावरण संरक्षण संबंधित समस्त कार्यक्रमों को एकीकृत कर 'वाटरशेड विकास कार्यक्रम' प्रस्तावित किया। वाटरशेड कार्यक्रम का शुभारंभ 1994–95 में हुआ। इसका मुख्य उद्देश्य

जल संरक्षण एवं मृदा–संरक्षण हेतु वर्षा के जल के बहाव की गति को कम कर, जल में मृदा अवसाद को कम करना तथा वर्षा की बूंदों को भूमि की सतह पर रोककर मिट्टी के कटाव के साथ जल को संरक्षित किया जाना है ताकि भूजल–स्तर बढ़ने के साथ–साथ बाद में इसका उपयोग सिंचाई एवं अन्य कार्यों में किया जाए। सूखा–प्रभावित और मरुस्थलीय क्षेत्रों में वाटरशेड प्रबंधन कार्यक्रम द्वारा फसल एवं पशुधन पर सूखे के प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है। जल संरक्षण द्वारा पारिस्थितिकी संतुलन बनाकर मरुस्थलीयकरण की प्रक्रिया को रोकने में सहायता मिलेगी। वाटरशेड प्रबंधन योजना में जल संरक्षण की परंपरागत तकनीकी के साथ–साथ आधुनिक तकनीकी के प्रयोग पर बल दिया गया है। इसके अंतर्गत सिंचाई में जल की होने वाली बर्बादी पर प्रभावी रोकथाम लगाने के लिए आधुनिक तकनीकी पर बल दिया जा रहा है। पर्वतीय एवं ग्रामीण क्षेत्र के गरीब, पिछड़े और उपेक्षित वर्ग के लोगों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए भी प्रयास किया जा रहा है। वाटरशेड विकास परियोजना की परिधि औसतन 500 हेक्टेयर मानी गई है और प्रति परियोजना पर लगभग 20 लाख रुपये व्यय करने का प्रावधान किया गया है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत वर्षा अश्रित अथवा सूखा–प्रभावित जिले में वर्षा के जल को जगह–जगह संरक्षित करने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। इसकी सफलता के लिए स्थानीय–स्तर पर जिला ग्रामीण विकास अभिकरण के तत्वाधान में जन सहयोग और जन–भागीदारी प्राप्त की जा रही है। इसके क्रियान्वयन में स्वयंसहायता समूह, गैर–सरकारी संगठन, ग्राम पंचायत का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

सरकारी और गैर–सरकारी प्रयासों के बावजूद वाटरशेड योजना के प्रभावी क्रियान्वयन के अभाव के कारण केंद्र सरकार ने 2009–10 में **'एकीकृत वाटरशेड प्रबंधन कार्यक्रम'** आरंभ किया। इस कार्यक्रम की सफलता के लिए आम जनमानस को जोड़ कर सरकारी सहायता से जल संरक्षण एवं प्रबंधन की व्यवस्था की गई। बारहवीं पंचवर्षीय योजना में इस कार्यक्रम के अंतर्गत 29000 करोड़ रुपये व्यय किए जाने का प्रावधान किया गया। यह कार्यक्रम भूमि संसाधन विभाग द्वारा 29 राज्यों में संचालित है। इसके अंर्तगत आम जनमानस को नवीन तकनीकी एवं जागरूकता के माध्यम से स्थानीय–स्तर पर वैज्ञानिक एवं परंपरागत विधा द्वारा जल संरक्षण हेतु प्रोत्साहित किया जा रहा है। चीन के बाद यह विश्व का दूसरा सबसे बड़ा वाटरशेड कार्यक्रम है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना

भारतीय कृषि मानसून पर आधारित होने के कारण जिस वर्ष पर्याप्त वर्षा नहीं होती है, जल के अभाव के कारण फसल का उत्पादन अच्छा नहीं हो पाता है जिसके चलते किसानों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो जाती है। खाद्य पदार्थों की कमी के कारण कीमतें आसमान छूने लगती हैं, जिससे मुद्रास्फीति बढ़ जाती है। देश की 14.2 करोड़ हेक्टेयर कृषि योग्य भूमि के 40 प्रतिशत भू–भाग में कृत्रिम सिंचाई की सुविधा उपलब्ध है, शेष कृषि योग्य भू–भाग मानसून–आधारित वर्षा पर निर्भर करता है। ऐसे में 'प्रति बूंद अधिक फसल' और 'हर खेत को पानी पहुंचाने' के उद्देश्य से प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना आरंभ की गई है। इसके अंर्तगत 2015–16 में अगले पांच वर्षों के लिए 50,000 करोड़ रुपये आवंटित किए गए। इसके अंतर्गत जल संसाधन, नदी विकास, गंगा संरक्षण मंत्रालय, ग्रामीण विकास मंत्रालय तथा कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय वर्षा के जल संचयन एवं संरक्षण, जल संसाधन संवर्धन के लिए संयुक्त रूप से कार्य करेंगे।

वर्षा जल के सरंक्षण द्वारा भूमिगत जल–स्तर बढ़ाने के साथ ही मृदा संरक्षण, सिंचाई सुविधाओं का विस्तार और मनुष्य एवं अन्य जीव–जंतुओं की जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। इसके अंतर्गत देश के समस्त कृषि फार्म में संरक्षित सिंचाई सुनिश्चित करने के साथ–साथ प्रति बूंद अधिक फसल उत्पादन किया जाएगा। इस योजना के अंतर्गत वाटरशेड परियोजना के माध्यम से पानी की बर्बादी को कम करके, आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी द्वारा जल बचत और सटीक सिंचाई द्वारा पानी उपयोग

की दक्षता में सुधार किया जाएगा। देश के प्रत्येक खेत में सिंचाई सुविधाओं के लिए जल संरक्षण और अपव्यय को कम करने पर बल दिया जा रहा है। पी.एम.के.एस.वाई. योजना के अंतर्गत नगरपालिका के पानी की गुणवत्ता में सुधार एवं पुनः उपयोग के लिए आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी का प्रयोग किए जाने की व्यवस्था की गई है।

इसके अंतर्गत नवीन जल स्रोतों के निर्माण के साथ पुराने जल स्रोतों का जीर्णोद्धार कर जल संचयन पर बल दिया जाएगा। ग्रामीण–स्तर पर परंपरागत जल स्रोतों, तालाबों, कुओं आदि जल संग्रहणों की मरम्मत, सुधार और नवीनीकरण कर जल–संचयन की क्षमता बढ़ाकर जल संरक्षण किया जाएगा। पानी के दक्षतापूर्ण परिवहन को बढ़ावा देने के लिए भूमिगत पाईप प्रणाली, पीवोट, रेनगन और अन्य उपकरणों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। आधुनिक तकनीक द्वारा पानी की मात्रा को फव्वारा (स्प्रिंकलर) और बूंद–बूंद सिचांई (ड्रिप इरिगेशन) विधि के प्रयोग द्वारा 30–40 प्रतिशत अतिरिक्त भूभाग की सिंचाई की जा सकती है। प्रचुर भूमिगत जल उपलब्धता क्षेत्र में नलकूप लगाकर सिंचाई को बढ़ावा देने पर बल दिया जा रहा है। केंद्र सरकार ने इस योजना में वर्ष 2016–17 के लिए 5700 करोड़ रुपये का प्रावधान किया है। सिंचाई योजना के लिए नाबार्ड के माध्यम से लगभग 20,000 करोड़ रुपये के सिंचाई फंड सृजित करने का निर्णय लिया गया है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के सफल क्रियान्वयन के लिए योजना को स्थानीय–स्तर पर विकेंद्रीकृत कर दिया गया है। राज्य सिंचाई योजना और जिला सिंचाई योजनाओं को सम्मिलित रूप से स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप पी.एम.के.एस.वाई. से जोड़ दिया गया है तथा राष्ट्रीय संचालन समिति द्वारा इसकी निगरानी की जा रही है। प्रधानमंत्री स्वयं समिति की अध्यक्षता कर रहे हैं तथा विभिन्न मंत्रालयों के केंद्रीय मंत्री एवं प्रतिनिधि इसकी निगरानी कर रहे हैं। नीति आयोग के उपाध्यक्ष की अध्यक्षता में गठित राष्ट्रीय कार्यकारिणी समिति योजना के क्रियान्वयन का नियमित रूप से समन्वय, निगरानी तथा मूल्यांकन करेगी और समय–समय पर सरकार के समक्ष समीक्षा रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी तथा योजना के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन एवं प्रत्येक खेत में पानी पहुंचाने के लिए सुझाव देगी।

नीरांचल राष्ट्रीय वाटरशेड योजना

मृदा अपरदन को रोकने हेतु तथा जल संरक्षण के लिए स्वतंत्रता के पश्चात् कई योजनाओं का संचालन किया गया। वर्ष 2009–10 में केंद्र सरकार ने कई योजनाओं को संकलित कर एकीकृत वाटरशेड प्रबंधन कार्यक्रम आंरभ किया था। विभिन्न कारणों से इसकी व्यापक प्रभावशीलता के अभाव के कारण 7 अक्तूबर, 2015 को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली आर्थिक मामलों की मंत्रीमंडलीय समिति ने वाटरशेड योजना को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाने के लिए विश्व बैक से आर्थिक एवं तकनीकी सहायता प्राप्त 'नीरांचल' परियोजना का अनुमोदन किया। 2016 में राष्ट्रीय वाटरशेड प्रबंधन परियोजना 'नीरांचल' का शुभारंभ किया गया। भारत सरकार ने जल संरक्षण संसाधन की व्यापकता सुनिश्चित करने हेतु वित्तीय सहायता के लिए 14 जनवरी, 2016 को विश्व बैंक से राष्ट्रीय वाटरशेड प्रबंधन परियोजना 'नीरांचल' के लिए एक ऋण समझौते पर हस्ताक्षर किया। देश में अगले 6 वर्षों तक जल संरक्षण की व्यापक परियोजना के क्रियान्वयन के लिए 2142 करोड़ रुपये लागत का अनुमान है जिसका 50 प्रतिशत भारत सरकार और शेष 50 प्रतिशत विश्व बैंक से प्राप्त ऋण द्वारा पूरा किया जाएगा। विश्व बैंक ने 1071 करोड़ रुपये का ऋण 5 वर्ष की अनुग्रह अवधि के साथ 25 वर्ष के लिए प्रदान किया है। नीरांचल परियोजना के अंर्तगत प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना का प्रभावी क्रियान्वयन किया जाएगा। इसमें वर्षा के जल का संरक्षण कर पर्वतीय, पठारी और ग्रामीण क्षेत्रों में जल प्रबंधन किया जाएगा जिसका उपयोग सिचांई के साथ–साथ वन, पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी के संरक्षण में किया जा सकेगा। पूरे देश में वर्षा के जल के अपव्यय को रोकने के लिए ग्रामीण–स्तर पर गड्ढे खोदकर, तालाब एवं पोखरों में जल संग्रहित करने के लिए आधारभूत ढांचे का विकास किया जाएगा।

विश्व बैंक की आर्थिक सहायता पर आधारित नीरांचल परियोजना द्वारा देश के सूखा–प्रभावित राज्यों– आंध्रप्रदेश, तेलंगाना, छत्तीसगढ़, गुजरात, झारखंड़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा और राजस्थान में वाटरशेड गतिविधियों और प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना को आवश्यक आधारभूत संरचना, तकनीकी और आर्थिक संसाधन मुहैया कराने में सहयोग प्रदान करेगी। इसके माध्यम से मितव्ययितापूर्ण सिंचाई सुविधाओं का विकास करने के साथ–साथ आम जनमानस को जागरूक एवं भागीदार बनाया जाएगा। किसानों को जल अपव्यय से बचने के तौर–तरीकों का भी ज्ञान कराया जाएगा।

मृदा संरक्षण

देश में जलवायु एवं भौगोलिक विभिन्नता के कारण विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न प्रकार की मृदा संरचनाएं पाई जाती हैं और उसी के अनुरूप कृषि कार्य होता है। देश के मैदानी क्षेत्र की मृदा काफी उपजाऊ है परंतु बाढ़ के दौरान नदियों में जल के तीव्र बहाव के कारण मिट्टी का भारी पैमाने पर कटाव होता है जिससे उपजाऊ मिट्टी का बड़े पैमाने पर स्थानांतरण हो जाता है। पर्वतीय एवं पठारी क्षेत्र में ढाल होने के कारण वर्षा ऋतु में मिट्टी का कटाव तेजी से होता है। मिट्टी के बिखराव को रोकने के लिए वर्षा की बूंदों को भूमि की सतह पर रोकना पड़ेगा। इससे सतही अप्रवाह को रोककर भूमि में जल का संरक्षण भी हो जाता है। इसके लिए भूमि में ढाल के विपरीत दिशा में समोच्च रेखा पर कृषि कार्य करके, खेतों में पट्टियां बनाकर (स्ट्रिप कोपिंग), भूक्षरणकारी फसलों (मक्का, कपास, आलू, सोयाबीन, बाजरा, मूंग

आदि) की खेती कर किया जा सकता है। ढाल वाले क्षेत्र में समोच्च बांध बनाकर कृषि करने से भूमि की जल–पोषण क्षमता बढ़ जाती है। अत्यधिक ढाल वाली भूमि की लंबाई कम करके, संरचना वेदिका बनाकर, ढाल की तीव्रता को कम कर, बहाव को धीमा किया जा सकता है। समोच्च रेखीय गढ्ढे खोदकर जल–संग्रह किया जाना चाहिए। इससे जल के तीव्र बहाव को नियंत्रित करने के साथ–साथ जल संग्रहण भी होता है। वनस्पति–रहित व क्षरित भूमि पर बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण करने से आसमान से गिरने वाली वर्षा की बूंदों की गति धीमा होने तथा वृक्ष की जड़ों द्वारा मिट्टी को बांधे रखने से मृदाक्षरण नियंत्रित होता है। मैदानी क्षेत्रों में नदियों के जलप्रवाह की तीव्रता को कम करने के लिए बांध और बैराज बनाकर जल संग्रहित किया जाता है और जल को आवश्यकतानुसार विद्युत एवं सिंचाई परियोजनाओं में उपयोग में लाया जाता है। सरकार मृदा सरंक्षण के लिए अनेक कार्यक्रम एवं योजनाएं संचालित कर रही है।

जल संरक्षण

देश की अर्थव्यवस्था में कृषि का बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान है। देश की 70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। परंतु आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकी के विकास के बावजूद देश की अधिकांश कृषि मानसून अथवा वर्षा पर निर्भर करती है। मानसून की अनिश्चितता के कारण फसल उत्पादन में भी अनिश्चितता बनी रहती है। पर्यावरणीय परिवर्तन एवं पारिस्थितिकीय अंसतुलन के कारण मानसून के समय में बदलाव हो रहा है, अर्थात् फसल लगाने के समय जब किसानों को पानी की आवश्यकता होती है, तब सूखा पड़ता है। जब फसल पक कर तैयार हो जाती है, तब वर्षा हो जाती है जिससे खेतों में तैयार फसल बड़े पैमाने पर नष्ट हो जाती है। प्राकृतिक प्रकोप, सूखा और अतिवृष्टि के कारण प्रतिवर्ष किसानों के फसल उत्पादन का 20–25 प्रतिशत भाग नष्ट हो जाता है। फसल उत्पादन के लिए भूमि में नमी की पर्याप्त आवश्यकता होती है जबकि सूर्य के ताप एवं वायु के प्रवाह के कारण बड़े पैमाने पर मिट्टी की नमी वाष्पीकृत हो जाती है। इसलिए वर्ष भर मिट्टी में पर्याप्त नमी बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि वर्षा ऋतु में जल को जगह–जगह रोककर संग्रहित किया जाए जिससे मिट्टी में नमी के साथ–साथ भू–जल स्तर भी बढ़े। बारिश के जल को खेत के ढाल के लम्बवत् बनी नालियों व मेढ़ के बीच एकत्र करके जमीन में सोखा जा सकता है। वर्षा के सतही अप्रवाह एवं छत से बहते पानी के संचय के लिए छोटे–बड़े जलाशय, टैंक एवं गढ्ढे में भरकर वर्षा के जल को बहने से रोका जा सकता है। इन गढ्ढों में रूके जल का उपयोग बाद में सिंचाई एवं पशुओं के लिए किया जा सकता है। टैंक के आकार का निर्धारण स्थान विशेष की प्राकृतिक संरचना, उपलब्ध जल स्रोत एवं सिंचाई की आवश्यकता पर निर्भर करता है।

मनुष्य की भोजन एवं शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति में जल का महत्वपूर्ण स्थान है। जल की समुचित उपलब्धता के बिना कृषि संभव ही नहीं है। भारत में 70 प्रतिशत कृषि मानसून पर निर्भर करती है। जिस वर्ष मानसून अच्छा होता है कृषि की पैदावार अच्छी होती है। पर्यावरणीय एवं वातावरणीय परिस्थितियां दिन–प्रतिदिन प्रतिकूल होती जा रही हैं जिससे मानसून के समयांतराल एवं प्रभावशीलता में विषमता उत्पन्न हो रही है। देश में वर्षा ऋतु में जल संरक्षण की पर्याप्त व्यवस्था के अभाव के कारण मृदा सरंक्षण की समस्या होने के साथ ही वर्षा का शुद्ध और मीठा जल बड़े पैमाने पर नदियों के माध्यम से समुद्र के खारे पानी में मिल जाता है। वर्षा जल को जगह–जगह रोककर मृदा संरक्षण के साथ–साथ जल संकट की चुनौती से निपटा जा सकता है। इससे घटते भूजल की समस्या का समाधान भी हो सकता है। केंद्र सरकार, राज्य सरकारों के सहयोग से स्थानीय–स्तर पर जल संरक्षण के लिए कई योजनाएं संचालित कर रही है, परंतु सरकारी योजनाओं की सफलता आम जनमानस की हिस्सेदारी पर निर्भर करती है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि आने वाली पीढ़ियों को स्वच्छ पर्यावरण एवं स्वच्छ जल संसाधन मुहैया करने के लिए सरकारी योजनाओं में आम जनमानस की हिस्सेदारी बढ़ाई जाए। इसके लिए सरकारी के साथ–साथ व्यक्तिगत–स्तर पर जल संरक्षण, मृदा संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण के लिए प्रयास किया जाना आवश्यक है।

(लेखक खाद्य सुरक्षा एवं औषधि प्रशासन, हाथरस (उत्तर प्रदेश) में अभिहित अधिकारी हैं)

ई मेल : dewashishupadhy@gmail.com

Mc Graw Hill Education

UPSC सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा 2018

1985 से अब तक सर्वश्रेष्ठ

₹ 1595/-

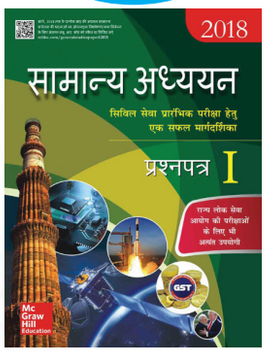

ISBN: 9789352607433

सामान्य अध्ययन प्रश्नपत्र I 2018: मुख्य विशेषताएं

- प्रस्तुत पुस्तक में निहित विषयों में स्थित आंकड़ों के समायोजन में विभिन्न, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय रिपोर्टों, बजट 2017-18, आर्थिक सर्वेक्षण 2016-17 आदि महत्वपूर्ण घटकों का अटूट सहयोग
- जून 2017 में संपन्न सिविल सेवा की प्रारंभिक परीक्षा के प्रश्नपत्र के प्रश्न प्रवृत्ति का विश्लेषणात्मक विवेचन एवं उनका व्याख्या सहित स्पष्ट हल
- राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय महत्व की समसामयिक घटनाओं को सिविल सेवा परीक्षा के अनुरूप ढालने का एक सफल प्रयास
- प्रस्तुत पुस्तक के प्रत्येक भाग में विकल्पीय प्रश्नों में अवधारणात्मक प्रवृति वाले प्रश्नों का व्यापक रूप से समावेश

₹ 995/-

ISBN: 9789352607440

सामान्य अध्ययन प्रश्नपत्र II 2018: मुख्य विशेषताएं

- सिविल सेवा प्रारंभिक परीक्षा के अद्यतन प्रारूप के आधार पर 15 नए मानक अभ्यास प्रश्नपत्रों का समावेश
- जून ,2017 के नवीनतम प्रश्नपत्र को शामिल करते हुए 2013-17 तक के पूर्व वर्षों के प्रश्नपत्रो का व्याख्या सहित विश्लेषण
- प्रत्येक खंड में सूक्ष्म विधियों का समावेश जो अभ्यर्थियों की सफलता हेतु अत्यंत आवश्यक
- स्वमूल्यांकन हेतु विविधता से ओतप्रोत वाले प्रश्नों की सार–संचयिका
- लेखन शैली एवं अभ्यर्थियों को समझाने में सहज, सरल एवं सुबोध भाषा शैली का प्रयोग

Prices are subject to change without prior notice.

सामान्य अध्ययन (प्रश्नपत्र I और II 2018)

के नि:शुल्क प्रश्नपत्र प्राप्त करने के लिए पंजीकृत करें

www.mheducation.co.in/upscsamplepapers

मेक्ग्रॉ हिल एजुकेशन (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड

SHIPPING FREE Above ₹ 500/-

टोल फ्री नं.: 1800 103 5875 | ई-मेल: reachus@mheducation.com | खरीदें @ www.mheducation.co.in

संपर्क करें@ /McGrawHillEducationIN /MHEducationIN /Company/McGraw-Hill-Education-India /McGrawHillEducationIndia

भूजल का गिरता स्तर : सरोकार एवं समाधान

–डॉ. प्रदीप कुमार मुखर्जी

भूजल की वर्तमान स्थिति को सुधारने के लिए भूजल का स्तर और न गिरे, इस दिशा में काम किए जाने के अलावा उचित उपायों से भूजल संवर्धन की व्यवस्था हमें करनी होगी। इसके अलावा, भूजल पुनर्भरण तकनीकों को अपनाया जाना भी आवश्यक है। वर्षा जल संचयन (रेनवॉटर हार्वेस्टिंग) इस दिशा में एक कारगर उपाय हो सकता है। हाल के वर्षों में, सुदूर संवेदन उपग्रह–आधारित चित्रों के विश्लेषण तथा भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) द्वारा भूजल संसाधनों के प्रबंधन में मदद मिली है। भूजल की मॉनीटरिंग एवं प्रबंधन में भविष्य में ऐसी समुन्नत तकनीकों को और बढ़ावा दिए जाने की आवश्यकता है।

जल हमारे ग्रह पृथ्वी पर एक आवश्यक संसाधन है। इसके बगैर जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यही कारण है कि खगोलविद् पृथ्वी–इतर किसी अन्य ग्रह पर जीवन की तलाश करते समय सबसे पहले इस बात की पड़ताल करते हैं कि उस ग्रह पर जल मौजूद है या नहीं। 'जल ही जीवन है' 'जल है तो कल है' तथा 'जल जो न होता तो जग खत्म हो जाता' जैसी उक्तियों के माध्यम से हम जल की महत्ता को ही स्वीकारते हैं। पृथ्वी का तीन चौथाई यानी 75 प्रतिशत भाग जल से आच्छादित है लेकिन इसमें से पीने योग्य स्वच्छ जल की मात्रा बहुत कम है।

पृथ्वी का लगभग 97.2 प्रतिशत जल सागरों, महासागरों में समाया है। 2.15 प्रतिशत बर्फ के रूप में ग्लेशियरों में मौजूद है, 0.6 प्रतिशत भूमिगत या भौम जल के रूप में तथा 0.01 प्रतिशत नदियों और झीलों में एवं 0.001 प्रतिशत वायुमंडल में मौजूद है। पृथ्वी पर जल 386X10 घन किलोमीटर जल भंडार मौजूद है। यूनेस्कों की सन 1994 की एक रिपोर्ट के अनुसार इसमें से ताजे, स्वच्छ जल की मात्रा केवल 35.03 x 10^6 घन किलोमीटर है। यह पृथ्वी पर मौजूद कुल जलभंडार का मात्र 0.01 प्रतिशत है।

जल का उपयोग बहते हुए जल, रूके हुए जल या भूमिगत या भूजल के विभिन्न रूपों में होता है। नदी–नाले, झील आदि बहते हुए जल के उदाहरण हैं। नदी पर बांध बनाकर हम इसका उपयोग विभिन्न तरीकों से कर सकते हैं। पाइप लाइनों द्वारा जल की आपूर्ति करना तथा तालाब से जल प्राप्त करना रुके हुए जल के उपयोग के उदाहरण हैं। भूजल, जिसे भूमिगत या भौमजल कहना ही उचित है, जमीन के अंदर होता है। भूमिगत जल स्रोत का इस्तेमाल कुओं की खुदाई अथवा हैंडपंपों और ट्यूबवेलों द्वारा भी किया जा सकता है। तालाबों और कुंओं में एक विशेष अंतर यह होता है कि जहां कुओं द्वारा केवल भूमिगत जलस्रोत का ही उपयोग होता है वहीं तालाबों में भूमिगत जल के अलावा बाहरी जल का जमाव भी हो जाता है। यह बाहरी जल वर्षा का जल हो सकता है और बाढ़ या नदी का बरसाती जल भी।

जल का उपयोग पेयजल तथा सिंचाई, पशुपालन, परिवहन, उद्योग, जलविद्युत उत्पन्न करने तथा मत्स्य पालन आदि विभिन्न कार्यों में होता है। पेयजल, सिंचाई तथा उद्योगों में भूमिगत जल यानी ग्राउंड वॉटर का व्यापक तौर पर इस्तेमाल होता है। गांवों में, जहां आज भी 80 प्रतिशत लोगों को नल का पानी उपलब्ध नहीं है, पेयजल के लिए भूमिगत जल पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इसे कुओं, हैंडपंपों तथा ट्यूबवेलों द्वारा प्राप्त किया जाता है। भारत में कृषि कार्य के लिए किसान भूमिगत जल पर ही निर्भर हैं। इस समय देश में 50 प्रतिशत से भी अधिक सिंचाई भूमिगत जल से होती है। उद्योगों में भी भूमिगत जल की बड़ी मांग है। खाद्य प्रसंस्करण (फूड प्रोसेसिंग) से लेकर वस्त्र उद्योगों तक में भूमिगत जल का व्यापक रूप से इस्तेमाल होता है।

भारत में भूमिगत जल का इतिहास

भूमिगत जल का इस्तेमाल कोई नया नहीं है। भारत में प्रागैतिहासिक काल से भूमिगत जल का इस्तेमाल हो रहा है। कुएं जलापूर्ति के महत्वपूर्ण साधन रहे हैं। मत्स्य पुराण में भी कुआं खोदे जाने का उल्लेख है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ों की खुदाई से पता चला है कि 3000 ई.पू. में सिंधु घाटी सभ्यता के लोगों ने ईंटों से कुओं का निर्माण किया था। मौर्यकाल में भी ऐसे कुओं का उल्लेख मिलता है। चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल (300 ई.पू.) के दौरान कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी रहट के जरिए कुओं से सिंचाई का विवरण प्राप्त होता है। वराहमिहिर की 'बृहद् संहिता' नामक ग्रंथ में भूमिगत जल के स्रोतों का पता लगाने की विभिन्न विधियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ में विशेष रूप से इस बात का उल्लेख किया गया है कि कैसे पौधों, दीमक की बांधियों तथा मृदा एवं चट्टानों से जमीन के नीचे के पानी यानी भूमिगत जल के बारे में संकेत प्राप्त होता है। आज भी जल वैज्ञानिक मिट्टी की विशेषताओं, पेड़ों एवं झाड़ियों तथा जड़ी–बूटियों आदि की मौजूदगी से भूमिगत जल की मौजूदगी का पता लगाते हैं।

आधुनिक युग में, ब्रिटिशकाल के दौरान सन् 1900 में सिंचित भू–क्षेत्र का क्षेत्रफल 1.3 करोड़ हेक्टेयर था। इसमें से 40 लाख हेक्टेयर की सिंचाई भूमिगत जल से की जाती थी। इस प्रकार कुल सिंचाई जल का लगभग 30 प्रतिशत भूमिगत जल द्वारा प्राप्त किया जाता था। सन् 1901 में उस समय के वायसराय लार्ड कर्बन ने सर कोलिन स्कॉट मॉनक्रेफ की अध्यक्षता में एक व्यापक सिंचाई आयोग का गठन किया। सन् 1903 में इस प्रथम सिंचाई आयोग ने सिंचित भू–क्षेत्र को 26 लाख हेक्टेयर तक बढ़ाने की अनुशंसा की। उल्लेखनीय है कि यह सिंचित क्षेत्र सन् 1947 तक बढ़कर 22 मिलियन हेक्टेयर हो गया। सिंचाई में सतही जल के साथ भूमिगत जल का उपयोग बराबर किया जाता रहा। सन् 1947 में सतही एवं भूमिगत जल द्वारा सिंचित भू–क्षेत्र के परिमाण लगभग बराबर थे।

यह सब अपने आप नहीं हुआ बल्कि भूमिगत जल विकास तथा इसकी मॉनीटरिंग एवं प्रबंधन द्वारा ही संभव हुआ। सिंचाई के लिए भूमिगत जल के बड़े पैमाने पर विकास के लिए सन् 1934 में उत्तर प्रदेश के मेरठ क्षेत्र में गंगा घाटी की सिंचाई के लिए 1500 गहरे ट्यूबवैल लगवाने की परियोजना बनी। इससे भूमिगत जल विकास कार्य को बहुत बढ़ावा मिला।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, सन् 1954 में केंद्रीय कृषि विभाग के अंतर्गत एक्सप्लोरेटरी ट्यूबवेल्स ऑर्गेनाइजेशन (ईटीओ) की स्थापना की गई। भारतीय भूवैज्ञानिक सर्वेक्षण (जिओलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया–जीएसआई) के भूमिगत जल प्रभाग यानी ग्राउंडवॉटर विंग के साथ मिलकर ईटीओ ने भूमिगत जल के विकास, अन्वेषण एवं प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी आरंभ की। सन् 1972 में जीएसआई के भूमिगत जल प्रभाग के ईटीओ के साथ विलय द्वारा केंद्रीय भूजल बोर्ड (सेंट्रल ग्राउंडवाटर बोर्ड–सीजीडब्ल्यूजी) की स्थापना हुई।

भूमिगत जल के सर्वेक्षण, अन्वेषण, मॉनीटरिंग तथा प्रबंधन के क्षेत्र में केंद्रीय भूजल बोर्ड की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। राज्य भूजल विभाग सीजीडब्ल्यूबी के प्रयासों के पूरक रहे हैं। अपने–अपने राज्यों में इन विभागों ने सर्वेक्षण, अन्वेषण तथा जांच संबंधी कार्यों को अंजाम दिया है।

इस सब प्रयासों के बावजूद भूमिगत जल के स्तर जिसे वॉटर टेबल भी कहते हैं, ये गिरावट देखने को मिल रही है। इसके पीछे अनेक कारण हैं। आइए, इन पर चर्चा करते हैं।

भूमिगत जल का गिरता स्तर–कारण क्या हैं?

तेजी से बढ़ती जनसंख्या, बढ़ता औद्योगिकीकरण, फैलते शहरीकरण के अलावा ग्लोबल वार्मिंग से उत्पन्न जलवायु परिवर्तन भी इसके लिए जिम्मेदार हैं।

सन् 1901 में हुई प्रथम जनगणना के समय भारत की जनसंख्या 23.8 करोड़ थी जो सन् 1947 यानी स्वतंत्रता प्राप्ति के समय बढ़कर 400 करोड़ हो गई। सन् 2001 में भारत की जनसंख्या 103 करोड़ थी। इस समय देश की जनसंख्या 130 करोड़ (1.30 अरब) है। एक अनुमान के अनुसार सन् 2025 तक भारत की जनसंख्या 139 करोड़ तथा सन् 2050 तक 165 करोड़ तक पहुंच जाएगी। इस बढ़ती जनसंख्या का पेयजल खासकर भूमिगत जल पर जबर्दस्त दबाव पड़ेगा।

बढ़ती आबादी के कारण जहां जल की आवश्यकता बढ़ी है वहीं प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता भी समय के साथ कम होती जा रही है। कुल आकलनों के अनुसार सन 2000 में जल की आवश्यकता 750 अरब घन मीटर (घन किलोमीटर) यानी 750 जीसीएम (मिलियन क्यूबिक मीटर) थी। सन् 2025 तक जल की यह आवश्यकता 1050 जीसीएस तथा सन् 2050 तक 1180 बीसीएम तक बढ़ जाएगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय देश में प्रति व्यक्ति जल की औसत उपलब्धता 5000 घन मीटर प्रति वर्ष थी। सन् 2000 में यह घटकर 2000 घन मीटर प्रति वर्ष रह गई। सन् 2050 तक प्रति व्यक्ति जल की उपलब्धता 1000 घन मीटर प्रति वर्ष से भी कम हो जाने की संभावना है।

स्पष्ट है कि बढ़ती जनसंख्या के कारण जल की उपलब्धता कम हो जाने के चलते भूमिगत जल पर भी दबाव बढ़ा जिसका परिणाम इसके गिरते स्तर के रूप में सामने आया।

बढ़ते औद्योगिकीकरण तथा गांवों से शहरों की ओर तेजी से पलायन तथा फैलते शहरीकरण ने भी अन्य जल स्रोतों के साथ भूमिगत जल स्रोत पर भी दबाव उत्पन्न किया है। भूमिगत जल–स्तर के तेजी से गिरने के पीछे ये सभी कारक भी जिम्मेदार रहे हैं।

जल प्रदूषण की समस्या ने बोतलबंद जल की संस्कृति को जन्म दिया। बोतलबंद जल बेचने वाली कंपनियां भूमिगत जल का जम कर दोहन करती हैं। नतीजतन, भूजल–स्तर में गिरावट आती

है। गौरतलब है कि भारत बोतलबंद पानी का दसवां बड़ा उपभोक्ता है। हमारे देश में प्रति व्यक्ति बोतलबंद पानी की खपत पांच लीटर सालाना है जबकि वैश्विक औसत 24 है। देश में सन् 2013 तक बोतलबंद जल का करोबार 60 अरब रुपये था। सन् 2018 तक इसके 160 अरब हो जाने का अनुमान है।

पहले तालाब बहुत होते थे जिनकी परंपरा अब लगभग समाप्त हो चुकी है। इन तालाबों का जल भूगर्भ में समाहित होकर भूजल को संवर्द्धित करने का कार्य करता था। लेकिन, बदलते समय के साथ लोगों में भूमि और धन–संपत्ति के प्रति लालच बढ़ा जिसने तालाबों को नष्ट करने का काम किया। वैसे वर्षा का क्रम बिगड़ने से भी काफी तालाब सूख गए। रही–सही कसर भू–माफियाओं ने पूरी कर दी। उन्होंने तालाबों को पाटकर उन पर बड़े–बड़े भवन खड़े कर दिए अथवा कृषिफार्म बना डाले।

धरातल से विभिन्न स्रोतों से प्राप्त जल के भूगर्भ में पहुंचने के कारण ही भूजल की सृष्टि होती है। इन स्रोतों में एक है वर्षा का जल जो पाराम्य शैलों से होकर रिस–रिस कर अंदर पहुंचता है। शैल रंध्रों में भी जल एकत्रित होता है। जब कोई शैल पूर्णतया जल से भर जाती है तो उसे संतृप्त शैल कहते हैं। शैल रंध्रों के बंद हो जाने से जल रिसकर नीचे नहीं जा पाता है। इस प्रकार जल नीचे न रिसने के कारण जल एकत्रित हो जाता है। यही एकत्रित जल जलभृत यानी ऑक्विफर कहलाता है।

ग्लोबल वार्मिंग से उत्पन्न जलवायु परिवर्तन से वर्षा का जल–चक्र गड़बड़ा गया है जिससे वर्षा की मात्रा कम हो गई है। दूसरी ओर, वृक्षों को अंधाधुंध काटने से वनक्षेत्र कंक्रीट के जंगलों में तब्दील होते जा रहे हैं। नतीजन वर्षा का जल भूमि के अंदर समाहित नहीं हो पाता है जो खारा होने के कारण किसी काम का नहीं रह जाता।

जंगलों के कटने से धरती का हर साल एक प्रतिशत क्षेत्रफल रेगिस्तान में तब्दील होता है। खाना पकाने के लिए जलावन लकड़ी काटने के कारण मृदा की नमी घट रही है जिस कारण भी भूजल–स्तर तेजी से गिर रहा है।

पहाड़ी क्षेत्रों में स्थिति और भी विकट है। वहीं हर साल वनों में लगने वाली आग से करोड़ों की वन संपदा तो नष्ट होती ही है, प्राकृतिक जल स्रोत भी सूख जाते हैं। भूमि के अंदर जल भंडारण न होने के कारण भूजल–स्तर बुरी तरह से प्रभावित होता है। पहाड़ों में अधिकांश वनभूमि चीड़ के पेड़ों से आच्छादित होती है। इस कारण वर्षा का जल ठीक से भूमि के अंदर अवशोषित नहीं हो पाता है। यही नहीं, चीड़ के पेड़ों के और भी नुकसान हैं। गर्मियों में चीड़ के पेड़ों में आग लग जाती है जिससे करोड़ों की वन–संपदा तो नष्ट होती ही है, कई पारंपरिक जल स्रोत भी सूख जाते हैं। यह परोक्ष रूप से भूजल–स्तर को प्रभावित करता है। चीड़ के पेड़ विद्युत के सुचालक भी होते हैं। अतः चीड़ के वनों के निकट ही बादल फटने की अधिक घटनाएं होती हैं। इस प्रकार भूजल के गिरते स्तर के पीछे अनेक कारण हैं। अब विभिन्न राज्यों में भूजल की स्थिति क्या है इसकी चर्चा करते हैं।

विभिन्न राज्यों में भूजल की स्थिति

हालांकि पिछले कुछ दशकों से भूजल विकास की दिशा में केंद्रीय भूजल बोर्ड तथा राज्य भूजल संगठनों (सीजीजएसजीओ) ने भी अनेक कदम उठाए हैं, लेकिन देश में भूजल विकास की समग्र स्थिति मुश्किल से 58 प्रतिशत है। भूजल दोहन की स्थिति विभिन्न राज्यों में अलग–अलग पाई गई है। कुछ राज्यों में भूजल की स्थिति यह है कि इसका पूरी तरह से इस्तेमाल नहीं हो पाता है जबकि कुछ अन्य राज्यों में अति–दोहन की स्थितियां उत्पन्न हो गई हैं। उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, असम, बिहार, त्रिपुरा, केरल तथा मध्य प्रदेश उन राज्यों के उदाहरण हैं जिनमें भूजल का पूर्ण रूप से दोहन ही नहीं हो पाता है। इसके विपरीत, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, तमिलनाडु, कर्नाटक तथा उत्तर प्रदेश में भूजल के अतिदोहन से पर्यावरणीय संकट की स्थिति उत्पन्न हो गई है। खासकर, पंजाब राज्य के रोपड़, फतेहगढ़ साहिब, लुधियाना, गुरदासपुर, नवांराहर, जालंधर, पटियाला, संगरूर, अमृतसर, फिरोजपुर, मोंगा, मनसा, कपूरथला तथा फरीदकोट जिले, जो राज्य के 90 प्रतिशत क्षेत्र में आते हैं, में भूजल का अति–दोहन हुआ है। इसी प्रकार हरियाणा राज्य के निम्नलिखित जिलों में भूजल का अति–दोहन हुआ है; कुरुक्षेत्र, महेंद्रगढ़, पानीपत, रिवाड़ी, करनाल, कैथल, गुड़गांव, भिवानी, यमुनानगर, फतेहाबाद, और सोनीपत।

भूजल के अति दोहन ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया है। दरअसल, भूजल का उपयोग बैंक में जमापूंजी की तरह किया जाना चाहिए। अमर बैंक से जमाधन से अधिक धनराशि आहरित होगी तो क्या होगा? चेक सीधे–सीधे बाउंस हो जाएगा। इसी प्रकार धरती के अंदर जितना जल संरक्षित हो, उसी हिसाब से ही निकासी होनी चाहिए। वर्तमान में, भूमि के अंदर जल तो कम संग्रहित हो

रहा है और विभिन्न माध्यमों से इसकी निकासी अधिक हो रही है। जिस प्रकार टंकी से पानी निकाले जाने पर उसका स्तर कम होता जाता है ठीक उसी प्रकार अति–दोहन से भूजल–स्तर भी नीचे गिरता जा रहा है।

भूजल के अति–दोहन से उत्पन्न समस्याएं

भूजल के अत्यधिक दोहन या दुरुपयोग से अनेक समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। अति–दोहन के परिणामस्वरूप भूजल स्तर में कमी तो हो ही रही है इससे उथले कुओं के सूख जाने की परेशानी भी उत्पन्न हो रही है। साथ ही इससे भूजल में समुद्री जल के प्रवेश से यह खारा हो रहा है तथा प्रदूषणकारी तत्वों के कारण यह जल संदूषित भी हो रहा है।

भूजल की निकासी कुओं और हैंडपंपों के अलावा ट्यूबवेलों के माध्यम से भी की जाती है। ट्यूबवेलों से पानी की निकासी काफी गहराई से भी की जा सकती है। लेकिन ट्यूबवेल उथले या कम गहराई के कुओं को प्रभावित करते हैं क्योंकि इन कुओं का पानी ट्यूबवेल में चला जाता है। परिणामस्वरूप, उथले या कम गहराई तक खुदे कुएं सूख जाते हैं। अधिकांश किसानों के कम गहराई वाले कुएं खुदे होते हैं। इन कुओं के सूखने से किसानों की फसल नष्ट हो जाती है और वे भुखमरी के कगार पर पहुंच जाते हैं।

समुद्र किनारे बसे गुजरात आदि राज्यों में गहरे कुएं खोदने से भूजल में समुद्र का खारा पानी प्रवेश कर जाता है। जीना तो दूर ऐसा पानी तो सिंचाई योग्य भी नहीं रह जाता। भूजल के अधिक दोहन से नदियां सूख रही हैं तथा नदी किनारे के वृक्ष मर रहे हैं। ऐसा माना जाता है कि भूजल के अति–दोहन के कारण गुजरात में साबरमती नदी सूखती जा रही है।

ट्यूबवेलों के द्वारा अधिक गहराई से पानी खींचे जाने के कारण धरती के गर्भ में पड़े हानिकारक रसायन आर्सेनिक, फ्लोराइड आदि ऊपर आ जाते हैं जो भूजल को प्रदूषित कर रोगों को जन्म देते हैं।

थोड़ी मात्रा में फ्लोराइड हमारे दांतों एवं हड्डियों के विकास के लिए आवश्यक होता है। दांतों की ऊपरी परत एनामेल का निर्माण फ्लोराइड ही करता है। शरीर में फ्लोराइड की 0.5 से 1.0 पीपीएम (पार्ट्स पर मिलियन यानी भाग प्रति दस लाख) मात्रा मान्य है। लेकिन अगर इसकी मात्रा। पीपीएम से अधिक हो जाए तो यह दांतों और हड्डियों के लिए हानिकारक होता है। अधिक फ्लोराइड के कारण दांत खराब हो जाते हैं तथा इससे रीढ़, टांगों, पसलियों और खोपड़ी की हड्डियां भी प्रभावित होती हैं। अधिक फ्लोराइड के कारण होने वाले इस रोग को फ्लोरोसिस कहते हैं।

आर्सेनिक भी स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। आरंभिक लक्षणों के रूप में अतिसार वमन, शरीर में ऐंठन आदि देखने को मिल सकता है। यह फेफड़ों, किडनी, लीवर तथा त्वचा को प्रभावित करता है। इससे किडनी और लीवर का कैंसर भी हो सकता है।

भूजल में नाइट्रेट की उपस्थिति भी शरीर के लिए हानिकारक है। यह कैंसरकारक है तथा इसके कारण छोटे बच्चों में साइनोसिस नाम का रोग होता है जिसके असर से बच्चों की त्वचा नीली पड़ जाती है। इसलिए, इसे बच्चों का 'नीला रोग' (ब्लू बेबी सिंड्रोस) भी कहते हैं। यह मवेशियों को भी प्रभावित करता है जिससे उनके दुग्ध उत्पादन में भारी कमी आ जाती है।

भूजल में कैडमियम, सरकारी (पारा), लेड (सीसा) तथा कॉपर (तांबा) आदि भारी धातुएं भी मौजूद होती हैं। ये शरीर में तरह–तरह की बीमारियों को जन्म देते हैं।

इस प्रकार देश में भूजल की स्थिति काफी गंभीर एवं चिंताजनक है। इस दिशा में शीघ्र ही जरूरी कदम उठाए जाने की आवश्यकता है। कुछ सुझाव भी हैं जिनका पालन करने से भू–जल के स्तर एवं गुणवत्ता में सुधार लाया जा सकता है। लेकिन इससे पहले सरकारी निकायों द्वारा उठाए गए कदमों के बारे में संक्षिप्त जानकारी हासिल करना उपयोगी होगा।

भूजल की मॉनीटरिंग एवं प्रबंधन में सरकारी पहल

जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है, सन् 1972 में केंद्रीय भूजल बोर्ड (सीजीडब्ल्यूबी) के गठन से ही भूजल की मॉनीटरिंग एवं प्रबंधन की दिशा में सरकारी पहल की शुरुआत हुई। इस कार्य हेतु देश भर में सीजीडब्ल्यूबी द्वारा स्थापित 15,000 नेटवर्क स्टेशन तथा राज्य भूजल विभाग द्वारा स्थापित 30,000 पर्यवेक्षीय कूपों द्वारा सतत रूप से भूजल की मॉनीटरिंग की जाती है। इस प्रकार प्राप्त डाटा का इस्तेमाल भूजल भंडारण में होने वाले परिवर्तन, दीर्घकालिक जल–स्तर की प्रकृति तथा पानी की गुणवत्ता में लंबे समय से हो रहे उतार–चढ़ाव का अध्ययन करने के लिए किया जाता है।

हालांकि भारतीय संविधान की सातवीं अनुसूची की सूची–2 की प्रविष्टि 17 के अनुसार जलापूर्ति का विकास राज्य का विषय है। सन् 1970 में कृषि मंत्रालय ने भूजल संसाधन के विनियमन (रेगुलेशन) और विकास के लिए एक मॉडल बिल तैयार किया था। इस बिल, जिसमें समय–समय पर संशोधन किए जाते हैं, को सीजीडब्ल्यूबी ने सन् 1970 के दशक के शुरु में सब प्रसारित–प्रचारित किया था। इस बिल में भूजल प्राधिकरण के गठन का प्रावधान शामिल था। अधिसूचित क्षेत्रों में भूजल के निष्कर्ष एवं उपयोग के लिए एक लाइसेंसिंग निकास को स्थापित किए जाने का प्रावधान भी इस बिल में मौजूद था। अधिसूचित क्षेत्रों में विद्यमान भूजल उपभोक्ताओं के पंजीकरण की व्यवस्था भी इस बिल में थी। कुछ प्रावधानों के उल्लंघन की स्थिति में इस बिल में जुर्माने की व्यवस्था भी थी। लेकिन, भूजल राज्य का विषय होने के कारण केंद्र द्वारा इस बिल के प्रावधानों का एक सीमा के बाद सख्ती से पालन कर पाना संभव नहीं हो पाया।

इसका संज्ञान लेते हुए शीर्षस्थ न्यायालय के निर्देशों के अनुपालन के लिए पर्यावरण और वन मंत्रालय ने पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 (1986 का 29) के अंतर्गत केंद्रीय जल प्राधिकरण बोर्ड का गठन किया। इसका उद्देश्य भूजल प्रबंधन एवं विकास का

विनियमन तथा नियंत्रण था।

सतही एवं भूजल की गुणवत्ता से संबंधित पर्यावरणीय मुद्दों से निपटने के लिए पर्यावरण और वन मंत्रालय ने 29 मई, 2001 की जल गुणवत्ता आकलन प्राधिकरण का गठन किया जिसकी गजेट अधिसूचना 22 जून, 2001 को प्रकाशित की गई। इस प्राधिकरण को सतही और भूजल दोनों जल संसाधनों की गुणवत्ता की स्थिति की समीक्षा तथा आवश्यक कार्रवाइयों के लिए महत्वपूर्ण स्थानों यानी 'हॉट स्पाट्स' का पता लगाने का अधिकार प्राप्त है।

गौरतलब है कि सन् 1995 में भारत सरकार ने विश्व बैंक द्वारा वित्तपोषित राष्ट्रीय जलविज्ञान परियोजना को आरंभ किया था जिसका उद्देश्य एक जलविज्ञान सूचना प्रणाली का सृजन करना था।

विनियमन द्वारा भूजल दोहन के नियंत्रण तथा सतही एवं भूजल के समेकित एवं समन्वित विकास के लिए पहली राष्ट्रीय जल नीति सन् 1987 में स्वीकार की गई। नई राष्ट्रीय जलनीति अप्रैल 2002 में आई। इसका प्रारूप राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद् द्वारा गठित कार्यवाही दल द्वारा तैयार किया गया था।

भूजल के संवर्धन तथा उसकी गुणवत्ता में सुधार हेतु

भूजल की वर्तमान स्थिति को सुधारने के लिए भूजल का स्तर और न गिरे, इस दिशा में काम किए जाने के अलावा उचित उपायों से भूजल संवर्धन की व्यवस्था हमें करनी होगी।

कुओं और ट्यूबवेलों की गहराई निश्चित करनी होगी। लगभग 400 फुट (120 मीटर) तक ही ड्रीलिंग की जानी चाहिए। लेकिन जल संसाधन राज्य का विषय होने के कारण केंद्र दिशा–निर्देश देकर अधिसूचित क्षेत्रों के लिए इसका सख्ती से पालन करे, फिलहाल एक सीमा के बाद यह संभव नहीं दिखता है। लेकिन, स्थानीय–स्तर पर लोगों में गैर–सरकारी संस्थाओं द्वारा इस बारे में जागरूकता उत्पन्न की जा सकती है। किसानों द्वारा ऐसी फसलें उगाई जाएं जिनमें पानी की खपत कम से कम हो। सिंचाई के लिए ड्रिप और स्प्रिंक्लर सिंचाई प्रणालियों को लोकप्रिय बनाने के प्रयास किए जाने चाहिए।

इसके अलावा, भूजल पुनर्भरण तकनीकों को अपनाया जाना भी आवश्यक है। वर्षा जल संचयन (रेनवॉटर हार्वेस्टिंग) इस दिशा में एक कारगर उपाय हो सकता है। छत पर प्राप्त भारी रूफटॉप वर्षा जल तथा सतही अप्रवाह जल दोनों के संचयन से ही यह काम हो सकता है। इस प्रकार वर्षा के दौरान व्यर्थ बह रहे जल को रोककर भूजल की गुणवत्ता में सुधार होगा तथा उसकी पुनर्भरण क्षमता भी बढ़ेगी।

लवणयुक्त या तटवर्ती क्षेत्रों में वर्षा जल संचयन से भूजल का खारापन कम हो जाता है। तथा स्वच्छ जल और खारे पानी के बीच जल–रासायनिक हाइड्रो कैमिकल संतुलन को बनाए रखने में मदद मिलती है। समुद्री द्वीपसमूह में स्वच्छ जल की सीमित मात्रा के कारण घरेलू उपयोग के लिए छत पर प्राप्त यानी रूफटॉप वर्षा जल संचयन सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्रोत है। रेगिस्तान जहां वर्षा बहुत कम होती है, में भी वर्षा जल संचयन से लोगों को राहत मिलती है। पर्वतीय भू–भागों में सामान्यतया रूफटॉप वर्षा जल संचयन को प्राथमिकता दी जाती है।

पहाड़ी तथा कठोर शैल वाले क्षेत्रों में कृत्रिम रिचार्ज द्वारा भूजल संवर्धन की अनेक संभावनाएं हैं। आगामी दशकों में इन तकनीकों के माध्यम से भूजल संसाधनों के संवर्धन पर अधिकाधिक बल देना होगा। कृत्रिम रिचार्ज द्वारा खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में ढलान, नदियों तथा नालों के माध्यम से व्यर्थ जा रहे जल को बचाकर उससे भूजल संवर्धन के कार्य को अंजाम दिया जा सकता है। गली प्लग, परिरेखा यानी कंटूर बंध, गैबियन संरचना, चैक बांध, अंतः सरवण यानी परकोलेशन टैंक , पुनर्भरण यानी रिचार्ज शाफ्ट, कूप पुनर्भरण यानी डगवेल रिचार्ज, भूजल बांध, नाला बांध, उपसतही डाइक आदि कृत्रिम रिचार्ज की कुछ तकनीकें हैं। इन्हें अपनाकर भूजल संवर्धन कार्य को बढ़ावा दिया जा सकता है।

जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है, घटते भूजल–स्तर की एक वजह तेजी से कटते वन क्षेत्र भी हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में चीड़ के वृक्षों की जगह बांज और बुरांश तथा चौड़ी पत्तियों वाले अन्य प्रकार के वृक्षों के रोपण को प्राथमिकता देकर भूजल संवर्धन के कार्य में मदद मिल सकती है।

हमारे देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय सतही एवं भूजल का मिला–जुला, लगभग बराबर मात्रा में उपयोग किया जाता था। इसे अपना कर भूजल पर बढ़ते दबाव को कम किया जा सकता है।

भूजल से प्राप्त जल को दैनंदिन के विभिन्न क्रियाकलापों जैसे बागवानी, गाड़ी धोने, नहाने, मंजन करने, बर्तन धोने आदि के लिए भी इस्तेमाल किया जाता है। इस जल का बहुत किफायत से इस्तेमाल करना चाहिए। पानी का किफायत से उपयोग किए जाने के प्रति जागरूकता फैलानी आवश्यक है, इसलिए 'बूंद–बूंद पानी अनमोल, सारे घरवालों को बोल' उक्ति इस जागरूकता को फैलाने में विशेष सहायक हो सकती है। इस तरह पानी का अपव्यय बचने से परोक्ष रूप से भूजल संवर्धन के कार्य को ही बढ़ावा मिलेगा।

भूजल संसाधनों के बारे में जनसाधारण को जागरूक बनाने और जल की महत्ता के बारे में उन्हें शिक्षित करने के लिए प्रदर्शनी, डॉक्यूमेंटरी फिल्मों, सूचनापरक विज्ञापनों आदि का सहारा भी लिया जा सकता है। हाल के वर्षों में, सुदूर संवेदन उपग्रह–आधारित चित्रों के विश्लेषण तथा भौगोलिक सूचना प्रणाली (जीआईएस) द्वारा भूजल संसाधनों के प्रबंधन में मदद मिली है। भूजल की मॉनीटरिंग एवं प्रबंधन में भविष्य में ऐसी समुन्नत तकनीकों को और बढ़ावा दिए जाने की आवश्यकता है।

(लेखक वरिष्ठ विज्ञान लेखक हैं और दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे हैं।)

ई–मेल : pkm_du@rediffmail.com

जल-संचयन एवं सिंचाई प्रबंधन में संरक्षित खेती का योगदान

–डॉ. अवनि कुमार सिंह, डॉ. नवेद साबिर

वर्तमान भारतीय परिस्थिति में संरक्षित खेती ही एक ऐसी नूतन तकनीक–युक्त खेती है जो किसानों के व्यवसाय एवं आय को बढ़ावा देने के साथ–साथ जल संरक्षण एवं सिंचाई क्षमता, दोनों को बढ़ावा देकर हमारे देश के किसानों हेतु टिकाऊ एवं समृद्ध कृषि के सपने को साकार बना सकती है। जल उपयोगिता की दृष्टि से सतही सिंचाई से 30–40 प्रतिशत, स्प्रिंक्लर द्वारा 40–50 प्रतिशत एवं ड्रिप सिंचाई द्वारा जल की उपयोगिता 80–90 प्रतिशत बढ़ाई जा सकती है और यह संरक्षित खेती में प्रयोग होने वाले मुख्य अंग है एवं इसके ऊपर अधिक शोध अथवा व्यय की आवश्यकता भी नहीं है।

देश के 3290 लाख हे. क्षेत्रफल में लगभग 63 प्रतिशत अभी भी वर्षा–सिंचित है। जल संबधित इन विषम परिस्थितियों में आयवर्धक टिकाऊ एवं संवृद्ध खेती तभी संभव होगी जबकि हम संरक्षित कृषि तकनीक को बढ़ावा दें।

संरक्षित खेती क्या है और यह कैसे हमारे किसानों को लाभ पहुंचा सकती है। और यह कैसे जल संरक्षण एवं सिंचाई क्षमता एवं दक्षता दोनों को बढ़ावा देती है और खेती को टिकाऊ एवं संवृद्ध बनाती है इसका वर्णन आगे किया जा रहा है। संरक्षित खेती एक ऐसी नवीनतम तकनीक है जिसके अंर्तगत विविध प्रकार संरचनाएं एवं ढ़कने वाली सामग्रियां (कवरिंग मैटिरियल्स) होती हैं जिसके अंर्तगत खेती करने पर फसलों को न्यायपूर्ण, उचित एवं कम से कम पानी एवं सिंचाई का उपयोग होता है। प्राकृतिक प्रकोपों एवं जैविक प्रकोपों दोनों से संरक्षण प्राप्त होता है। इसलिए इसे हम वैज्ञानिक बोलचाल की भाषा में 'संरक्षित खेती' कहते हैं चूंकि यह फसलों एवं जल दोनों को संरक्षित करती है।

संरक्षित खेती के अंर्तगत आने वाली विविध प्रकार की संरचनाएं जैसे ग्लासहाउस, पॉलीहाउस, नेटहाउस, प्लास्टिक मलचिंग, लो–टनल आदि आती हैं। इन संरचनाओं का नाम उनके बनाने वाले या कवर करने वाले प्लास्टिक मैटिरियिल के नाम पर रखा गया है, इन सभी संरचनाओं का अलग–2 कार्य सिद्धांत है जोकि अपने–2 कवरिंग मैटरियल के अनुसार कार्य करता है जिसका क्रमशः वर्णन आगे किया जा रहा है।

संरक्षित संरचनाओं में यदि पॉलीहाउस की बात करें तो पॉलीहाउस 200 मॉइक्रान वाली पारदर्शी पॉलीथीन द्वारा बनाया जाता है जिसकी पारदर्शिता प्रथम वर्ष में लगभग 90 प्रतिशत तक होती है। फिर धीरे–धीरे घटकर 70–80 प्रतिशत हो जाती है। इसका प्रभाव यह पड़ता है कि पॉलीहाउस के अंदर जो सूर्य प्रकाश जाता है वह पराबैंगनी किरणों के बगैर छनकर जाता है जिसके कारण फसलों पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। परंतु प्रकाश की यह घटी मात्रा वाष्पीकरण, प्रकाश संश्लेषण एवं श्वसन (रेस्पिरेशन) क्रिया द्वारा होने वाला पानी एवं नमी का ह्रास बाहर की अपेक्षा लगभग 20–25 प्रतिशत कम होता है। दूसरे, पॉलीहाउस संरचनाएं चारों तरफ से बंद होने के कारण तेज हवाओं का आदान–प्रदान व प्रभाव अंदर बिलकुल नहीं पड़ता है। जिससे भूमि की नमी का ह्रास भी 15–20 प्रतिशत कम होता है। तीसरे, पॉलीहाउस के अंदर होने वाली खेती के अंर्तगत टपक सिंचाई एवं फागर सिस्टम दोनों अवश्य लगे होते हैं जिसमें टपक सिचांई के माध्यम से दोनों में औसतन 50–60 प्रतिशत पानी की बचत हो सकती है जबकि खुले खेतों में बहाव सिंचाई के कारण जल का अत्यधिक अपव्यय

पॉलीहाउस

भारत में जल संसाधनों की मांग व उपयोग						
उपयोग	वर्ष 2010		वर्ष 2025		वर्ष 2050	
	जल मांग (बी.सी.एम.)	कुल मांग का प्रतिशत	प्रक्षेपित मांग (बी.सी.एम.)	कुल मांग का प्रतिशत	प्रक्षेपित मांग (बी.सी.एम.)	कुल मांग का प्रतिशत
सिंचाई	557	78	611	72	807	69
घरेलू	43	6	62	7	111	9
औद्योगिक	37	5	67	8	81	7
वातावरण	5	1	10	1	20	2
अन्य	68	10	93	12	161	13
कुल योग	710	100	843	100	1180	100

होता है। इसलिए पॉलीहाउस में भूमि–नमी संरक्षण एवं सिंचाई के तरीकों में सुधार करके सिंचाई की संख्या में कमी लाई जा सकती है। इस प्रकार पानी की बचत करते हुए कम पानी से पूरे फसल जीवनकाल में सिंचाई करते हुए, जल–संचयन को बढ़ावा देते हुए, पानी गुणवत्ता एवं दक्षता दोनों को बढ़ाया जा सकता है।

यदि नेटहाउस की बात करें तो हमारे देश में दो रंगों एवं विविध क्षमता वाली छायादार जालियां बाजारों में उपलब्ध हैं। इन छायादार जालियों की यह भूमिका होती है कि इनका प्रयोग गर्मियों में, तेज धूप एवं 'लू' आदि से बचाने हेतु किया जाता है। उसके साथ–साथ जो फसल छाया में उगने वाली होती है, उनको लगाया जाता है। इस जाली की विशेषता यह होती है कि इसमें सूर्य की रोशनी को वापस करने या रोकने की क्षमता होती है। जैसे 30, 50 या 75 प्रतिशत क्षमता वाली जाली हर बाज़ार में उपलब्ध है। इस जाल में इस प्रकार की गुणवत्ता होती है कि इसमें जितने प्रतिशत क्षमता वाली जाली होती है उतने प्रतिशत सूर्य की रोशनी को अंदर नहीं आने देती और पराबैंगनी किरणों को भी रोकती है जिसके कारण शीतलन और छाया का प्रभाव अंदर लगी फसलों में बना रहता है। और भूमि की नमी लंबे समय तक संरक्षित रहती है जिससे जल–सरंक्षण में बढ़ोतरी एवं सिंचाई की संख्या में कमी होती है। साथ–साथ इस संरचना में टपक सिंचाई या फागर सिस्टम लगा हो तो छायादार जालीघर के अंदर लगभग 50–60 प्रतिशत पानी की और अतिरिक्त बचत होती है। जबकि खुले खेतों में खेती करने पर अत्यधिक पानी का ह्रास होता है और बार–बार सिंचाई करनी पड़ती है जिससे श्रमिकों पर खर्च भी बढ़ जाता है।

संरक्षित खेती के अंर्तगत आने वाली लो–टनल, हाईटनल, संरचना द्वारा भी उपरोक्त संरचनाओं की तरह सिंचाई संख्या में कमी, भूमि–नमी को लंबे समय तक बनाए रखना तथा इसके अंदर लगी टपक सिंचाई द्वारा भी 50–60 प्रतिशत से ज्यादा पानी की बचत हो जाती है। लो–टनल का मुख्य उपयोग फसलों को अगेती खेती द्वारा किसानों को अधिक लाभ मिलना है। साथ ही, कम सिंचाई एवं लागत में लगाई जा सकती हैं। टपक सिंचाई के साथ इसमें पानी व भूमि नमी की 60–70 प्रतिशत बचत की जा सकती है। किसान इसको कम लागत व समय में जी.आई. तार व बांस की खपंचियों के सहयोग से सहज ही लगा सकते हैं। इसमें 20.30 माइक्रान वाली पारदर्शी पॉलीथीन का उपयोग किया जाता है।

संरक्षित खेती के अंर्तगत आने वाली प्लास्टिक पलवार (मल्चिंग) का उपयोग जब फसलों को उगाने हेतु किया जाता है तो इस तकनीक के द्वारा भी लगभग 30–40 प्रतिशत पानी की बचत स्वतः होती है। क्योंकि प्लास्टिक मल्च भूमि की सतह पर जब बिछा दी जाती है और वर्षा का पानी या टपक सिंचाई का पानी इसके अंदर एक बार चला जाता है तो भूमि के अंदर बनी नमी लंबे समय तक बनी रहती है जिससे पौधे अपना भोजन भूमि की नमी की उपस्थिति में लगातार बनाते रहते हैं। इसके साथ–साथ प्लास्टिक मल्च लगाने के बाद खेतों एवं क्यारियों में खरपतवार नहीं उगते हैं जिसके कारण फसलों एवं खरपतवारों दोनों के बीच जो पानी, नमी एवं पोषक तत्वों के प्रति जो प्रतिस्पर्धा होती है, वह बहुत ही कम हो जाती है। प्लास्टिक मल्च सामान्यतः काले रंगों वाली होती हैं और प्रायः 30–50 माईक्रॉन मोटाई वाली पॉलीथीन को खेती हेतु उपयोग मे लाया जाता है। काले रंगों के कारण भूमि की सतह पर सूर्य की किरणें नहीं पहुंच पाती हैं जिसके कारण भूमि सतह से वाष्पीकरण क्रिया नहीं हो पाती है जिससे भूमि की नमी लंबे समय तक बनी रहती है और सिंचाई के पानी की बचत एवं संरक्षण दोनों होते हैं। माल्चिंग के कारण भूमि सतह पर हवाओं का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता जिसके कारण भी भूमि की नमी लंबे समय तक बनी रहती है। अन्यथा परम्परागत खेती में भूमि सतह के खुले रहने पर प्रत्यक्ष रूप से सूर्य का प्रकाश एव हवाएं दोनों मिलकर संग्रहित सिंचाईयुक्त पानी को एवं सिंचाई के बाद भूमि की नमी दोनों को वाष्पीकरण क्रिया के कारण हानि पहुंचाती रहती हैं जिससे पानी की व नमी की पर्याप्त बचत नहीं होती है।

संरक्षित खेती में बूमर सिंचाई द्वारा स्वस्थ नर्सरी उत्पादन हेतु जल सदुपयोग व संरक्षण

सामान्यतः मल्चिंग तकनीक के साथ टपक सिंचाई का उपयोग अवश्य करते हैं और यह टपक सिंचाई मल्चिंग के साथ मिलकर अर्थात दोनों के संयोग (कॉम्बीनेशन) के कारण लगभग 60–70 प्रतिशत सिंचाई योग्य पानी की बचत की जा सकती है जोकि हमारी टिकाऊ खेती के लिए मील का पत्थर साबित हो रही है इस तकनीक के सहयोग से देश के सिंचित क्षेत्रफल को लगभग 10–15 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है जिससे हमारी खेती को टिकाऊ, आयवर्धक (डबल इनकम) व्यावसायिक एवं समृद्व बनाने के साथ–साथ "पर ड्रॉप मोर क्रॉप" का जो नारा प्रधानमंत्री सिंचाई योजना के अंर्तगत दिया गया है, उस सपने को साकार बनाने में संरक्षित खेती एक अहम भूमिका निभा सकती है। और आज लगभग पूरे देश में 50–60 हजार हेक्टेयर संरक्षित खेती एवं वाटर हारवेस्टिंग को किसानों द्वारा अपनाकर डबल इनकम के सपने को साकार किया जा रहा है। संरक्षित खेती का आकलन करें तो सामान्य खेती की तुलना में फसलों का उत्पादन, उत्पादकता एवं गुणवत्ता तीनों में 3–4 गुना अधिक बढ़ोतरी होती है। संरक्षित खेती में मूल्यवान फसलें जैसेकि लता–स्वभावी टमाटर, चैरी टमाटर, अंग्रेजी खीरा, करेला, खरबूजा, ककड़ी, चप्पन कद्दू व शिमला मिर्च के अतिरिक्त फूलों व फलों की खेती मुख्य रूप से गुलाब, जर्बेरा, स्ट्राबेरी व पपीते इत्यादि की खेती की जाती है। संरक्षित खेती में स्वस्थ नर्सरी उत्पादन की बहुत अधिक महत्ता है एवं जिसका प्रयोग छोटे आय–वर्गीय किसान की लघुउद्यमी खेती एक वरदान साबित हो सकती है। संरक्षित खेती के अंतर्गत जैविक व अजैविक कारकों से होने वाली हानि से संरक्षण व मुख्य वातावरणीय माहौल का फसल के मुताबिक व मांग के अनुसार उत्परिवर्तन के चलते उच्च उत्पादन मिलता है। इसके अतिरिक्त जल, घुलनशील पोषक तत्वों व अन्य स्रोतों का न्यायोचित प्रयोग ही इस तकनीक को खेती के संबंध में परिशुद्ध, टिकाऊ व किसानों के लिए लाभकारी बनाता है।

संरक्षित खेती तकनीक के साथ टपक सिंचाई तकनीक एवं फागर तकनीक का एक संयोग (कॉम्बीनेशन) होता है। जिसके चलते जल–संचयन को बढ़ावा देते हुए 100 प्रतिशत पानी की जगह 30–40 प्रतिशत पानी से ही लंबे समय तक टिकाऊ एवं संवृद्व खेती को संरक्षित खेती के माध्यम से बढ़ावा दिया जा सकता है। इस समय देश में लगभग 6.95 करोड़ हे. क्षेत्र सूक्ष्म सिंचाई पद्वति के अंतर्गत आक्षादित है जिसमें कि 2.7 करोड़ हे. से अधिक टपक सिंचाई पद्वति के अंतर्गत आता है।

भारत में अभी भी 63 प्रतिशत खेती वर्षा पर आधारित होती है। तो ऐसे क्षेत्रों में टिकाऊ एवं संवृद्व खेती करना तथा किसानों की आय को बढ़ावा देना तथा संरक्षित खेती को बढ़ावा देना सूर्य को दीपक दिखाने के बराबर है– इसलिए ऐसे क्षेत्रों में पॉलीथीन लाइनिंग, वॉटर हारवेस्टिंग टैंकों को बना कर वर्षा के पानी को इन टैकों में भंडारित करके जल संचय किया जाए और इस पानी की उपयोग क्षमता को और अधिक बढ़ाने हेतु टपक सिंचाई एवं फव्वारा

संरक्षित खेती हेतु वाटर हार्वेस्टिंग

सिंचाई का उपयोग करें तो हम असिंचित क्षेत्रों को भी, सिंचित क्षेत्र में परिवर्तित करके किसानों की आय को दुगुना कर सकते हैं। पॉलीथीन लाईनिंग वाला जल–संचयन टैंक बनाने में औसतन कुल खर्च 125–150 रुपये प्रतिवर्ग मीटर आता है। अर्थात यदि आप 50,000 घन लीटर पानी संचयन करने वाली क्षमता का टैंक बनाना चाहते हैं तो उसकी कुल लागत 6250–7500 रुपये तक आ सकती है जोकि किसानों के लिए बहुत सस्ती एवं टिकाऊ है। इन्हें सीमेंट से बनाने पर ये बहुत महंगे पड़ते हैं और यह टैंक लगभग 2–3 वर्षों के अंदर ही वायुमंडलीय दबाव व भूकंप के कारण टूट या फटकर खराब हो जाते हैं जिस कारण किसानों का बहुत ही नुकसान हो जाता है।

सिंचाई एवं जल संरक्षण थीम के अंर्तगत जब हम पानी की बचत व उचित सिंचाई प्रबंधन की बात करे तो, जिससे हमारी खेती को टिकाऊ, आयवर्धक व्यावसायिक एवं समृद्ध बनाने के साथ–साथ 'पर ड्रॉप मोर क्राप' का जो नारा प्रधानमंत्री सिंचाई योजना के अंर्तगत दिया गया है, उस सपने को सकार बनाने में सरंक्षित खेती एक अहम् भूमिका निभा सकती है। और आज लगभग पूरे देश में 50–60 हजार हेक्टेयर संरक्षित खेती एवं वॉटर हारवेस्टिंग को किसानों द्वारा अपनाने में उनकी आय में खासी बढ़ोतरी हो रही है।

भारतीय जलवायु में संरक्षित खेती की अपार सम्भावनाएं हैं जोकि हमारे देश के किसानों को विश्व के देशों में व्यवसाय का अवसर प्रदान करके उनके सम्मान को बढ़ा सकती हैं। अतः संरक्षित खेती तकनीक पर केंद्र व राज्य सरकार द्वारा मिलकर 50–80 प्रतिशत तक का अनुदान भी दिया जाता है जिससे किसानों को बहुत राहत मिलेगी। इस प्रकार हमारे विचार से संरक्षित खेती अपनाने से जल–संचयन एवं आय दोनों को बढ़ावा मिलेगा।

(लेखक द्वय भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा रोड, नई दिल्ली में संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकी केंद्र में प्रधान वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत हैं।)

ई–मेल : singhawani5@gmail.com

संवहनीय खेती: फसल स्वरूप का पानी की उपलब्धता के अनुरूप निर्धारण

–डॉ. वाई.एस. शिवे और डॉ. टीकम सिंह

खेती की समुचित प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल, फसल पश्चात प्रसंस्करण तथा गुणवत्ता में वृद्धि के जरिए मौजूदा पारंपरिक कृषि में सुधार मुमकिन है। इससे खेती न सिर्फ लंबे समय में संवहनीय बनेगी बल्कि उत्पादन को उपभोक्तावाद से जोड़ कर इसे लाभकारी व्यवसाय भी बनाया जा सकेगा। दीर्घकालिक रूप से खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भरता बनाए रखने के लिए धान–गेहूं रोटेशन प्रणाली की उपज क्षमता और पर्यावरण अनुकूलता में साथ–साथ सुधार लाने में संवहनीय कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है।

भारत की 75 प्रतिशत आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है। वह अब भी कृषि पर ही निर्भर है। देश के कुल क्षेत्रफल का लगभग 43 प्रतिशत हिस्सा कृषि से संबंधित गतिविधियों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। वर्ष 2016–17 में भारत का अनुमानित खाद्यान्न उत्पादन 27.5 करोड़ टन था। मगर भारतीय कृषि उत्पादन प्रणाली अब भी चुनौतियों का सामना कर रही हैं। ये चुनौतियां भविष्य के संसाधन आधार यानी पारिस्थितिकी को नुकसान पहुंचाए बिना लगातार बढ़ती आबादी की जरूरतों को पूरा करने के लिए खाद्यान्न उत्पादन बढ़ाने की हैं। भारत में कृषि और इससे संबंधित अन्य क्षेत्रों पर ध्यान केंद्रित करना कई वजहों से महत्वपूर्ण है। ये क्षेत्र बढ़ती आबादी को रोजगार और संवहनीय आजीविका मुहैया कराने में अहम भूमिका निभाते रहेंगे। लेकिन भारतीय कृषि पानी की तंगी, प्रति व्यक्ति खेती योग्य जमीन में कमी, खेती के साजो–सामान की बढ़ती कीमतों, कृषि उत्पादों के विपणन नेटवर्क और मूल्य संवर्द्धन के अवसरों के अभाव तथा बाजार मूल्यों में उतार–चढ़ाव जैसी अनेक समस्याओं का सामना कर रही है। खेती की समुचित प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल, फसल पश्चात प्रसंस्करण तथा गुणवत्ता में वृद्धि के जरिए मौजूदा पारंपरिक कृषि में सुधार मुमकिन है। इससे खेती न सिर्फ लंबे समय में संवहनीय बनेगी बल्कि उत्पादन को उपभोक्तावाद से जोड़ कर इसे लाभकारी व्यवसाय भी बनाया जा सकेगा। धान–गेहूं फसल प्रणाली भारतीय खाद्य सुरक्षा के लिए रीढ़ की हड्डी है। भारत के खाद्यान्न उत्पादन में 80 प्रतिशत से ज्यादा हिस्सा इन्हीं दो फसलों का है। सिंचाई जल के एक बड़े हिस्से का इस्तेमाल भी इन्हीं फसलों के लिए किया जाता है। लिहाजा, दीर्घकालिक रूप से खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भरता बनाए रखने के लिए धान–गेहूं रोटेशन प्रणाली की उपज क्षमता और पर्यावरण अनुकूलता में साथ–साथ सुधार लाने में संवहनीय कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है।

संवहनीय कृषि का मतलब खेती का ऐसा तौर–तरीका है जो स्थानीय पारिस्थितिकी के अनुरूप हो। इसमें जीवों और उनके पर्यावरण के बीच संबंधों का अध्ययन किया जाता है। आसान शब्दों में कहें तो संवहनीय कृषि वैसी खेती है जिसका लक्ष्य आने वाली पीढ़ियों के लिए संसाधनों के आधार को खतरे में डाले बिना मौजूदा पीढ़ी की जरूरतों को पूरा करना हो। संवहनीयता हासिल करने के लिए एक समग्र और सुनियोजित दृष्टिकोण जरूरी है। संवहनीय कृषि प्रणालियां संसाधन का संरक्षण करने वाली, सामाजिक तौर पर उपयोगी, वाणिज्यिक रूप से प्रतिस्पर्धी और पर्यावरण के नजरिए से दुरुस्त होनी चाहिए। ऐसी प्रणालियों का लक्ष्य मानव स्वास्थ्य और पारिस्थितिकी को नुकसान पहुंचाए बिना गुणवत्तापूर्ण और पोषक भोजन का उत्पादन होता है। इसलिए इनमें सिंथेटिक उर्वरकों, कीटनाशकों, वृद्धि नियंत्रकों और पशु चारा एडिटिव का इस्तेमाल नहीं किया जाता। ये प्रणालियां भूमि की उर्वरता और उत्पादकता बनाए रखने के लिए फसल चक्रण, फसल अवशिष्टों, पशु उर्वरकों,

फलियों, हरी खादों, जैविक कचरों, समुचित मैकेनिकल खेती और खनिज वाली चट्टानों पर निर्भर रहती हैं। कृषि उत्पादकता बरकरार रखने के निम्नलिखित तरीके हैं–

संरक्षण कृषि, ऑर्गेनिक खेती, समेकित पोषण प्रबंधन प्रणाली और खेत अवशिष्ट प्रबंधन के जरिए मिट्टी का प्रबंधन।

सिंचाई के सही तरीके, सूक्ष्म सिंचाई, जीवनरक्षक सिंचाई, गीली घास के इस्तेमाल, एंटी ट्रांसपेरेंट इत्यादि सक्षम जल संसाधन प्रबंधन तकनीकों का उपयोग।

फसल प्रबंधन में सही समय पर रोपनी, उपयुक्त फसलों और किस्मों को रोटेशन में लगाना, अंतर फसल, मिश्रित फसल तथा समेकित कीट प्रबंधन इत्यादि शामिल हैं।

खेती यानी फसलों और फसल प्रणालियों की संवहनीयता मुख्य तौर से स्वीकार्य गुणवत्ता वाले पानी की पर्याप्त उपलब्धता पर निर्भर करती है। भारतीय कृषि में पानी की मांग को पूरा करने का प्राथमिक स्रोत वर्षा है। देश में सालाना 1085 मिलीमीटर वर्षा होती है। यह वर्षा लगभग 4 करोड़ हेक्टेयर मीटर पानी के बराबर है। भारत में वर्षा का लगभग तीन–चौथाई हिस्सा दक्षिण–पश्चिमी मानसून से आता है (तालिका–1)। उत्तर–पूर्वी मानसून का योगदान 3 प्रतिशत से भी कम है। वर्षा का बाकी हिस्सा मानसून–पूर्व और पश्चात की गतिविधियों से आता है।

तलिका–1: भारत में मौसम के हिसाब से वार्षिक वर्षा वितरण

वर्षा का प्रकार	समय	परिमाण (मिमी)	वार्षिक वर्षा में प्रतिशत हिस्सा
मानसून पूर्व	मार्च–मई	112.8	10.4
दक्षिण–पश्चिमी मानसून	जून–सितंबर	799.6	73.7
मानसून पश्चात	अक्तूबर–दिसंबर	144.3	13.3
उत्तर–पूर्वी मानसून	जनवरी–फरवरी	028.2	02.6
कुल		1085*	100.0

*कुल सालाना वर्षा– 1085 मिमी. (दीर्घकालिक औसत, 1950 से 1994)

वर्षा के वितरण और इसकी उपलब्धता में क्षेत्रीय असमानता के निर्धारण में विद्यमान स्थितियों और आगे बढ़ते मानसून के मार्ग की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। सालाना वर्षा के औसत को आधार मानें तो देश के 30 प्रतिशत क्षेत्र में 750 मिमी. से कम, 42 प्रतिशत में 750 से 1150 मिमी. तक और 20 प्रतिशत में 1150 से 2000 मिमी. तक वर्षा होती है। सिर्फ आठ प्रतिशत क्षेत्र में सालाना 2000 मिमी. से अधिक बारिश होती है। इस तरह 70 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र में 750 मिमी. से अधिक वर्षा होती है। केंद्रीय जल आयोग के आंकड़ों के अनुसार वर्षा से प्राकृतिक प्रवाह तथा नदियों और झरनों में पिघलते बर्फ के रूप में देश में जल संसाधन क्षमता 18.69 करोड़ हेक्टेयर मीटर है। भौगोलिक स्थिति की सीमाओं तथा स्थान और समय के लिहाज से संसाधन के असमान वितरण के कारण इस 18.69 करोड़ हेक्टेयर मीटर पानी में से सिर्फ 11.23 करोड़ हेक्टेयर मीटर का लाभकारी इस्तेमाल किया जा सकता है। इसमें से 6.9 करोड़ हेक्टेयर मीटर सतही और 4.33 करोड़ हेक्टेयर मीटर भूमिगत जल संसाधन है। इस 11.23 करोड़ हेक्टेयर मीटर पानी का इस्तेमाल सिंचाई तथा घरेलू और औद्योगिक उद्देश्यों के लिए किया जा सकता है। इस तरह सिंचाई के वास्ते पानी की उपलब्धता अपर्याप्त रहेगी। इसलिए पानी के इस्तेमाल की दक्षता बढ़ाना महत्वपूर्ण है। अगर भारत को खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भर रहना है तो पानी की हर बूंद को बचाना होगा। कृषि की संवहनीयता के लिए पानी का इस्तेमाल बेहद सूझबूझ के साथ करने की जरूरत है।

कृषि में संवहनीय जल प्रबंधन का मकसद परिमाण और गुणवत्ता दोनों के लिहाज से पानी की उपलब्धता और जरूरत में संतुलन कायम करना है। यह संतुलन स्थान और समय के दायरे में तथा तार्किक खर्च और स्वीकार्य पर्यावरणीय प्रभाव के साथ होना चाहिए। जल मांग प्रबंधन में अधिक ध्यान सिंचाई के समयबद्धता पर दिया गया है। सिंचाई कब हो और इसमें कितने पानी का इस्तेमाल किया जाए, इस सवाल को महत्वपूर्ण माना गया है। इसमें सिंचाई के तरीके की भूमिका गौण है। सिंचाई कितनी और कब–कब की जाए यह फसल विकास के चरणों, पानी की तंगी के प्रति फसल की संवेदनशीलता, जलवायु की स्थिति तथा जमीन में जल की उपलब्धता जैसे मानदंडों पर निर्भर करता है। लेकिन सिंचाई कितने अंतराल पर हो, यह इसकी पद्धति पर निर्भर करता है। इसलिए सिंचाई की समय–सारणी और इसकी पद्धति दोनों आपस में जुड़े हैं। कृषि उत्पादन को अधिकतम–स्तर तक ले जाने और जल संरक्षण का यही एकमात्र तरीका है। सिंचाई प्रणाली की संवहनीयता में इसी से सुधार लाया जा सकता है। ज्यादातर मामलों में खेत के स्तर पर सिंचाई की समय–सारणी कितनी प्रभावी होगी, यह किसान के कौशल पर निर्भर करता है। सिंचाई की समय–सारणी बनाने के तौर–तरीकों में बहुत फर्क होता है तथा उपयुक्ता और प्रभावोत्पादकता के संबंध में उनकी विशिष्टताएं अलग–अलग होती हैं। भूमिजल मापन, इसके भंडार के अनुमान, फसल विकास के महत्वपूर्ण चरणों और पौधा तनाव के संकेतकों के आधार पर विभिन्न तरीकों को अपनाते हुए सिंचाई के समय और परिमाण का निर्धारण किया जाता है। इस प्रक्रिया में सामान्य नियमों से लेकर बेहद जटिल मॉडलों का सहारा लिया जा सकता है।

फसल उत्पादन में पानी की भूमिका महत्वपूर्ण है। इसलिए नमी की कमी की स्थिति में वैसी संवहनीय फसल प्रणाली अपनाई जानी चाहिए जिसमें जमीन की आर्द्रता का कुशलता से इस्तेमाल करते हुए भूमिगत जल का अधिकतम संरक्षण संभव हो। ज्यादातर खुष्क क्षेत्रों में परंपरागत फसलों और फसल संरचनाओं में इन पहलुओं का ध्यान नहीं रखा जाता है। नतीजतन सामान्य और इससे अधिक बारिश के समय सिर्फ संतोषजनक उत्पादन होता है। लेकिन असामान्य वर्षा या नमी की कमी की स्थिति में फसल नाकाम रहने

या उपज बहुत कम होने की वजह से किसानों की आर्थिक स्थिति अस्थिर हो जाती है। इसलिए फसलों, उनकी किस्मों और फसल प्रणालियों के चुनाव और उनके प्रबंधन में वर्षा की विभिन्न स्थितियों में पानी के ज्यादा–से–ज्यादा कुशलतापूर्वक इस्तेमाल का लक्ष्य रखा जाना चाहिए। किसी औसत किसान के लिए आज की जरूरत विभिन्न परिपक्वता काल वाली फसलें, फसल छतरी और ज्यादा उपज क्षमता वाली फसल प्रणाली है। इस लिहाज से लाल चना, ग्वार, फ्रेंच बीन, अरंडी, कंगनी, मूंगफली, बाजरा, रागी, सरसों और सूरजमुखी की एकल फसल प्रणाली सबसे अनुकूल है। मगर मृदा और जल संरक्षण, भूमिगत पानी के पूर्ण इस्तेमाल तथा भूमि की उर्वरता बनाए रखने के लिए मिट्टी की प्रकृति, कुल वर्षा और क्षेत्र में बारिश की शुरुआत के समय को ध्यान में रखते हुए कई फसल प्रणालियां संभव हैं।

तलिका–2: वर्षा की शुरुआत पर आधारित फसल स्वरूप

वर्षा की शुरुआत का समय	लगाई जाने वाली फसलें
जून का दूसरा पखवाड़ा	बाजरा, मूंगफली, सूरजमुखी, अरंडी, अरहर
जुलाई का पहला पखवाड़ा	बाजरा, अरंडी, अरहर
जुलाई का दूसरा पखवाड़ा	सूरजमुखी, अरंडी, अरहर
अगस्त का पहला पखवाड़ा	सूरजमुखी, अरंडी, अरहर
अगस्त का दूसरा पखवाड़ा	सूरजमुखी, अरंडी, अरहर
सितंबर का पहला पखवाड़ा	फसल के रूप में रबी ज्वार

फसल प्रणाली कृषि और जलवायु के कारकों पर निर्भर करती है। लेकिन दोहरी फसल, अंतर–फसल और मिश्रित फसल प्रणालियों

तलिका–3: खुष्क भूमि खेती में दोहरी फसल प्रणाली

खरीफ	रबी
वर्षा सिंचित	
बाजरा/कोदो/धान/ज्वार	अलसी/मसूर/सफेद सरसों
सोयाबीन/हरा चना/काला चना	कुसुम/रबी ज्वार
सूरजमुखी	काबुली चना
सीमित सिंचाई	
बाजरा	काबुली चना, कुसुम
ज्वार/मक्का/धान	सूरजमुखी/मसूर
ज्वार	काबुली चना/गेहूं/सरसों/सूरजमुखी
सोयाबीन	काबुली चना/गेहूं/सूरजमुखी
हरा चना/काला चना	कुसुम/रबी ज्वार
सूरजमुखी	काबुली चना
अरहर/ग्वारफली	काबुली चना

को अपनाना निस्संदेह फायदेमंद है। इन प्रणालियों से जमीन के इस्तेमाल की कुशलता में वृद्धि होती है। खुष्क भूमि क्षेत्रों में दोहरी फसल प्रणाली ज्यादा लाभकारी और किफायती होती है। वास्तव में इस तरह के क्षेत्रों के लिए अलग–अलग परिपक्वता काल, फसल छतरी और अधिक उत्पादन की क्षमता वाली फसल प्रणाली आज की जरूरत है।

फसल प्रणाली का लक्ष्य खेती में कार्य–कुशलता को बढ़ाना है ताकि उपलब्ध भौतिक संसाधनों से पैदावार के लाभों में इजाफा किया जा सके। वर्षा से सिंचाई की स्थिति में फसलों और फसल प्रणालियों का चयन मिट्टी की गहराई और जड़ के क्षेत्र में जमीन में नमी की मौजूदगी पर भी निर्भर करता है। फसल सुविधाएं ज्यादा लंबे समय तक उपलब्ध होने से अंतर–फसल, मिश्रित फसल और दोहरी फसल या क्रमिक फसल की सुविधा मिलती है (तालिका 4)। अंतर–फसल से मिट्टी की उर्वराशक्ति बढ़ाने, ज़मीनी नमी को बनाए रखने, खरपतवारों, कीटों और रोगों को घटाने, साल भर चारा उपलब्ध कराने और अतिरिक्त धन हासिल करने में मदद मिलती है।

तालिका 4: मिट्टी की गहराई और नमी के आधार पर फसलें और फसल प्रणालियां

मिट्टी की गहराई	उपलब्ध नमी (मिमी)	फसल काल (दिन)	फसल/फसली प्रणाली
उथली	100 से कम	90 से कम	बाजरा, ज्वार, सोयाबीन, दलहन और कोदो की एकल फसल
मध्यम	100–150	150	सोयाबीन, ज्वार/बाजरा/सोयाबीन/मक्का/ अरंडी + अरहर की एकल फसल
गहरी	200 से अधिक	180 से ज्यादा	धान–तिलहन/दलहन, कपास + सोयाबीन, ज्वार/मक्का–काबुली चना, अरहर आधारित फसल प्रणाली

भारत के प्रमुख फसल स्वरूप

भारत के फसल स्वरूप में बड़ा बदलाव आया है। एक बड़े क्षेत्र में अनाज के बजाय गैर–अनाज फसलों को बोया जाने लगा है। बेशक हरितक्रांति के शुरुआती दशक में कुल कृषि क्षेत्र में अनाज की खेती के हिस्से में थोड़ी बढ़ोतरी हुई थी। लेकिन इसके बाद अनाजों के क्षेत्र और इसके हिस्से में लगातार कमी आई है। अनाजों और दालों के क्षेत्र में कमी आने का सबसे ज्यादा फायदा खासतौर से तिलहन को हुआ है। बड़े क्षेत्र में खाद्यान्नों की खेती से साबित होता है कि भूमि की उत्पादकता तकनीकी संभावनाओं के अनुरूप नहीं बढ़ी है। फसल स्वरूप में महत्वपूर्ण बदलावों के बावजूद उच्च मूल्य वाली वाणिज्यिक फसलों की ओर गमन बहुत कम रहा है। नतीजतन फसल उत्पादन में विकास पर इसका प्रभाव नगण्य है। भारत में मिट्टी, जलवायु और वर्षा के वितरण में काफी विभिन्नताएं हैं। लिहाजा हम बड़ी संख्या में अलग–अलग फसल स्वरूपों को

अपना सकते हैं। सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध होने की स्थिति में खेती की गतिविधियां बारहों महीने चलती रहती हैं। हर फसल स्वरूप के अपने फायदे और कमजोरियां हैं जिनका संक्षेप में जिक्र नीचे किया गया है–

धान–आधारित फसल स्वरूप

धान–आधारित फसल स्वरूप देश में काफी लोकप्रिय है। इसमें धान के साथ बारी–बारी से लगाई जाने वाली फसलों में गेहूं, तिलहन, दलहन तथा कभी–कभार मक्का और सब्जियां शामिल हैं। देश के विभिन्न हिस्सों में धान पर आधारित कई फसल प्रणालियां प्रचलित हैं। कई जगह धान के बाद फिर से इसी फसल को लगाया जाता है। अनेक स्थानों पर धान के बाद अन्य अनाजों, दलहन, तिलहन, सब्जियों और रेशे वाली फसलों की खेती की जाती है। धान–आधारित फसल प्रणालियों में तराई और पर्वतीय फसलें शामिल हो सकती हैं। अब तक ज्यादातर लोग एक फसल पर ही ध्यान केंद्रित करते रहे हैं। वे इस तथ्य को नजरंदाज करते हैं कि हर फसल एक वृहद् फसली प्रणाली का हिस्सा भर है। भारत में धान–आधारित निम्नलिखित फसल प्रणालियां अपनाई जाती हैं–

धान–गेहूं प्रणाली

धान–गेहूं प्रणाली ज्यादातर उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, बिहार, पश्चिम बंगाल और मध्य प्रदेश में 1.1 करोड़ हेक्टेयर से ज्यादा क्षेत्र में अपनाई गई है। देश में पिछले कुछ वर्षों में इस फसल प्रणाली के जबर्दस्त विकास के बावजूद इन फसलों की उत्पादकता में गतिरोध की रिपोर्टें आई हैं। इनके उत्पादन में गिरावट की आशंका के बीच इनकी संवहनीयता को लेकर संदेह पैदा हो गया है। मिट्टी से पोषक तत्वों का अंधाधुंध दोहन, भूमि में पोषकों का असंतुलन, पोषक तत्वों के असर और भूमिगत जल में कमी, रोगों और कीटों में वृद्धि, सित्ती (फेलेरिस माइनर) में बढ़ोतरी, उत्तर–पश्चिमी मैदानों में खेती में काम आने वाली सामग्री के इस्तेमाल की दक्षता में कमी, पूर्वी और मध्य भारत में उर्वरकों का कम प्रयोग, किस्मों के समुचित सम्मिलन का अभाव, धान के पौधारोपण के सही समय पर मजदूरों की किल्लत तथा फसल अवशिष्ट प्रबंधन जैसे मुद्दे धान–गेहूं प्रणाली की संवहनीयता के लिए चुनौती हैं।

धान–धान प्रणाली

धान–धान असम, पश्चिम बंगाल, ओडिशा, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, कर्नाटक और केरल की नमी वाली तटीय पारिस्थितिकी में सिंचित भूमि पर लोकप्रिय फसल प्रणाली है। इसका कुल विस्तार 60 लाख हेक्टेयर से अधिक का है। धान–धान प्रणाली की उत्पादकता को बनाए रखने की राह में मुख्य चुनौतियां मिट्टी की गुणवत्ता में गिरावट, सूक्ष्म पोषकों की कमी, नाइट्रोजन के इस्तेमाल की कम दक्षता, पोषक तत्वों के उपयोग में असंतुलन, पौधारोपण के नाजुक समय में मजदूरों की अनुपलब्धता, एशिनोक्लोआ क्रसगेली जैसे अवांछित खरपतवारों में बढ़ोतरी और इनके नियंत्रण के समुचित उपायों का अभाव है।

धान–तिलहन/दलहन प्रणाली

खाद्य सुरक्षा और राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए धान–तिलहन/दलहन को सबसे महत्वपूर्ण फसल प्रणाली माना जा सकता है। इस प्रणाली के तहत सर्दियों में मुख्यतौर पर सरसों, अलसी, मूंगफली, मसूर और मटर उगाया जाता है। पूर्वी और दक्षिणी भारत में इसके बाद धान बोया जाता है। इस फसल प्रणाली में सभी पारिस्थितिकियों में धान की उपज संतोषजनक रहती है। लेकिन विभिन्न पारिस्थितिकियों में तिलहन/दलहन की उपज में काफी फर्क देखा गया है। मगर इस प्रणाली में धान और तिलहन/दलहन की ज्यादा पैदावार वाली समुचित किस्में लगा कर और बेहतर उत्पादन प्रौद्योगिकी को अपनाते हुए वांछित उत्पादकता सुनिश्चित की जा सकती है। वास्तव में इस प्रणाली में धान और तिलहन/दलहन की पैदावार दोगुना किए जाने की संभावना मौजूद है। आमतौर पर इसमें मध्यम या कम समय की ज्यादा पैदावार वाली धान की किस्मों के साथ तिलहन/दलहन की सफल फसल लेना संभव है। तिलहन/दलहन की फसल मार्च तक खेत में रहती है। इस प्रणाली की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए गर्मियों में एक और फसल लगाई जा सकती है। सूखा, वर्षा का असमान वितरण, सुनिश्चित सिंचाई के क्षेत्र की कमी, लाल बलुई और दुमट मिट्टी में रिसाव की वजह से नाइट्रोजन का क्षय इस फसल प्रणाली की उत्पादकता को सीमित करता है। पौधा रोपण में देरी, उच्च उत्पादकता वाली किस्मों का कम क्षेत्र में रोपा जाना, समयबद्ध खरपतवार, रोग और कीट नियंत्रण पर ध्यान नहीं दिया जाना तथा अच्छे बीजों की अपर्याप्त आपूर्ति की बाधाएं भी हैं। इसके अलावा साक्षरता की कमी, सीमांत और आदिवासी किसानों का अधिक अनुपात, खेत में मवेशी चराने की प्रथा तथा क्षेत्र के किसानों की जोखिम लेने की कम क्षमता भी उत्पादकता को प्रभावित करती है।

बाजरा–आधारित फसल प्रणाली

बाजरा कई अन्य अनाजों की तुलना में सूखे की स्थिति का ज्यादा अच्छी तरह सामना कर सकता है। इसलिए कम वर्षा और हल्की मिट्टी वाले क्षेत्रों में इसकी खेती को प्राथमिकता दी जाती है। भारत में बाजरे की खेती 1.24 करोड़ हेक्टेयर भूमि पर होती है। इसमें राजस्थान का हिस्सा 46 लाख हेक्टेयर है। महाराष्ट्र, गुजरात और उत्तर प्रदेश को मिलाकर 46 लाख हेक्टेयर से ज्यादा ज़मीन पर बाजरे की खेती की जाती है। इसकी खेती के 66 प्रतिशत क्षेत्र में दक्षिण–पश्चिमी मानसून के एक से चार महीनों में प्रति माह 10 से 20 सेंटीमीटर बारिश होती है। समूचे देश में बाजरे के साथ लगभग 40 बड़ी फसल प्रणालियां देखी जाती हैं। खरीफ में बाजरे की खेती दलहन, मूंगफली, तिलहन, कपास, तंबाकू और चारे के साथ एकल, मिश्रित और अंतर–फसल के रूप में की जाती है। रबी मौसम में इसे गेहूं, काबुली चना और सरसों के साथ लगाया जाता है। पोषकों का जरूरत से ज्यादा दोहन, मिट्टी की घटती उर्वरता, उर्वरकों के इस्तेमाल में असंतुलन, पोषक तत्वों का घटता प्रभाव, भूमिगत जल के स्तर में गिरावट तथा रोगों, कीटों और खरपतवारों में बढ़ोतरी से इस प्रणाली की संवहनीयता प्रभावित होती है। किसान इस प्रणाली में बाजरे की जगह कोई ज्यादा लाभकारी फसल लगाने की जरूरत महसूस करने लगे हैं। यह परिवर्तन खेती की कई स्थितियों में सिर्फ

भूमि की उर्वरता के लिए ही नहीं बल्कि आर्थिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण साबित हो सकता है।

मक्का–गेहूं प्रणाली

देश के उत्तरी पर्वतीय हिस्सों में मक्का खरीफ की प्रमुख फसल है। उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश और बिहार जैसे उत्तरी राज्यों में भी काफी बड़े क्षेत्र में इसकी खेती होती है। मक्का–गेहूं प्रणाली हर वर्ष प्रति हेक्टेयर 10 टन से ज्यादा खाद्यान्न उत्पादन में सक्षम है। पालमपुर में मक्का–गेहूं प्रणाली की अधिकतम उत्पादन क्षमता हर वर्ष प्रति हेक्टेयर 14.21 टन दर्ज की गई है। यह प्रणाली ज्यादातर वर्षा–सिंचित क्षेत्रों में अपनाई जाती है। इसलिए वर्षा की अनिश्चित्ता से यह सबसे ज्यादा प्रभावित होती है। किसान आमतौर पर कम उपज वाली परंपरागत किस्में लगाते हैं। अनिश्चित वर्षा के अलावा खरपतवारों की मौजूदगी और पोषकों की कमी इस प्रणाली के सामने सबसे बड़ी चिंताएं हैं।

गन्ना–गेहूं प्रणाली

गन्ने की खेती लगभग 34 लाख हेक्टेयर में की जाती है। गन्ने की पैदावार का 68 प्रतिशत क्षेत्र उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा और बिहार में है। गन्ना–रातून–गेहूं सबसे महत्वपूर्ण फसल क्रम है। असम के जोरहट, शिवसागर और सोनितपुर, महाराष्ट्र के अहमदनगर और कोल्हापुर तथा कर्नाटक के बेलगाम जिले में भी इस प्रणाली का उपयोग बढ़ रहा है। बड़े क्षेत्र में गन्ना–गेहूं प्रणाली को अपनाने वाले अन्य राज्य हरियाणा, पंजाब, मध्य प्रदेश और राजस्थान हैं। इस प्रणाली में आने वाली समस्याएं दोनों फसलों की देर से रोपनी, पोषकों का असंतुलित और अपर्याप्त इस्तेमाल, गन्ने में नाइट्रोजन के इस्तेमाल की कम क्षमता, खराब अंकुरन के कारण रातून की उत्पादकता में कमी तथा गन्ने में ट्राईएंथिमा पार्टुलैकेस्ट्रम और साइप्रस रोटंडस का प्रकोप शामिल है। गन्ने की ठूंठ इसके बाद की गेहूं की फसल के लिए खेतों की जुताई में परेशानी पैदा करती है और इनका प्रबंधन सही ढंग से किया जाना चाहिए। अधिकतर किसान गन्ने में सिर्फ नाइट्रोजन का इस्तेमाल करते हैं इसलिए फॉस्फोरस और पोटेशियम का उपयोग सीमित होता है। फॉस्फोरस, पोटेशियम, सल्फर और सूक्ष्म पोषकों की कमी से सीधे तौर पर और अन्य पोषकों से संपर्क के कारण इस प्रणाली की उत्पादकता घटती है।

कपास–गेहूं प्रणाली

कपास की खेती पंजाब, हरियाणा, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश की जलोढ़ तथा आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक की काली मिट्टी में होती है। कपास की कम समय में होने वाली किस्मों की उपलब्धता से कपास–गेहूं प्रणाली उत्तर में प्रभावी हो गई है। कपास का 70–80 प्रतिशत क्षेत्र इसी प्रणाली के तहत आता है। मध्यवर्ती क्षेत्र में भी जहां कहीं सिंचाई उपलब्ध है वहां कपास–गेहूं प्रणाली ही प्रयोग में लाई जा रही है। इस प्रणाली में एक प्रमुख समस्या कपास की कटाई के बाद गेहूं लगाने में देरी की है। कपास के ठूंठों की वजह से गेहूं के लिए खेत की जुताई ठीक तरह से नहीं हो पाती। कपास की ज्यादा फसल देने वाली किस्मों में डोडा कीट और व्हाइट फ्लाई लगने का खतरा रहता है। इनके नियंत्रण पर होने वाले ऊंचे खर्च की वजह से खेती असंवहनीय हो जाती है। कपास में नाइट्रोजन इस्तेमाल की खराब क्षमता प्रणाली की उत्पादकता को घटाती है। कपास के पौधों के बीच की बड़ी दूरी का उपयोग करने के लिए अंतर–फसलन की समुचित प्रौद्योगिकी विकसित किए जाने की जरूरत है। कम समय में तैयार होने वाली और बीटी किस्मों से कपास–गेहूं प्रणाली को देश के ज्यादातर हिस्सों में बनाए रखने में मदद मिली है।

फली–आधारित फसल प्रणाली

फली वाली फसलों में आमतौर पर दलहन और तिलहन शामिल हैं। ये फसलें विभिन्न फसल स्वरूपों के अनुकूल होती हैं। बड़ी संख्या में दलहन और तिलहन की कम समय में तैयार होने वाली किस्मों के विकास में हाल की प्रगति से उन्हें सिंचित फसल क्रम में शामिल करना संभव हो गया है। मध्य प्रदेश में अरहर/सोयाबीन–गेहूं की, गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश में मूंगफली–गेहूं की तथा आंध्रप्रदेश और कर्नाटक में मूंगफली–ज्वार की फसल प्रणालियां लोकप्रिय हैं। लेकिन फली–आधारित फसल प्रणाली में पैदावार बढ़ाने की प्रौद्योगिकी में अब तक कोई बड़ी सफलता नहीं मिली है। दलहन की फसलें प्रतिकूल मौसम, पानी के भराव तथा मिट्टी की खराब गुणवत्ता से बहुत प्रभावित होती हैं जिसकी वजह से उनकी उपज बहुत अस्थिर रहती है। ज्यादातर फलियों में रोग और कीट प्रतिरोधक क्षमता की कमी, कम उपज, फूल गिरने की समस्या, अनिश्चित विकास तथा उर्वरक और पानी के असर में कमी की परेशानियां होती हैं। प्रणाली की पोषकों की जरूरत का निर्धारण फली फसलों की नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता के आधार पर करना पड़ता है।

उपसंहार

कृषि प्रौद्योगिकी को पैदावार पर आधारित रखने के बजाय लाभोन्मुख संवहनीय खेती की ओर ले जाए जाने की जरूरत है। संवहनीय कृषि के विकास के लिए स्थितियां ज्यादा अनुकूल होती जा रही हैं। कुशल जलदोहन प्रौद्योगिकियों को बढ़ावा देने तथा उनके अनुरूप फसल और फसल प्रणालियों के चयन से पानी के संरक्षण और उसके बेहतर उपयोग को बल मिलेगा। इससे गरीब किसानों को अपनी फसलों की उत्पादकता को बढ़ाने में मदद मिलेगी। इससे जल–बहुल क्षेत्रों में पानी के स्रोतों के संवहनीय उपयोग के साथ ही लाखों सूक्ष्म अर्थव्यवस्थाएं तैयार होंगी। जल संरक्षण की कम खर्चीली प्रौद्योगिकियों से पानी की तंगी वाले क्षेत्रों में सबसे गरीब तबके भी सिंचाई–आधारित कृषि को अपनाने में सक्षम बनेंगे।

(लेखक द्वय क्रमशः भा.कृ.अ.सं., नई दिल्ली में कृषि विज्ञान विभाग में प्रमुख वैज्ञानिक एवं प्रोफेसर और कृषि अनुसंधान विभाग में वरिष्ठ वैज्ञानिक हैं।)

ई–मेल : ysshivay@hotmail.com

ई–मेल : tiku_agron@yahoo.co.in

जल संरक्षण एवं सिंचाई में महिलाओं की भूमिका

–डॉ. शशिकला पुष्पा
–डॉ. बी. रामास्वामी

हमें महिलाओं के सक्रिय सहभाग के साथ जल संसाधन प्रबंधन में उनकी दक्षता बढ़ाने की आवश्यकता है। यह सुनिश्चित करने के लिए हमें कानूनों तथा संस्थागत व्यवस्थाओं में बदलाव करना होगा ताकि महिलाओं को सिंचित कृषि एवं जल संरक्षण में अपनी भूमिका बढ़ाने का मौका मिले। इतिहास में अधिकतर सभ्यताओं ने जल तथा महिलाओं को जीवन का स्रोत माना है। अब महिलाओं के लिए जल की और जल के लिए महिलाओं की आवश्यकता स्वीकार करने का समय आ गया है।

2011 की जनगणना के अनुसार भारत की जनसंख्या 121.019 करोड़ है, जिसमें महिलाओं की संख्या 58.647 करोड़ यानी कुल जनसंख्या की लगभग आधी है। महिलाओं का सशक्तीकरण देश की प्रगति के लिए बुनियादी शर्त है। जनगणना के नवीनतम आंकड़े बताते हैं कि कृषि क्षेत्र में 35 प्रतिशत से भी कम महिलाएं प्राथमिक कामगार हैं, जबकि पुरुषों के मामले में यह आंकड़ा 81 प्रतिशत है। किंतु इस बात में कोई विवाद नही है कि 9 से 10 करोड़ महिलाओं को रोजगार देने वाला कृषि उद्योग उनके श्रम के बगैर नहीं चल सकता। कृषि में काम करने वाली महिलाएं जमीन तैयार करने, बीज छांटने, तैयार करने तथा बोने से लेकर पौध रोपने, खाद, उर्वरक एवं कीटनाशी डालने और उसके बाद कटाई, ओसाई और थ्रेशिंग में पुरुष किसानों के मुकाबले अधिक तथा देर तक काम करती हैं। कृषि क्षेत्र में सहायक शाखाएं जैसे पशुपालन, मत्स्य पालन और सब्जी उगाना आदि केवल महिलाओं के भरोसे चलती हैं। किंतु नीति निर्माण में उनकी हिस्सेदारी न के बराबर है।

भूमि, जल, वनस्पति और पशुओं जैसी जीवन को सहारा देने वाली बुनियादी व्यवस्थाओं के संरक्षण में महिलाओं ने अहम भूमिका निभाई है और निभा रही हैं। कई इतिहासकार मानते हैं कि फसल वाले पौधों को घर के लायक बनाने और उनकी खेती करने का काम सबसे पहले महिला ने ही किया था और इस तरह खेती की कला तथा विज्ञान की शुरुआत भी उसी ने की थी। भोजन की तलाश में जब पुरुष शिकार पर निकल जाते थे तब महिलाओं ने आसपास की वनस्पति से बीज इकट्ठे करने शुरू किए और भोजन, चारे, रेशे एवं ईंधन के लिए उन्हें उगाना आरंभ कर दिया। कृषि श्रमशक्ति में महिलाओं की बहुत अधिक सहभागिता होने के बाद भी निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनका कहना इसीलिए कम सुना जाता है क्योंकि आमतौर पर अपने परिवार में उन्हें प्राथमिक कमाई वाली तथा भूमि संपदा की स्वामिनी नहीं माना जाता है। इसीलिए पुरुषों की तुलना में उनकी भूमिका ऋण हासिल करने, बाजार पंचायतों में हिस्सा लेने, फसल–चक्र का अनुमान लगाने और निर्णय लेने एवं सरकारी प्रशासकों से बातचीत करने भर की रह जाती है।

कृषि में महिलाओं की हिस्सेदारी की प्रकृति एवं सीमा अलग–अलग इलाकों में अलग–अलग होती है। इतना ही नहीं, किसी एक इलाके के भीतर भी अलग–अलग पारिस्थितिक उप–क्षेत्रों, कृषि प्रणालियों, जातियों, पारिवारिक चक्र के विभिन्न चरणों में भी कृषि कार्यों में उनकी सहभागिता का स्तर बहुत अलग–अलग होता है। हालांकि इन विभिन्नताओं के बावजूद कृषि उत्पादन में शायद ही ऐसी कोई गतिविधि हो, जिसमें महिलाएं बड़ी जिम्मेदारी नहीं उठाती हों। भारत की जनसंख्या में 48.5 प्रतिशत महिलाएं हैं और कृषि क्षेत्र महिलाओं को सबसे अधिक रोजगार देता है। आधिकारिक आंकड़ों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में 59 प्रतिशत पुरुष कृषि कार्य करते हैं, लेकिन महिलाओं की संख्या 75 प्रतिशत है। कृषि में महिलाओं की हिस्सेदारी पुरुषों की तुलना में बढ़ रही है, जिससे कृषि पर महिलाओं की बढ़ती निर्भरता का पता तो चलता ही है, यह भी साबित होता है कि इस क्षेत्र की सतत् वृद्धि और भविष्य में महिलाओं की कितनी अहम भूमिका है। कई वर्षों से पुरुष कृषि से विमुख हो रहे हैं, जिसके कारण कृषि श्रमशक्ति में महिलाओं का हिस्सा बढ़ता गया है और इस क्षेत्र में उनकी भूमिका का विस्तार भी हुआ है।

जल संसाधनों के प्रयोग के प्रति नए दृष्टिकोण को बढ़ावा

देने में महिलाओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है, जो तकनीकी ज्ञान पर ही नहीं बल्कि सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों पर भी आधारित होगा। इस नए दृष्टिकोण में यदि ताजे जल के भावी सीमित संसाधनों को बेहतर करने तथा संभालने के लिए स्त्री एवं पुरुषों के विशिष्ट ज्ञान, कौशल का पारस्परिक आदान–प्रदान तथा अवसरों की साझेदारी शामिल होती है तो यह अधिक न्यायपूर्ण एवं शांतिपूर्ण दुनिया तैयार करने में योगदान करेगा। जल के लिए महिलाओं एवं महिलाओं के लिए जल की महत्ता को डबलिन सम्मेलन में औपचारिक मान्यता दी गई थी। डबलिन घोषणापत्र में जल की प्रभावी एवं पर्याप्त उपलब्धता के जो चार सिद्धांत प्रस्तुत किए गए थे, उनमें एक था पेयजल तथा स्वच्छता के लिए सभी योजनाओं एवं कार्यक्रमों के नियोजन तथा क्रियान्वयन में महिलाओं का पूर्ण सहभाग। संयुक्त राष्ट्र के अनुमानों के अनुसार 2025 तक लगभग 5.5 अरब लोग यानी दुनिया की एक तिहाई जनसंख्या पानी की किल्लत से जूझेगी। जल की गुणवत्ता में कमी के कारण उसकी आपूर्ति एवं मांग के बीच असंतुलन और बिगड़ता है। इससे दुनिया भर के अधिक से अधिक क्षेत्रों में जीवनयापन खतरे में पड़ता जाता है।

रियो में 1992 में संपन्न संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन में यह माना गया कि पर्यावरण में क्षरण का गरीबी विशेष रूप से महिलाओं के जीवन से संबंधित गरीबी के साथ संबंध होता है। इस संबंध में रियो सम्मेलन में घोषणा हुई कि 'पर्यावरण के रखरखाव एवं सतत् विकास में महिलाओं को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। सतत् विकास का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए उनकी सर्वांगीण प्रतिभागिता आवश्यक है।' हालांकि पानी की रोजमर्रा की आपूर्ति, रखरखाव तथा इस्तेमाल में महिलाओं की अहम भूमिका देखते हुए यह तथ्य तो स्वीकार किया गया कि जल प्रबंधन के सभी चरणों में महिलाओं की सहभागिता से जलापूर्ति एवं स्वच्छता परियोजनाओं को लाभ मिल सकता है, लेकिन जल–प्रबंधन कार्यक्रमों में उनकी सहभागिता तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी हिस्सेदारी बढ़ाए जाने की जरूरत है।

महिलाएं जल की प्रमुख उपयोगकर्ता होती हैं। वे खाना पकाने, धोने, परिवार की स्वच्छता और सफाई के लिए जल का प्रयोग करती हैं। जल प्रबंधन में उनकी अहम भूमिका होती है। दुनिया भर में तेजी से हो रहे सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों के कारण कई प्रकार की चुनौतियां एवं समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। ऐसे में यह अनिवार्य हो गया है कि जल प्रबंधन तथा सिंचाई की सुविधाओं समेत अर्थव्यवस्था एवं समाज के सभी क्षेत्रों से जुड़ी नीतियां बनाने में लैंगिक दृष्टिकोण को ठीक से समाहित किया जाए। घर–परिवार में तथा सिंचित अथवा वर्षा–सिंचित फसलों की किसान के रूप में पानी इकट्ठा करने, इस्तेमाल करने और उसके प्रबंधन में उनकी महत्वपूर्ण सहभागिता के कारण महिलाएं जल संसाधनों की कड़ी हैं और उनके पास जल–संसाधनों की गुणवत्ता एवं विश्वसनीयता, सीमा एवं भंडारण के उचित तरीकों समेत पीढ़ियों से मिला ज्ञान है। साथ ही वे जल संसाधन विकास एवं सिंचाई की नीतियों तथा कार्यक्रमों को पूरा करने की कुंजी भी हैं।

भारत में पिछले कई वर्षों से हमने देखा है कि जल संसाधन नीतियों तथा कार्यक्रमों ने महिलाओं के जल–संबंधी अधिकारों को खतरे में ही डाला है और इसी कारण जल का सतत् प्रबंधन एवं प्रयोग भी खतरे में पड़ा है। पारंपरिक सिंचाई जैसे हस्तक्षेप पुरुषों तथा महिलाओं के स्वामित्व संबंधी अधिकारों, श्रम विभाजन तथा आय में मौजूद असंतुलन पर ध्यान नहीं दे सके हैं। सिंचाई से भूमि की कीमत बढ़ती है और सामाजिक परिवर्तन आता है, जिसमें आमतौर पर पुरुषों का पलड़ा भारी रहता है। लैंगिक विश्लेषण सिंचाई योजनाओं का प्रदर्शन सुधारने में सिंचाई योजनाकारों तथा नीति निर्माताओं की मदद कर सकता है। सिंचित कृषि उत्पादन प्रणालियों में मोटे तौर पर तीन क्षेत्रों पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है, जिनमें स्थानीय परिस्थितियों के अधिक गहन, स्त्री–पुरुष आधारित विश्लेषण से सिंचाई की अधिक प्रभावी, निष्पक्ष एवं सतत् नीतियां तथा कार्यक्रम बनाने में मदद मिलेगी। भूमि तथा सिंचाई के जल को प्रयोग एवं नियंत्रित करने का महिलाओं का अधिकार सुनिश्चित करना सबसे पहली आवश्यकता है। अध्ययनों से महिलाओं के लिए भूमि एवं सिंचाई के स्वतंत्र अधिकारों का भूमि एवं श्रम की अधिक उत्पादकता से सीधा संबंध पता चलता है। इसलिए सिंचाई योजनाओं के अंतर्गत भूमि व्यक्तिगत किसानों को आवंटित की जानी चाहिए, पूरे परिवार को नहीं ताकि कृषि में लगी लाखों महिलाओं को लाभ मिल सके।

लैंगिक मुद्दों का अर्थ महिलाओं एवं पुरुषों के जीवन तथा उनके बीच के संबंधों को प्रभावित करने वाला पहलू है। योजना तैयार करने, रखरखाव तथा प्रबंधन में महिलाओं की सहभागिता कम रहने से सेवाओं की गुणवत्ता तथा महिलाओं की स्थिति एवं विकास में उनकी सहभागिता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। महिलाओं तथा पुरुषों का निष्पक्ष विकास करने के लिए सभी राष्ट्रीय योजनाओं में लैंगिक पक्षों को जरूर शामिल किया जाना चाहिए। विकासशील देशों में लैंगिक पक्षों का अर्थ है विकास एवं अन्य आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं की अधिक सहभागिता। चूंकि महिलाओं की आय पुरुषों की अपेक्षा काफी कम होती है और सिंचित फसलों में निवेश के लिए अधिक पूंजी की आवश्यकता पड़ सकती है, इसलिए सिंचाई करने वाली महिलाओं के लिए ऋण की व्यवस्था उपलब्ध कराई जानी चाहिए। ऋण उपलबध होने से सिंचाई करने वाली महिलाएं तकनीक प्राप्त कर सकेंगी। हमें महिलाओं के सक्रिय सहभाग के साथ जल संसाधन प्रबंधन में उनकी दक्षता बढ़ाने की आवश्यकता है। यह सुनिश्चित करने के लिए हमें कानूनों तथा संस्थागत व्यवस्थाओं में बदलाव करना होगा ताकि महिलाओं को सिंचित कृषि एवं जल संरक्षण में अपनी भूमिका बढ़ाने का मौका मिले। इतिहास में अधिकतर सभ्यताओं ने जल तथा महिलाओं को जीवन का स्रोत माना है। अब महिलाओं के लिए जल की और जल के लिए महिलाओं की आवश्यकता स्वीकार करने का समय आ गया है।

(लेखिका डॉ. शशिकला पुष्पा राज्यसभा की सांसद हैं और डॉ. बी. रामास्वामी एपीजी शिमला विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति एवं सांसद महोदया के विधिक सलाहकार हैं।)

ईमेल : sasikalapushpamprs@gmail.com

जल संरक्षण हेतु जन भागीदारी जरूरी

–प्रभांशु ओझा
–प्रेम कुमार

भारत में वर्तमान सरकार ने भी जल संरक्षण में लोगों की भागीदारी को अनूठे प्रयासों के जरिए बढ़ाने की पहल की है। इसके तहत स्थानीय जल पेशेवरों को जल–संबंधी मुद्दों के संबंध में जन–जागरूकता फैलाने और जल से जुड़ी समस्याओं के निराकरण के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण देकर उन्हें 'जल मित्र' बनाया जा रहा है। साथ–साथ संबंधित महिला पंचायत सदस्यों को 'जल नारी' बनने के लिए प्रोत्साहित करने का भी प्रावधान है। योजना में प्रत्येक जल ग्राम में सुजलम कार्ड के रूप में 'एक जल स्वास्थ्य कार्ड तैयार किया जाएगा, जो गांव के लिए उपलब्ध पेयजल स्रोतों की गुणवत्ता के बारे में वार्षिक सूचना प्रदान करेगा।

बढ़ती जनसंख्या और प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन होने से आज मनुष्य के सामने कई समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। इनमें से जल संकट एक महत्वपूर्ण समस्या बन कर प्रकट हुई है। जल मानव जीवन की बुनियादी आवश्यकता है। जल के बिना आज कुछ भी संभव नहीं है। जल के अभाव में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

वर्तमान समय में पर्यावरण असंतुलन से जल संसाधनों के स्रोत घटने से जल स्रोतों की संख्या में कमी आती चली जा रही है। इस कारण वनों का विनाश, ग्लेशियरों के सिमटने, प्राकृतिक आपदाओं–भूकंप, भूस्खलन आदि के कारण पानी की मात्रा एवं गुणवत्ता में कमी आने लगी है।

ग्लोबल एनवायरमेंट आउटलुक' रिपोर्ट बताती है कि पृथ्वी की एक तिहाई जनसंख्या पानी की कमी की समस्या का सामना कर रही है। इसी रिपोर्ट के अनुसार सन 2032 तक विश्व की लगभग आधी जनसंख्या पानी की भीषण कमी से पीड़ित हो जाएगी। जल की अतिवृष्टि, उसके प्लावन प्रकोप से हर कोई भलीभांति परिचित है, किन्तु इसकी कमी किसी जंग का कारण भी बन सकती है, यह सामान्य जन की कल्पना से परे है। ज़मीनी सच्चाइयां तेजी से बदल रही हैं और विश्व भर में जो परिस्थितियां निर्मित हो रही हैं, उससे लगता है कि आने वाले समय में जल मानव जीवन के हर स्तर पर विवादों का प्रमुख कारण बन जाएगा।

भारत के ग्रामीण क्षेत्र भी पेयजल अभाव के घोर संकट से ग्रस्त हैं। देश के ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल संकट की बानगी यह है कि गर्मी शुरू होते ही, भूजल–स्तर में भारी गिरावट के साथ पानी की किल्लत शुरू हो जाती है। वर्तमान में देश के कई क्षेत्रों में भूजल के अतिदोहन के कारण इसका स्तर 50 फीट से भी नीचे गिर गया है। मध्यप्रदेश के इंदौर संभाग में भूजल का स्तर 400 फीट, उज्जैन संभाग में 500 फीट तथा सागर संभाग में 600 फीट से नीचे पहुंच गया है। महाराष्ट्र, तमिलनाडू, आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, मध्य प्रदेश के मालवा और उत्तर प्रदेश के बुंदेलखंड आदि क्षेत्रों में ग्रीष्मऋतु में पेयजल का संकट अब एक जानी–पहचानी बात बन चुकी है।

चूंकि जल संकट मानव के अस्तित्व से जुड़ा हुआ मुद्दा है, इसलिए ये आवश्यक है कि जन भागीदारी और सामूहिक प्रयासों से इस समस्या से निपटा जाए। हमारे देश में जल संरक्षण की अवधारणा में ही लोगों की भागीदारी की बात सुनिश्चित की गई है, यही कारण है कि ग्रामीण पेयजल आपूर्ति जो पहले राज्य का विषय थी और संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची में शामिल थी, को संविधान संशोधन द्वारा पंचायतों को सौंप दिया गया। भारत सरकार द्वारा

सर्वप्रथम सन् 1972–73 में आरंभ किए गए त्वरित ग्रामीण जल आपूर्ति कार्यक्रम में जनप्रतिनिधियों विशेषकर ग्राम पंचायतों के पंच तथा सरपंचों की जिम्मेदारी सुनिश्चित कर जल संरक्षण को जन–आंदोलन का स्वरूप प्रदान किया गया। इसी क्रम में पानी की निरंतर कम होती उपलब्धता तथा आपूर्ति, पानी की खराब गुणवत्ता आदि मुद्दों के समाधान हेतु अप्रैल 2009 में ग्रामीण पेयजल आपूर्ति के दिशा–निर्देश को भी संशोधित किया गया। बाद में इस संशोधित कार्यक्रम को 'राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम' के नाम से जाना गया।

वैसे भारत में हजारों वर्षों से जल संरक्षण की एक सामुदायिक परंपरा ही रही है। हजारों वर्षों के चिंतन–मनन के बाद भारत के प्राचीन मनीषियों ने जल संरक्षण की अत्यंत विश्वसनीय तथा कम लागल वाली संरचनाएं विकसित की थीं। ये सारी व्यवस्थाएं समाज–आधारित थीं। स्थानीय समुदाय इसके केंद्र बिंदु होते थे और ये व्यवस्थाएं सुचारू ढंग से कार्य करती थीं।

यह एक सच है कि पिछले दशकों में जल संरक्षण एवं संवर्धन की इस परंपरागत व्यवस्था की घोर उपेक्षा हुई है और बहुत हद तक वर्तमान जल संकट इसके कारण ही उत्पन्न हुआ है। राष्ट्रीय ग्रामीण पेयजल कार्यक्रम से प्रेरणा लेकर हमें ग्रामीण अंचलों में जल संरक्षण एवं संवर्धन हेतु जन–भागीदारी पर आधारित नए कार्यक्रम की श्रृंखला शुरू करनी होगी। सरकार ने इस दिशा में कदम बढ़ाते हुए योजनाओं के माध्यम से उत्प्रेरक सुविधाएं जुटाने और वातावरण निर्माण का कार्य किया है, अब शेष समाज को भी अपनी जिम्मेदारी निभानी होगी।

जल संवर्धन का पहला सिद्धांत है, जल का संरक्षण उसी स्थान पर होना चाहिए जहां जल की बूंद गिरती है। जब पृथ्वी पर गिरी जल की बूंद अपने स्थान से आगे बढ़ जाती है, तो उसके संरक्षण का प्रयास अनर्थकारी हो जाता है। धरती के भीतर जल संरक्षण सतही नमी के दबाव से होता है। पानी अपने दबाव से धरती के भीतर अपने लिए जगह बनाता है। यदि वर्षा की बूंदें गिरने के बाद बह जाती हैं, तो धरातल पर अपेक्षित सजलता नहीं उत्पन्न कर पाती। इसलिए आवश्यक है कि वर्षा की बूंदें जहां गिरे, वहीं उसका संरक्षण हो, वह वहीं रुके और जब उस स्थान पर पर्याप्त मात्रा में सजलता आ जाए, तभी बूंदें आगे बढ़ें। अगर जल की बूंदें आकाश से गिरते ही बढ़ गई तो ना ही धरती सजल होगी और ना ही वायु। इसके अलावा मिट्टी भी अपनी जगह से कटकर बह जाएगी। मिट्टी कटकर बह जाने से सतही सजलता का वाष्पीकरण तेज गति से हो जाता है और धरती यथोचित गहराई तक सजल नहीं बन पाती। इसके विपरीत अगर धरती यथोचित गहराई तक सजल बनती है, तो सतही सजलता का वाष्पीकरण तेजी से नहीं होता और वहां बायोमास बनने लगता है, जिससे धरती पर हरियाली बढती है तथा मिटटी का संरक्षण स्वतः ही होने लगता है और धरती सजल होने लगती है। पानी धरती के भीतर बनी नालियों से रिस–रिस कर समूची धरती को सजल बनाने लगता है। ऐसा होने पर नदी–नाले, कुएं, तालाब, झरने व बोरवेल सब सदाबहार बन सकेंगे और पेयजल संकट जैसी स्थिति निर्मित नहीं होती।

इस समय देश के लगभग सभी ग्रामीण क्षेत्रों में महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार योजना (मनरेगा) संचालित है। इस कार्यक्रम के तहत व्यक्ति जहां रहता है, वहीं उसके आसपास उसे रोजगार उपलब्ध कराने की कोशिश की जाती है, ताकि स्थानीय गरीब लोग रोजगार हेतु पलायन करने को मजबूर न हों। इस कार्यक्रम के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत संरचना के निर्माण हेतु सरकार ने बड़े पैमाने पर धन उपलब्ध कराया है। यदि इसके साथ राष्ट्रीय पेयजल कार्यक्रम का समन्वय स्थापित किया जा सके, तो तालाब, खेत–तालाब, स्टांपडैम आदि जल संरचनाओं को प्राथमिकता प्रदान कर जल–संवर्धन को बढ़ावा दिया जा सकता है। वर्षाजल का संवर्धन जल–संग्रहण के अलावा, भूजल स्रोतों को भरने में भी किया जाना चाहिए। यह एक सरल और किफायती उपाय है, जिसे सभी लोग कर सकते हैं। इसके अंतर्गत जलग्रहण क्षेत्र एवं जल–भंडारण संरचना के निर्माण तथा अन्य घटक जैसे पाइप लाइन और घेरवाद की व्यवस्था भी शामिल है। इसके अतिरिक्त जल को जमीन के अंदर उतरने के लिए भी प्रभावी तरीकों को अपनाया जा सकता है।

वर्षा न होने या कम होने से सबसे ज्यादा नुकसान किसानों का होता है। इसलिए किसानों को ध्यान रखना चाहिए कि फसल काटने के बाद खेत में आग न लगे, इससे खेत के जैव पदार्थ, जिनसे खेत में जल संवर्धन होता है और जमीन के अंदर जल के रिसने की गति तेज होती है, वे जल जाते हैं। ज्ञातव्य है कि खेत में पानी का ठहराव जितना अधिक होगा, जल का जमीन में रिसाव भी उतना ही अधिक होगा। खेत में पानी का रिसाव अधिक हो, इसके लिए छोटे–छोटे पोखर बनाए जाने चाहिए। इस काम के लिए जन–भागीदारी से काफी सफलता हासिल की जा सकती है।

जल संरक्षण की एक अन्य प्रचलित विधि मकान छतों से गिरने वाले वर्षाजल का संग्रह है। इसके तहत छत से गिरने वाले वर्षाजल को विशेष रूप से बनाए गए जलाशयों में जमा किया जाता है। बाद में छनाई की सरल विधियों द्वारा इस पानी को साफ कर इसका उपयोग विभिन्न कार्यों हेतु किया जा सकता है। शोध के द्वारा यह बात भली–भांति स्पष्ट हो चुकी है कि वर्षाजल जैव दृष्टि से शुद्ध होता है। इसकी प्रकृति मृदु होती है और यह कार्बनिक पदार्थो से मुक्त होता है। स्पष्ट है कि जल पीने के साथ अन्य सभी कार्यों के लिए उपयुक्त होता है।

अध्ययन से यह भी पता चला है कि मकान की छत पर गिरने वाले वर्षाजल से हर साल लगभग हजारों लीटर पानी भूमिगत जलाशय में भरा जा सकता है। वर्षा के इस जल का संरक्षण ग्रामीण क्षेत्रों के लिए वरदान साबित हो सकता है। आजकल ग्रामीण क्षेत्रों में भी अनेक पक्के मकान एवं स्कूल, पंचायत आदि

शासकीय भवन बनाए जा रहे हैं। इनकी छत पर काफी पानी इकट्ठा होता है, जो बहुत ही शुद्ध होता है। वर्षा के इस जल को पाइप द्वारा छानकर सीधे नलकूप से जोड़ा जा सकता है। यह अच्छी बात है कि भारत में इस विधि की महत्ता को आज पहचाना जा रहा है।

इन सभी प्रयासों को तभी सफलता मिल सकती है कि जब जन–भागीदारी सुनिश्चित हो और लोगों के बीच में जागरूकता का प्रसार हो।

यह भी गौर करने वाली बात है कि भारत में वर्तमान सरकार ने भी जल संरक्षण में लोगों की भागीदारी को अनूठे प्रयासों के जरिए बढ़ाने की पहल की है। देश में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने और अर्थव्यवस्था में भूमिगत जल की महत्वपूर्ण भूमिका को देखते हुए सरकार ने गिरते भूजल–स्तर की समस्या से निपटने के लिए दीर्घकालिक उपायों के साथ ही कुंओं व तालाबों के संरक्षण के महत्व, सिंचाई के स्रोतों के विकास और जल स्रोतों के पुनर्जीवन के बारे में 'जल मित्रों' के जरिए जनभागीदारी के साथ जागरूकता फैलाने की पहल की है। इसके तहत स्थानीय जल पेशेवरों को जल–संबंधी मुद्दों के संबंध में जन–जागरूकता फैलाने और जल से जुड़ी समस्याओं के निराकरण के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण देकर उन्हें 'जल मित्र' बनाया जा रहा है। साथ–साथ संबंधित महिला पंचायत सदस्यों को 'जल नारी' बनने के लिए प्रोत्साहित करने का भी प्रावधान है। योजना में प्रत्येक जल ग्राम में सुजलम कार्ड के रूप में 'एक जल स्वास्थ्य कार्ड तैयार किया जाएगा, जो गांव के लिए उपलब्ध पेयजल स्रोतों की गुणवत्ता के बारे में वार्षिक सूचना प्रदान करेगा।

जलग्राम योजना के तहत जलग्राम का चयन इसके कार्यान्वयन के लिए गठित जिला–स्तरीय समिति द्वारा किया जाएगा। प्रत्येक गांव को एक इंडेक्स वैल्यू प्रदान की जाएगी, जो जल की मांग और उपलब्धता के बीच अंतर के आधार पर तैयार होगी और सबसे अधिक इंडेक्स वैल्यू वाले गांव को जलक्रांति अभियान कार्यक्रम में शामिल किया जाएगा। विशेषज्ञों का कहना है कि 1970 के दशक में हरितक्रांति की शुरुआत के दौरान भूमिगत जल के प्रयोग में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है, जो लगातार जारी है। फलस्वरूप जलस्तर घटने, खेतों में कुओं की कमी और सिंचाई स्रोतों की दीर्घकालिकता में ह्रास के रूप में पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ा। इसके अलावा, देश में कई जगहों पर प्राकृतिक गुण और मानवोद्भव कारणों से संपर्क प्रभाव के कारण भूमिगत जल पीने योग्य नहीं रह गया है।

यह ध्यान देने योग्य बात है कि ग्रामीण विकास मंत्रालय ने प्रत्येक जल ग्राम के लिए ब्लॉक–स्तरीय समितियों द्वारा ग्राम में जल के स्रोत, मात्रा व गुणवत्ता के उपलब्ध आंकड़ों व अनुमानित आवश्यकताओं के आधार पर एकीकृत विकास योजना बनाई।

जून 2015 में इसकी शुरुआत तीन क्षेत्रों–राजस्थान के जयपुर, उत्तर प्रदेश के झांसी और हिमाचल प्रदेश के शिमला से की गई थी। वर्तमान सरकार के ही नेतृत्व में भूजल की गुणवत्ता में गिरावट और उत्पादक जल स्रोतों में कमी के दोहरे खतरों से निपटने और विभिन्न पक्षों के बीच व्यापक विचार–विमर्श के माध्यम से बेहतर भूजल प्रशासन और प्रबंधन हेतु रणनीति तैयार करने के लिए, जल संसाधन, नदी विकास और गंगा के कायाकल्प मंत्रालय ने जल क्रांति अभियान शुरू किया है।

यहां इस बात को भी रेखांकित किए जाने की जरूरत है कि भारत में जल संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए वैज्ञानिकों व प्रबंधकों को अपने देश में प्रौद्योगिकी में सुधार करने की जरूरत है। सुखद ये है कि वर्तमान सरकार की ओर से उठाए जा रहे कदमों में मानव के स्वास्थ्य पर मानवजनित प्रदूषण से पड़ने वाले प्रभाव को बेहतर ढंग से समझने के लिए अध्ययन करने की पहल शामिल है।

इसके साथ ही भूजल प्रदूषण को दूर करने के लिए पायलट अध्ययन और अधिक तेजी से पूरा करने की पहल की गई है। जन–जागरूकता व क्षमता निर्माण अभियान के जरिए भूजल प्रदूषण के खिलाफ लड़ाई में सामुदायिक भागीदारी सुनिश्चित करना और पूरे देश में बड़े पैमाने पर मानचित्रण का कार्य करने के लिए विद्युत प्रतिरोधकता टोपोग्राफी और हैलीजनित सर्वेक्षण जैसे उन्नत भूभौतिकीय अध्ययन करने की पहल शामिल है। इस कार्य में सुदूर संवेदन तकनीक भूजल रिचार्ज और ड्राफ्ट की कंप्यूटिंग की वर्तमान पद्धति की पूरक हो सकती है। कृत्रिम पुनर्भरण तकनीक की योजना के तहत स्रोत जल के लिए समुद्र और वैकल्पिक जल स्रोतों का उपयोग करना शामिल है।

देश के भूजल संसाधनों की भरपाई करने के लिए उपयुक्त डिजाइन वाली जल संरक्षण संरचनाओं के कार्यान्वयन के जरिए पहाड़ी क्षेत्रों में झरनों के संरक्षण और मैदानी इलाकों में बोरवेल के अंधाधुंध निर्माण कार्यों को सीमित करके भूजल के संरक्षण के कार्यों को बढ़ावा दिया जा रहा है।

गड़बड़ाता मौसम चक्र तथा पारिस्थितिकीय संतुलन इशारा करता है कि भविष्य में जल–संकट और बढ़ेगा। जल और समकालीन अन्य समस्याओं में एक पार्थक्य यह है कि जहां शेष अन्य समस्याओं से आसानी से निपटा जा सकता है, वहीं जल–संकट विकराल रूप धारण कर लेता है, क्योंकि इसके बिना जीवन जीना मुश्किल हो जाता है। स्पष्ट है कि इस समस्या के समाधान हेतु हमें तत्काल ही सामूहिक प्रयास करने होंगे। वर्षा की बूंदों को सहेजना होगा तथा जल का उपयोग विवेकपूर्ण तरीके से सोच–समझकर करना होगा। ज्ञातव्य है कि हमारी परंपरागत जल सरंचनाओं ने देश के भू–जल भंडारों को भर रखा था। पर वे संरचनाएं आज कई कारणों से संकट के दौर में हैं। इनका संरक्षण जन–भागीदारी से ही संभव है।

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में सहायक प्रोफेसर हैं। विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में नियमित रूप से इनके लेख प्रकाशित होते रहते हैं।)
ई–मेल : prabhanshukmc@gmail.com

भारतीय संविधान में जल

भारत राज्यों का परिसंघ है। केंद्र और राज्यों के बीच जिम्मेदारियों के आवंटन के संदर्भ में संवैधानिक प्रावधान तीन श्रेणियों के अंतर्गत आते हैं : संघ सूची (सूची 1), राज्य सूची (सूची 2) और समवर्ती सूची (सूची 3)। संविधान के अनुच्छेद 246 में संसद और राज्यों के विधानमंडलों द्वारा कानून बनाने से संबंधित प्रावधान शामिल हैं। देश में अधिकांश नदियां अंतर–राज्यीय हैं, अतः इन नदियों के जल का नियमन और विकास राज्यों के बीच मतभेदों और विवादों का स्रोत बनता है। संविधान में जल एक ऐसा मामला है, जो सूची 2 अर्थात् राज्य सूची की प्रविष्टि 17 के अंतर्गत आता है। यह प्रविष्टि सूची 1 अर्थात् संघ सूची की प्रविष्टि 56 के प्रावधान के अधीन है।

☞ अनुच्छेद 246

- खंड (2) और (3) में किसी बात के होते हुए भी, संसद को विशेष अधिकार है कि वह सातवीं अनुसूची (जिसको संविधान ने ''संघ सूची'' कहा है) में वर्णित मामलों में से किसी के भी बारे में कानून बना सकती है।
- खंड (3) में किसी बात के होते हुए भी, संसद, और, खंड (1) के अधीन, किसी भी राज्य के विधानमंडल को यह अधिकार है कि वे सातवीं अनुसूची (जिसको संविधान ने ''समवर्ती सूची'' कहा है) के अंतर्गत सूची (3) में वर्णित किसी भी मामले में कानून बना सकता है।
- खंड (1) और (2) के अधीन किसी राज्य के विधानमंडल को इस बात का विशेष अधिकार है कि वह सम्बद्ध राज्य या उसके किसी हिस्से के लिए सातवीं अनुसूची (जिसको संविधान ने 'राज्य सूची'' कहा है) के अंतर्गत सूची (2) में वर्णित किसी भी मामले में कानून बना सकता है।
- संसद को भारत के किसी भी भू–भाग से संबंधित मामले में कानून बनाने का अधिकार है, जो राज्य सूची में वर्णित न हो, भले ही ऐसा विषय राज्य सूची में वर्णित विषय रहा हो।

☞ अनुच्छेद 262

जल से संबंधित विवादों के मामले में, अनुच्छेद 262 में निम्नांकित प्रावधान हैं :–

- कानून के जरिए संसद जल के इस्तेमाल, वितरण और नियंत्रण के संबंध में, अथवा अंतर–राज्य नदी या नदी घाटी के संबंध में, किसी विवाद या शिकायत के अधिनिर्णयन का प्रावधान कर सकती है।
- संविधान में किसी बात के होते हुए भी, संसद कानून द्वारा प्रावधान कर सकती है कि खंड (1) में वर्णित किसी विवाद या शिकायत के संदर्भ में न तो उच्चतम न्यायालय और न ही किसी अन्य न्यायालय का कोई अधिकार होगा।

☞ सातवीं अनुसूची की सूची (1) की प्रविष्टि 56

सातवीं अनुसूची की सूची (1) की प्रविष्टि 56 में प्रावधान है कि ''अंतर–राज्य नदियों और नदी घाटियों का नियमन और विकास उस सीमा तक जनहित में संघ द्वारा किया जा सकता है, जहां तक कि संसद द्वारा कानून के जरिए ऐसे नियमन और विकास को संघ के नियंत्रण में घोषित किया गया हो।''

☞ सातवीं अनुसूची की सूची (2) की प्रविष्टि 17

सातवीं अनुसूची की सूची (2) की प्रविष्टि 17 में प्रावधान है कि ''जल, जिससे अभिप्राय है, जलापूर्तियां, सिंचाई और नहर, जल निकासी और तटबंध, जलभंडार और जलविद्युत सूची (1) की प्रविष्टि 56 के प्रावधानों के अधीन है।''

वास्तव में केंद्र सरकार को सातवीं अनुसूची की सूची (1) की प्रविष्टि 56 के अंतर्गत अंतर–राज्य नदियों के नियमन और विकास का अधिकार उस सीमा तक है, जहां तक कि जनहित में संसद द्वारा कानून के जरिए उपबंधित किया गया हो।

केंद्र सरकार को यह अधिकार भी है कि वह संविधान के अनुच्छेद 262 के अंतर्गत अंतर–राज्य नदी या नदी घाटी के जल से संबंधित किसी विवाद के अधिनिर्णयन के लिए कानून बना सकती है। ❑

जल संरक्षण में भागीदारी के अहम किरदार

–आशुतोष कुमार सिंह

देश में आज पानी की समस्या गर सर उठा रही है तो इसके जिम्मेदार हम भी हैं। हमने अपने पारंपरिक जल स्रोतों से खुद को काट लिया है। जरूरत इस बात की है कि हम अपने जल स्रोतों की ओर लौटें। तभी हम जल की कमी से उभर पाएंगे और देश–समाज से पेयजल संकट और खेती–किसानी के लिए पानी की कमी को उबारने में मदद कर पाएंगे।

संसाधनों से भरे–पूरे भारत जैसे देश में गर किसानों को सिंचाई के लिए समुचित पानी नहीं मिल पा रहा है, आम लोगों को पीने के लिए शुद्ध पानी के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है, इसका मतलब यह है कि समाज जल संरक्षण की हमारी पुरानी तकनीकों को भुलाता जा रहा है। आज़ादी के बाद पानी की बात करने वाले लोगों में स्व. अनुपम मिश्र जी का नाम सबसे पहले आता है। वे जब तक रहे, जल प्रबंधन की बात करते रहे। देश के लोगों को पानी का ज्ञान देने वालों में अनुपम जी ने अनुपम काम किया। 'आज भी खरे हैं तालाब' पुस्तक में जिस चिंतन को उन्होंने आगे बढ़ाया, उसे देश ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में माना जा रहा है। इस आलेख में हम देश के उन लोगों की चर्चा करने जा रहे हैं, जिनका समाज में जल संरक्षण को बढ़ावा देने में अहम योगदान है।

थार के प्रेरणास्रोत चतर सिंह जाम

कम बरसात के बावजूद चतर सिंह जाम ने परंपरागत जल व्यवस्थाओं को पुनर्जीवित कर राजस्थान के जैसलमेर के कई गांवों को आत्मनिर्भर बनाया है। जैसलमेर क्षेत्र की सालाना औसतन बारिश 100 मिमी. है और वह भी हर साल नहीं। दस साल में तीन बार सूखे का सामना करना पड़ता है। पर थार रेगिस्तान के इन गांवों में आज पानी है, पलायन नहीं। इस उपलब्धि का बहुत बड़ा श्रेय 55 साल के चतर सिंह जाम को जाता है। उन्हें लोग उनकी पारिवारिक पदवी 'जाम साहब' से भी बुलाते हैं। पिछले 12 सालों में इन्होंने काफी लोगों को उन परंपरागत जल संरचनाओं को पुनर्जीवित करने के लिए प्रेरित किया जो कठिन परिवेश के बावजूद खेती और पशुधन को पालती हैं। यहां दो सतही व्यवस्था काम करती हैं; ऊपर अच्छी बरसात में तालाब और जोहड़ भर जाते हैं और 15–20 फीट नीचे खड़िया मिट्टी या जिप्सम की एक पट्टी जमीन में रिसकर आने वाले पानी को संजोकर रखती है, मुश्किल दिनों के लिए। यह पानी उस भूजल से बिलकुल अलग है जो ज़मीन में काफी गहरा और खारा है। जब तालाब सूख जाते हैं तब यही मीठा पानी कुईं या बेरियों द्वारा निकाला जाता है। सरकारी योजनाओं पर बढ़ती निर्भरता के कारण यह संरचनाएं और सामाजिक जुड़ाव टूट–सा गया था। जब सरकारी सहायता देर तक न टिक सकी तो गांव वालों के पास पलायन के सिवाय कोई चारा न बचा। उस समय चतर सिंह ने सामूहिक कार्य की रीत को फिर से सजीव किया और लोगों ने मिलकर न सिर्फ अपने पुरखों के खड़ीन, बेरियां और तालाबों को सुधारा बल्कि नई संरचनाएं भी रची। इस तरह पानी–विहिन समाज फिर से पानीदार हो गया।

सामूहिक प्रयास से एक नदी को पुनर्जीवित कर दिखाया संत बलबीर सिंह सीचेवाल ने

कहते हैं न कि सामूहिकता में बहुत शक्ति होती है। गर कोई काम करने के लिए शिद्दत से लगा जाए तो सारी कायनात सहयोग करने के लिए आगे आ जाती है। वैसा ही हुआ संत बलबीर सिंह सीचेवाल के साथ। जब उन्होंने मृतप्रायः हो चुकी काली बेई नदी को पुनर्जीवित करने का संकल्प लिया। तब शायद ही किसी ने सोचा होगा कि नाले में परिवर्तित हो चुकी इस नदी को पुनर्जीवित किया जा सकता है। लेकिन ऐसा हुआ। और आज इस नदी के किनारे हरियाली है। गांव वालों का जीवन सुखमय बन गया है। सदियों पुरानी इस नदी का स्रोत धनोआ हिम्मतपुर गांव (निकट–मुकेरियां, जिला–होशियारपुर) के करीब से बहते व्यास दरिया की सेम है। कहने का तात्पर्य है कि जमीन के नीचे से पानी सोते–झरनों की शक्ल में अपने–आप फूटते हैं जिससे पानी के बहाव की धारा बनती है और फिर एक नदी का रूप धारण करती है। दसूहा, बेगोवाल, भुलथ्थ, सुभानपुर, सुल्तानपुर लोधी और अन्य गांवों–कस्बों के करीब से 160 किलोमीटर का रास्ता तय करके

'हरि के पत्तण' के निकट, जहां सतलुज और व्यास दरिया आपस में मिलते हैं, में समाहित हो जाती है। 160 किमी. की इस नदी को एक जीवन देने वाले संत सीचेवाल ने यह सिद्ध तो कर ही दिया है कि इस देश में पानीदार लोगों की कमी नहीं है।

जल प्रबंधक आलोक कुमार

जल प्रबंधन की जब बात की जाएगी तो आलोक कुमार की तकनीक की चर्चा किए बगैर वह बात पूरी नहीं हो सकती है। आलोक कुमार ने भारतीय नौसेना में काम करते हुए जल प्रबंधन के लिए जो काम किया, वह देश के लिए एक धरोहर है। आलोक कुमार ने त्रि–स्तरीय नाले का कॉन्सेप्ट तैयार किया है। उनका मानना है कि इससे प्रदूषित जल को शुद्ध किया जा सकता है। उन्होंने नाले का ऐसा मॉडल बनाया है जिसके आधार पर काम किया जाए तो नदियों में गिरने वाले नाले का पानी प्रदूषण–रहित होकर पहुंचेगा।

यानी घर से लेकर नदियों तक नाले का मॉडल कैसा हो इसका बेहतरीन उदाहरण आलोक ने प्रस्तुत किया है। उनके जज़्बे का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि अपनी वैज्ञानिक सोच को धरातल पर उतारने के लिए आलोक कुमार ने नौसेना से रिटायरमेंट ले लिया और जुट गए इस काम में। बिहार के रहने वाले आलोक कुमार अभी महाराष्ट्र के पुणे शहर में रह रहे हैं। सच में गर आलोक कुमार की तकनीक को बड़े पैमाने पर अमल में लाया गया तो गटर, नाले, फैक्ट्रियों आदि के गंदे पानी को सीधे नदी में जाने से रोका जा सकता है। इस तकनीक से जहां एक ओर नदियां प्रदूषित होने से बच जाएंगी, वहीं दूसरी ओर बूंद–बूंद पानी को उपयोग में लाया जा सकेगा। ज़मीन के भीतर पानी का स्तर भी बढ़ेगा।

इस तकनीक में घरेलू अपशिष्ट जल को घर के बाहर निर्मित एक विशेष प्रकार के नाले में बहाया जाता है। कंक्रीट से बने इस नाले में त्रि–स्तरीय व्यवस्था होती है, जिसमें पानी का बहाव ऐसा होता है, जो वापस होकर नाले में निर्मित त्रि–स्तरीय खांचों में आएगा। बीच में टैंक बने होंगे, जिसमें गंदे पानी में मौजूद भारी तत्व जमा होते जाएंगे। इन टैंकों की समय–समय पर सफाई करना जरूरी है। नाले के दोनों किनारों तथा तल में छोटे–छोटे छिद्र किए जाते हैं, जिनमें से पानी रिस–रिसकर मिट्टी में समाता जाता है। भूजल तथा नाले से रिसने वाले जल के बीच मिट्टी की परत प्रदूषण फैलाने वाले तत्वों को रोकने में सहायक होगी। इस तकनीक को विकसित करने से जहां एक ओर जल का ठहराव नहीं होगा, वहीं दूसरी ओर इससे गिरते जल–स्तर को भी रोका जा सकेगा।

जलाधीश उमाकांत उमराव

उत्तर प्रदेश के कानपुर के पास के एक गांव में जन्में उमाकांत उमराव ने मध्य प्रदेश के देवास में जिलाधीश के पद पर लगभग डेढ़ साल की एक छोटी–सी अवधि में यहां की पारंपरिक तालाब संस्कृति को अपने बूते जिंदा कर दिखाया जिसकी वजह से यहां के बच्चे–बूढ़े, औरतें सभी उनके दीवाने हो गए और उन्हें श्रद्धा से भरकर जलाधीश (जल देवता) कहकर पुकारने लगे।

मालवा क्षेत्र के सबसे सूखे जिले देवास में तबादले की खबर सुनते ही उनके घर–परिवार और दोस्त उन पर इस बात का दबाव बनाने लगे कि किसी तरह वे अपने तबादले का आदेश रुकवा लें। असल में देवास में 1990 से ही पीने का पानी रेलगाड़ियों में टैंकर में भरकर लाया जाने लगा था। पहली बार जब रेलगाड़ी से पानी आया था तो बकायदा शासन–प्रशासन के लोगों ने ढोल–नगाड़े बजाकर उस ट्रेन का स्वागत भी किया था। उमराव की तैनाती से पूर्व देवास को 'डार्क ज़ोन (भूजल खत्म होने की स्थिति)' घोषित किया जा चुका था। यहां का भूजल स्तर औसतन 300–400 फीट तो कहीं–कहीं 600 फीट तक नीचे उतर आया था। कई गांवों में ट्यूबवेल की संख्या 500–1000 तक पहुंच चुकी थी।

देवास में पानी की समस्या को दूर करने के लिए उमराव ने 'जल बचाओ, जीवन बचाओ' की बजाय 'जल बचाओ, लाभ कमाओ' के नारे गढ़े और इसका फायदा यह हुआ कि दस बड़े किसानों को साथ लेकर शुरू किया गया 'भागीरथ कृषक अभियान' आज दुनिया में तीसरे सबसे बड़े जल संरक्षण की मिसाल के तौर पर गिनाया जाने लगा है। वर्ष 2011–12 में संयुक्त राष्ट्र ने देवास जिले में जल संरक्षण के लिए तालाब संस्कृति को जिंदा किए जाने और उसे विस्तार दिए जाने को दुनिया में तीसरा श्रेष्ठ उदाहरण मान लिया है। उमाकांत उमराव ने इस काम को अंजाम तक पहुंचाने में न दिन देखा और न रात की परवाह की। वे छुट्टी के दिन जेठ की तपती दुपहरी में भी अपनी गाड़ी गांव के बाहर खड़ी कर देते और गांव के किसानों के साथ घूमते और सबसे तालाब बनाने की अपील करते। उमराव गांव–गांव घूमकर किसानों को तालाब या पानी का अर्थशास्त्र समझाते। आखिर में वे इस काम में सफल रहे। यही कारण है कि मध्य प्रदेश के देवास में हुए इस क्रांतिकारी बदलाव को देखने के लिए अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, इटली सहित देश के अलग–अलग राज्यों से 25 हजार से ज्यादा लोग आ चुके हैं। केंद्र सरकार इस जिले को पांच बार 'भूजल संरक्षण' सम्मान से नवाज चुकी है।

(लेखक स्वस्थ भारत अभियान से जुड़े हैं। सामाजिक मुद्दों और स्वास्थ्य पर प्रतिष्ठित पत्र–पत्रिकाओं में लिखते रहते हैं।)
ई–मेल : forhealthyindis@gmail.com

ग्राम संवाद एप और दिशा पोर्टल की शुरुआत

ग्रामीण विकास मंत्रालय ने **दिशा पोर्टल** लांच किया है। दिशा पोर्टल एक स्मार्ट गर्वनेंस टूल है जोकि संसद सदस्यों और विधायकों के लिए बनाया गया है जिससे वे अपने–अपने संसदीय क्षेत्रों में सिंगल पोर्टल के जरिए विभिन्न मंत्रालयों में चल रहे विविध कार्यक्रमों और योजनाओं की मॉनीटरिंग और क्रियान्वयन कर सकें। अक्तूबर 2017 के पहले सप्ताह तक इस पोर्टल के तहत 20 मंत्रालयों के 41 कार्यक्रमों और योजनाओं के डाटासेट का समन्वयन किया जा चुका था।

भारत के ग्रामीण नागरिकों की मदद करने और उन्हें सशक्त बनाने के उद्देश्य से मंत्रालय ने नागरिक–केंद्रित मोबाइल एप **ग्राम संवाद** भी शुरु किया है जिससे वे विभिन्न ग्राम विकास कार्यक्रमों के बारे में ग्राम पंचायत स्तर पर सिंगल विंडो से जानकारी हासिल कर सकेंगे। एप में अभी फिलहाल ग्रामीण विकास मंत्रालय के सात कार्यक्रमों के बारे में जानकारी उपलब्ध है। इस अवसर पर देश भर में 11 ग्रामीण स्वरोजगार प्रशिक्षण संस्थानों (RSETI) का भी उद्घाटन किया गया।

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी 11 अक्तूबर, 2017 को भा.कृ.अ.सं., नई दिल्ली में नानाजी देशमुख के जन्म शताब्दी समारोह के अवसर पर 'प्रौद्योगिकी और ग्रामीण जीवन' थीम पर आधारित प्रदर्शनी का अवलोकन करते हुए। साथ में केंद्रीय ग्रामीण विकास, पंचायती राज और खनन मंत्री श्री नरेंद्र सिंह तोमर और ग्रामीण विकास राज्यमंत्री श्री रामकृपाल यादव भी मौजूद हैं।

प्रधानमंत्री ने इस अवसर पर पूसा में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा विकसित 'नानाजी देशमुख प्लांट फिनोमिक्स केंद्र' का भी उद्घाटन किया। यह अत्याधुनिक, स्वचालित फिनोमिक्स केन्द्र विश्व के सार्वजनिक निधि प्राप्त संस्थानों में से एक है। यह केंद्र फसल सुधार एवं प्रबंधन के क्षेत्र में जीनों एवं पर्यावरण के बीच परस्परिक क्रिया को समझने में भी मदद करेगा। यह केंद्र हाईटैक नियंत्रित जलवायु वाले ग्रीनहाउस, गतिशील फील्ड कन्वेयर सिस्टम, स्वचालित भारोत्तोलन एवं सिंचाई स्टेशन और विभिन्न इमेजिंग सैंसर्स प्रतिबिंबों का स्कैनेलाइजर 3डी सॉफ्टवेयर द्वारा विश्लेषण इत्यादि सुविधाओं से सुसज्जित है।

इस अवसर पर 'प्रौद्योगिकी और ग्रामीण जीवन' थीम पर एक प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया। प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र सिंह मोदी ने नई दिल्ली, पूसा रोड स्थित भा.कृ.अ.सं. में नानाजी देशमुख के जन्म शताब्दी समारोहों के दौरान इन पहलों की शुरुआत की। उन्होंने नानाजी देशमुख पर एक डाक टिकट भी जारी किया। उन्होंने कहा कि नानाजी देशमुख ने स्वयं को ग्रामीण विकास के प्रति समर्पित करने और हमारे गांवों को आत्मनिर्भर और गरीबी मुक्त बनाने को प्राथमिकता दी।

इस अवसर पर प्रधानमंत्री ने कहा कि जो सुविधाएं शहरों से जुड़ी हैं, उन्हें हमारे गांवों तक भी अवश्य पहुंचना चाहिए। प्रधानमंत्री ने कहा कि लोकतंत्र का वास्तविक अर्थ जनभागीदारी और लोगों को गांवों और शहरों की विकास यात्रा में शामिल करने में है। उन्होंने ये भी कहा कि सरकारों के साथ नियमित संवाद जरूरी है। ❑

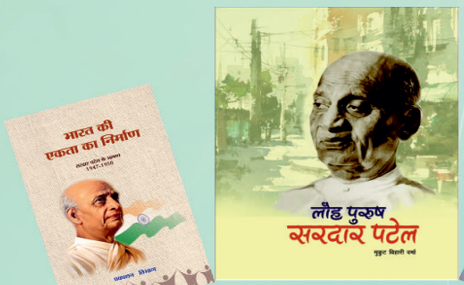

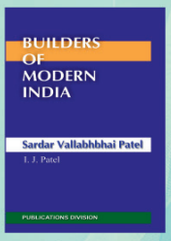

सरदार पटेल को जानें
पुस्तकों के माध्यम से

अपनी प्रतियां सुरक्षित कराने एवं व्यापार संबंधी
पूछताछ के लिए कृपया संपर्क करें:
टेलीफोन : 011-24367260,24365609
ई मेल : businesswng@gmail.com

चुनिंदा ई-पुस्तकें **Amazon**,**Google** एवं **Kobo** पर भी उपलब्ध

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार
वेब साइट : publicationsdivision.nic.in

@publicationsdivision
@DPD_India